पर्यावरण और जीव

हिमाचल पुस्तक भण्डार
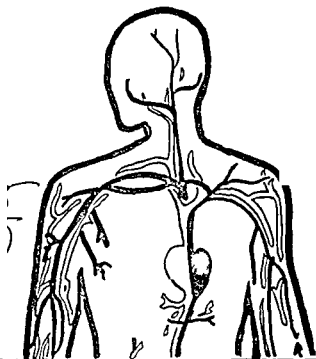
पर्यावरण
और
जीव
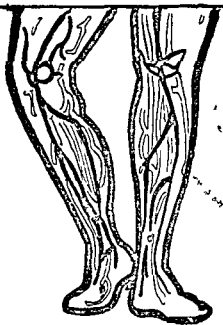
प्रस्तुत पुस्तक भारत सरकार की 'प्रकाशकों के सहयोग से हिंदी में लोकप्रिय पुस्तकों के प्रकाशन की योजना' के अन्तर्गत प्रकाशित की गई है। इसके प्रथम सस्करण की 3000 प्रतियों मे से भारत सरकार ने 1000 प्रतियां खरीदी हैं। इसके लेखक श्री प्रेमानन्द चदोला हैं।

मूल्य तेइस रुपये पच्चीस पैसे / प्रथम सस्करण 1984 / आवरण सुभाषमदान
प्रकाशक हिमाचल पुस्तक भण्डार IX/6935, महावीर गली गाधीनगर, दिल्ली 31
मुद्रक सजीव प्रिंटस, महिला कालोनी, गाधीनगर, दिल्ली 110031

PARYAAVARAN AUR JEEV (Hindi)
by Prema Nand Chandola Price Rs 23 25

४ /
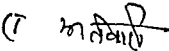
प्रस्तावना

हिंदी मे ज्ञान विज्ञान का विविध साहित्य उपलब्ध कराने के लिए केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा एव सस्कृति मन्त्रालय पुस्तक प्रकाशन की अनेक योजनाओ पर कार्य कर रहा है। इनमे से एक योजना प्रकाशको के सहयोग से हिंदी मे लोकप्रिय पुस्तको के प्रकाशन की है। सन् 1961 से कार्यान्वित की जा रही इस योजना का मुख्य उद्देश्य जनसाधारण मे आधुनिक ज्ञान विज्ञान का प्रचार प्रसार करना और साथ ही हिंदीतर भाषाओ के भी साहित्य की लोकप्रिय पुस्तको को हिंदी मे सुलभ कराना है ताकि ज्ञान-विज्ञान की जानकारी पाठको को सुबोध शैली मे मिल सके। इसके अतगत प्रकाशित होने वाली पुस्तको को अधिक से अधिक पाठको तक पहुचाने के विचार से इनका मूल्य कम रखा जाता है। इस योजना के अधीन प्रकाशित पुस्तको म वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, भारत सरकार द्वारा निर्मित शब्दावली का प्रयोग किया जाता है ताकि हिंदी के विकास मे ऐसी पुस्तकें उपयोगी सिद्ध हो। इन पुस्तको मे विचार लेखक के अपने होते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'पर्यावरण और जीव' के लेखक श्री प्रेमानन्द चदोला हैं। मानव एव उसके समूचे परिवेश के अस्तित्व का आधार प्रकृति ही है। यह तथ्य आज भी उतना ही सत्य है, जितना कि सृष्टि के प्रादुर्भाव के समय था। आज के वैज्ञानिक युग मे प्रकृति (पर्यावरण) के अध्ययन परिष्करण एव अनुकूलन के महत्त्व को किसी भी दृष्टि से अनदेखा नही किया जा सकता। इस परिप्रेक्ष्य म प्रस्तुत पुस्तक की उपादेयता स्वत -सिद्ध है। वैज्ञानिक विषय होने के बावजूद लेखक ने इसे सरल एव रोचक भाषा मे प्रस्तुत किया है।

आशा है, पाठकगण इससे लाभान्वित होगे।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
(शिक्षा एव सस्कृति मन्त्रालय)
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066
13 अगस्त, 1984

(राजमणि तिवारी)
निदेशक

देवतुल्य पूज्य
पिता, पितामह श्रौर पितरो
को
सादर श्रौर सश्रद्ध

लेखकीय

'पर्यावरण और जीव' शीषक के अतगत सृष्टि की सारी चीजें आ जाती हैं यानी प्रकृति, पेड पौधे और प्राणी, लेकिन साथ ही जल, थल और हवा मे चलने वाले हमारे सारे क्रियाकलाप भी। इस विशद विषय पर तो ग्रथ के ग्रथ रचे जा सकते है पर इस समय हमारा उद्देश्य कुछ बाता को उजागर करने वाली एक छोटी पुस्तक है, इसलिए कुछ गिने-चुने विषयो को ही लिया गया है। पुस्तक को पर्यावरण, पौधे और प्राणी तीन खडा मे बाटा गया है कि पर्यावरण (प्रकृति), पौधो व प्राणियो के प्रतिनिधि विषयो की बानगी दी जा सके।

इन लोकप्रिय वैज्ञानिक लेखो की रचना ललित और साहित्यिक लेखा व निबधो के समातर हुई है और इस दिशा मे यह अपने प्रकार का प्रयास है। दुरूह वैज्ञानिक विषय-वस्तु को रचा पचाकर सरल, चटपटी व रोचक शैली मे बोलचाल के शब्दो मे उतारा गया है कि सामग्री अरुचिकर व उबाऊ न हो और पाठक विज्ञान सामग्री मे रस ले सकें।

प्रकृति अथवा पर्यावरण से हमारा चोली दामन का साथ है। इसी की गोद मे हम पैदा होते, पलते और किस्म किस्म की कारगुजारिया करते हैं। इसी मे प्राचीन व विलुप्त जीवो के अवशेष भी छिपे है, जो हमे पिछली कहानी बतलाते हैं। जीवन की विविध परिघटनाओ का रहस्य प्रकृति के गर्भ में छिपा है। हम नित्य ही प्रकृति के परिवतन देखते भालते हैं। कुछ परिवतनो के कारण हम जानते हैं, जो एक शक्ति से सचालित होकर हमे उसका आभास देते हैं।

पहले खड मे पर्यावरण से सबधित लेख हैं। बीसवी सदी के मानव द्वारा पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है और उसका सतुलन डगमगाने लगा है। हमे बराबर यह ध्यान रखना है कि इसकी सुरक्षा मे ही हमारा कल्याण है। प्रकृति मे सभी जीवो का रहना जरूरी है, तभी प्रकृति के पलडे बराबर रह सकते हैं।

दूसरे खड मे पौधो को लिया गया है। हरा पौधा कुदरत की एक चमत्कारी जैवरासायनिक फैक्टरी है। इसी की बदौलत हमे अनाज, दाल, सब्जिया, फल-फूल और जरूरत की सारी चीजें मिलती हैं। जिन्हें हम तुच्छ घास समझते हैं वे ही हमे अन्न समेत सभी कुछ देती हैं और इन्ही के बलबूते पर हम, हमारे पशु और सारे प्राणी पलते हैं और हमारा सारा कारोबार चलता है। और इनको यह ऊर्जा प्राप्त होती है सूय से,

जिसकी अदभुत क्षमता और पौधों के चमत्कारी हरे पदार्थ की क्रियाशीलता से हमे भोजन मयस्सर हो पाता है। इस तरह तुलसी, केसर, बास, शैवाल, पौधों के शत्रु पौधे, बिना भूमि की खेती, उत्परिवर्तन द्वारा कृषि जगत् मे क्राति आदि शीर्षको के अतगत वनस्पतियो की विविधता और महिमा का बखान करने का प्रयत्न किया गया है।

तीसरे प्राणी खड मे कुछ प्रतिनिधि प्राणी लिए गए हैं, जैसे कि—कीट, सर्प, सिंह, घोडा आदि। घोडा जैसा आज दिखता है पहले ऐसा नही था, ऐसा तो वह विकास क्रम के कई चरणो के बाद हुआ। मानव सबधी कुछ पहलुओ को लेकर भी जानकारी देने की कोशिश की गई है। ऐसे शीर्षक हैं—हड्डियो का ढाचा जीवन का सांचा, आदमी की पूछ, पोषण और स्वास्थ्य, नमक और रक्तचाप, बेजान होकर जानवरों मे फूक डालने वाले (एजाइम), स्मृतियो के सवाहक, रोगाणुओ की सेन्सर—थाइमस ग्रथि, रोगाणु और शरीर के अणु आदि। मानव के कुछ सामान्य तथा विलक्षण रोगो की बानगी के लिए चेचक, नीद की बीमारी, हीमोफीलिया सरीखे लेख चुने गए हैं। डारविन के विकासवाद से पुस्तक का समापन किया गया है। इस तरह 37 लेखो मे विविध आयामो से कहानी व गल्प की तरह ललित शैली मे विज्ञान की सामग्री देने की चेष्टा की गई है। यह सब जैसा भी है, अब आपके सम्मुख प्रस्तुत है। आपकी कसौटी पर खरा उतर जाए तो अपने को धन्य समझूगा।

'कोशिका'

—प्रेमानन्द चन्दोला

ई-1, साकेत, एम० आई० जी० फ्लैट
नई दिल्ली 110017

अनुक्रम

पर्यावरण

पौधे

प्राणी

पर्यावरण

1

प्रकृति भी पोशाक बदलती है

कवि ने ठीक ही कहा है कि—'द ओल्ड ऑडर चेंजेथ यील्डिंग प्लेस टु यू' अर्थात् 'पुराना क्रम समाप्त होता है और उसकी जगह नया क्रम ले लेता है।' हम तो रोज ही कपडे बदलते हैं, सजते धजते हैं लेकिन प्रकृति तो एक निश्चित समय पर ही अपनी पुरानी पोशाक उतारती है और नई पोशाक पहनती है और निरतर यह क्रम चलता है। प्रकृति द्वारा अपने पुराने वस्त्रो को उतार फेंकने को हम पतझड और नए वस्त्र

पतझड के बाद बसंत

पहनने को ही हम वसत के नाम से पुकारते हैं। वसत मे प्रकृति जब धानी चदरिया ओढकर, रग बिरगे फूल गूथकर, वातावरण मे सुरभित पराग उडाकर एक मोहिनी छवि छितरा देती है तो जीवो म नये रस का सचार होना और उसके रग मे डूब जाना स्वाभाविक ही है।

पतझड मे शाख, क्षुप तथा वृक्ष पुराने पत्र पत्रक त्याग देते हैं और वसत मे य ही नही कापलो और रग बिरगे फूलो से सज्जित हो जाते हैं। वसुधरा मे और उसके जीवो मे नए जीवन, नए उत्साह, नई आशा की लहर दौडने लगती है। तब पौधो, पुष्पो और प्रकृति की इस अनूठी और विमोहक सौदयमयता के उत्प्रेरण से भौरे गुन-गुन करने

लगते हैं, कोयल कू-कू करने लगती है और इस गुंजन और कूजन की मंजुल मंगल लय मे सारा जगत, सारे प्राणी लीन हो जाते हैं, खो जाते हैं। तभी तो वसन्त को ऋतुराज कहाने का श्रेय भी मिला है। गीता मे अर्जुन को उपदेश देते हुए स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने भी तो कहा है कि 'महीनो म मार्गशीर्ष का महीना और ऋतुओ मे वसन्त ऋतु मैं ही हू।'

वास्तव मे यदि देखा जाय तो ये वनस्पतिजात (फ्लोरा) यानी ये वनस्पतिया या पेड-पौधे और प्राणिजात (फौना) ही तो प्रकृति की जान हैं। वनस्पतिया और प्राणी न हो तो सृष्टि कैसी ? जीवन कैसा ? इन्ही पर तो सबकुछ आधारित है। इन्ही के द्वारा हमे सृष्टि के महापरिवर्तनो का बोध होता है। इन्ही का सौंदर्य, अभिक्रियायें अभिव्यक्तिया तो हम जीवन और जगत् की यथार्थता का स्मरण कराती हैं। प्रत्यक्ष दीखनेवाली वनस्पतियो की हरीतिमा तथा उनके अवयवो के वर्ण-वैविध्य की सम्मोहक सुन्दरता को देखकर ही तो गेयटे के मुख से ये शब्द फूट पड़े थे—'नेचर इज विजिबल गॅर्मेन्ट ऑफ गाड' अर्थात 'प्रकृति ही ईश्वर का प्रत्यक्ष दीखनेवाला आवरण है।'

अब यदि इतिहास की ओर उन्मुख हो तो पता चलता है कि प्राचीन काल मे वसन्त का कितना अधिक महत्त्व था। वसत प्रारम्भ होने पर वसन्तोत्सव या मदनोत्सव के रूप म हर्षोल्लास मनाया जाता था, रगरलिया होती थीं और चारो तरफ आनन्द ही आनन्द छा जाता था। वीणा वादिनी सरस्वती की वदना होती थी। उस विद्या की अधिष्ठात्री देवी से प्रार्थना होती थी कि अपना भूखण्ड विद्या बुद्धि, धन धान्य, ऐश्वर्य वैभव, सुख समृद्धि से युक्त होवे।

अभी भी कुछ पहाडी प्रदेशो म इन रीतियो का प्रचलन है। वसन्त पचमी के दिन ही हलजोत का शुभ मुहूर्त होता है। खेतो से कक्ड पत्थर आदि बीनकर, धान सावा आदि बोकर खरीफ की फसल का आरम्भ किया जाता है। इन्ही दिनो झुण्डो मे हसी खुशी से लोकगीत गाए जाते हैं।

कवियो और लेखको ने तो साहित्य मे वसन्त का विशद रूप से वर्णन किया ही है सौंदर्य भावना से प्रेरित होकर, किन्तु पौधो की इस प्राकृतिक घटना ने वैज्ञानिको का ध्यान कम आकर्षित नही किया है। इसी तरह वैज्ञानिको ने भी गहन अध्ययन करके प्रकृति के इस भेद का पर्दाफाश किया है।

पतझड और नया जीवन

वैज्ञानिक दृष्टि स पतझड एक सामयिक, नियमित तथा क्रियात्मक प्रघटना है, जो पौधे के लिए बहुत आवश्यक है। पत्तिया पौधे के बहुत महत्त्वपूर्ण पुर्जे हैं। वर्षपर्यन्त क अनवरत परिश्रम से ये शिथिल पड जाती हैं और सुचारु रूप से कार्य करने म असमर्थ हो जाती हैं, इसीलिए वर्ष के अन्त मे पौधे द्वारा गिरा दी जाती हैं। पत्तियो मे बारीक रन्ध्र (स्टोमेटा) होते हैं जिनके दोनो ओर रक्षक कोशिकाए (गार्ड सेल) होती हैं। इन्ही के द्वारा वातावरण व पौधे म गैसो का विनिमय होता है और जैविक क्रियायें

चलती हैं। पत्तियो के इन छोटे छोटे रन्ध्रो या श्वसन-उपकरणो से ही श्वसन होता है, जो यो तो हर समय ही होता रहता है किन्तु रात्रि मे जबकि प्रकाश सश्लेपण (फोटो सिंथेसिस) या भोजन निर्माण की क्रिया नही होती, बडी तीव्रता से होता है। दिन मे धूप के प्रकाश मे पत्तिया अपने पणहरित (क्लोरोफिल) की सहायता और पानी तथा काबन डाई-ऑक्साइड की क्रिया से मण्ड निर्माण करती हैं। पत्तियो से ही उत्स्वेदन या पानी के उडने की क्रिया भी होती है जिससे पौधे मे ताप और जल की मात्रा सतुलित रखी जाती है और नीचे जडो से पानी तथा खनिज लवणो के घोल के ऊपर चढने मे सहायता मिलती है। रेगिस्तान मे चूकि पानी का अभाव होता है इसलिए मरुस्थली पौधो, जैसे—बबूल, नागफनी आदि मे पत्ती की सतह से वाष्पन कम करने के लिए पत्तिया चौडी और फैली हुई नही होती बल्कि मोटी, बारीक व छोटे छोटे काटो म घट जाती हैं।

पत्ती का उदभव और परिवधन तने के सिरे पर एक बाहरी निकले भाग के रूप मे होता है। तने पर यह एक जरा से बगल के उभार के रूप मे प्रारम्भ होती है और फिर धीरे-धीरे बढते हुए विभिन्न अगो मे विभेदित होती चली जाती है, जब तक कि वह एक सुदर, चमकीली, हरी और चौडी आकृति मे नही बदल जाती। पत्ती के मुख्य रूप से तीन भाग होते हैं। पहला पर्णाधार (लीफ बेस), दूसरा डठल या पत्रवृत्त और तीसरा पत्रदल या पत्रफलक होता है।

पर्णाधार डठल का फूला हुआ भाग होता है जो पत्ती को तने स जाडता है और उसके भार को सभाले रहता है। दूसरा भाग डठल या पत्रवृत्त साधारणतया हरा और बेलनाकार होता है जिसका काय है पत्ती को ऊपर उठाए और फैलाए रखना कि वह अच्छी तरह प्रकाश पा सक। किन्तु कुछ पौधो मे पत्रवृत्त का अभाव होता है और वे वत्तहीन पत्तिया कहलाती हैं। इनके अतिरिक्त पत्ती का जो सबसे महत्त्वपूण अग है, वह है पत्रदल या पत्रफलक जो शिराओ की सहायता से खूब अच्छी तरह से तना रहता है। इसमे हरा रगद्रव्य पणहरित होन के कारण ही पत्ती का रग हरा होता है और केवल इसकी सहायता स ही धूप के प्रकाश म प्रकाश सश्लेपण या भोजन निर्माण की क्रिया सम्भव हो पाती है। पत्ती के इस अग से ही पौधे मे श्वसन तथा उत्स्वेदन जैसी आवश्यक क्रियाए होती हैं। इसमे फैली शिराओ के द्वारा दिन मे धूप के प्रकाश म बना हुआ भोजन नीचे तने या जडो मे जमा होने के लिए व नीचे जडो से पानी व लवणा का घोल ऊपर पत्ती तक पहुचाया जाता है।

पत्तियो के गिरने की दृष्टि से पौधे मुख्यतया दो प्रकार के होते है—पणपाती और सदाहरित। इसी तरह गिरने के आधार पर पत्तिया तीन प्रकार की होती हैं। पहली तो वे होती हैं जो बहुत शीघ्र ही गिर जाती हैं और शीघ्रपाती कहलाती हैं। दूसरी वे, जो प्रत्येक मौसम के अन्त म गिरती हैं, पाती कहलाती हैं और तीसरे प्रकार की कहलाती है स्थायी, जो पौधे पर एक से अधिक मौसम तक लगी रहती हैं। पणपाती पौधा मे पत्तिया एक निश्चित मौसम पर—जाडे या पुष्प मौसम के आरम्भ होन पर—

सब एक साथ ही गिर पडती हैं जिसके कारण पौधा नए पत्तो के फूटने तक नगा ठूठ-सा दिखलाई पडता है। परन्तु सदाहरित पौधो मे ऐसा नही होता। ऐसा लगता है कि मानो उनकी पत्तिया गिरती ही न हो, उनमे पतझड होता ही न हो क्योकि बात ही ऐसी है कि पौधा हमेशा हरा भरा तथा पत्तियो से लदा फदा दिखता है। परन्तु इसमें भी एक रहस्य है। वास्तव मे होता यह है कि इन पौधो की पत्तिया गिरती तो हैं किन्तु सब एक साथ नही, *बल्कि समय समय पर, बारी-बारी स और वह भी थोडी थोडी करके।* इसी कारण ये पौधे बारहा महीने हरे भरे रहते हैं और सदाहरित कहलाते हैं। अशाक, देवदार, चीड आदि के वृक्ष इस प्रकार के सामान्य उदाहरण हैं। टुड्रा, टैगा आदि बरफीले प्रदेशा मे नुकीले तथा सूच्याकार पत्तियोवाले क्षुधारी वृक्ष इसीलिए होते हैं कि बरफ, पाला आदि पौधो को तोड न डालें, बरफ पौधे मे अटकी न रह जाय और एक दम फिसलकर नीचे गिर जाए।

लेकिन कुछ पोधे अपवाद भी हैं, जिनमे पतझड एक साल से पहले ही हो जाता है या कुछ साल तक होता ही नही। परन्तु साधारणतया पतझड सूखे मौसम म ही होता है, जबकि जडो द्वारा जल का सोखना कम कर दिया जाता है और पत्तिया की सतह स जल का वाष्पन बढ जाता है। ये दोनो दशाए जाडे मे या कभी लम्बी शुष्क गरमी की ऋतु म ही होती है।

हालाकि पतझड क्या होता है, कैसे होता है और इसके क्या-क्या कारण हैं इसके बारे मे काफी क्या बहुत कुछ मालूम हो चुका है किन्तु फिर भी कुछ शकाए तो रह ही जाती है कि इसका क्या कारण है। लेकिन यह अवश्य है कि पत्तियो का झडना वातावरण की शुष्क अवस्था या तीव्र गैसो के उद्दीपन के कारण होता है। और यह भी निश्चय है कि इस जटिक क्रियाशील प्रघटना म वत के आधार पर कोशिकाओ क चयापचय (मेटाबोलिज्म) की क्रिया बडे जोरो म चलने लगती है।

इस क्रिया को सम्पन्न बनाने के लिए पौधे मे एक विशेष रासायनिक क्रिया होती है। वृद्धि वाला हारमोन प्रति-हॉरमोन की अपक्षा क्षीण हो जाता है और डठल के आधार पर एक वियोज परत (एब्सिस लेयर) का निर्माण होने लगता है। साथ ही साथ वियोज परत के नीचे कुछ कोशिकाओ से कॉक की एक परत भी बनती जाती है जो पौधे की सतह से पानी को उडने से रोकती है। वियोज परत का निर्माण मृदूतक (पैरेनकाइमा) की कोशिकापट्टी की क्रियाशीलता के फलस्वरूप होता है, जिनमे कि पर्णाधार के नजदीक अपेक्षतया सघन जीवद्रव्य (प्रोटोप्लाज्म) भरा रहता है। इन कोशिकाओ म कुछ परिवतन होने लगता है और साथ ही इनकी कोशिका-दीवारा मे भी कुछ रासायनिक परिवतन शुरू हो जाता है, जिससे उनकी मध्य पटलिकाए चिप चिपी बन जाती हैं और इस तरह पत्ती को भोजन पानी मिलना बन्द हो जाता है। उसका पौधे से सबध ही टूट जाता है।

इस प्रकार डठल और तने या टहनी क बीच म एक पथककारी दीवार सी बन

जाती है और आपसी सबध विच्छेद होने लगता है, बीच मे केवल जरा से धागे सरीखे वाहिनी-बडल से ही सम्पर्क बना रहता है। इस अवस्था मे पत्ती तने से बडी नाजुक स्थिति मे लगी रहती है और स्वय उसी का भार, हवा का एक हलका झोका या बरफ की बौछार पत्ती को पर्व से नीचे गिरा देती है। तब पत्ती के स्थान पर रह जाता है केवल उसका पर्ण चिह्न। पौधे के इस क्षत भाग की रक्षा के लिए ही कॉर्क की परत का निर्माण होता है। जगलो के वृक्षो द्वारा मुख्यतया शुष्क ऋतु मे छोटी-छोटी शाखाओ, फूलो, पुष्पक्रमा तथा फलो को गिरा देना भी बिलकुल इसी प्रकार की प्रघटना है, जो कि उनके आधार पर पृथक कर देनेवाली वियोज परत के बन जाने के फलस्वरूप होती है। वैसे गिरती तो सूखी टहनियो पर की पत्तिया भी हैं लेकिन वे इस तरह नही गिरती। उनमे वियोज परत (एब्सिस लेयर) का निर्माण नही होता। वे तो भोजन व पानी के अभाव मे केवल मुरझा व सूख जाती हैं और अन्य सामान्य पत्तियो की तरह गिराई नही जाती।

2

जिन्दगी का रहस्य प्रकृति के गर्भ मे

गालिब का प्रसिद्ध शे'र है

"न था कुछ तो खुदा था, कुछ न होता तो खुदा होता,
डुबोया मुझको होने ने, न होता मैं तो क्या होता ?"

जिन्दगी, जन्म और मृत्यु वाला विषय बहुत पुराना होते हुए भी हमेशा नया है। पृथ्वी पर आदम जात के आने से पहले अन्य छोटे जीव थे, जिनसे पृथ्वी पर जिन्दगी की शुरुआत हुई। लेकिन यह जरूर है कि सोच विचार और मनन चिंतन का काम तभी शुरू हुआ जब 'अमीबा से आदमी' वाली उक्ति के अनुसार आदमी नाम का विकसित प्राणी अस्तित्व मे आया और जिसका दिमाग भी अन्य जानवरो के मुकाबले अधिक विकसित हुआ। इस विषय पर विद्वानो, दार्शनिको, चिंतको, विचारको, मनीषियो ने रचा पचाकर ग्रथ के ग्रथ भरे हैं। गीता म कृष्ण कह गए हैं कि—' मृत्यु और जन्म कुछ नही, बस ऐसे ही पुराने कपडे उतारकर नए कपडे पहन लेना।" आधुनिक जीवविज्ञानी भी इस गुत्थी को सुलझाने मे लगे हुए हैं।

जन्म और मृत्यु का एकातर क्रम चलता रहता है और शायरो कवियो ने भी इस फलसफे के इजहार की बानगी अपने गीतो गजलो मे अलग अलग तरह मे पेश की है। कोई कहता है कि —"जीवन के बेरोक सफर मे मौत मुसाफिरखाना है', तो कोई कहता है—"किसी की आख खुल गई, किसी को नीद आ गई' , "हर रोज जनाज़े जाते हैं, हर रोज बरातें होती हैं इस पार प्रिये तुम हो मधु है, उस पार न जाने क्या होगा ?" वगैरह वगैरह।

जन्म के इस छोर से मृत्यु के उस छोर तक ही जिन्दगी चलती है। इन्ही दो छोरो के बीच पेंगें बढाता है जिन्दगी का झूला और जिन्दगी का यह झूला सास की डोरी के सहारे चलता है। जाहिर है कि सभी जीवित पदार्थ सास लेते हैं यानी इस क्रिया मे ऑक्सीजन अन्दर लेते हैं और कार्बन डाई ऑक्साइड बाहर छोडते हैं। जो सास नही लेता वह कतई जिन्दा नही।

कोशिका और खुर्दबीन (सूक्ष्मदर्शी)

जिस तरह भौतिक व रासायनिक बनावट मे परमाणु का स्थान है, ठीक इसी तरह जीवो की बनावट मे बुनियादी आकृति तथा क्रियाओ की इकाई के रूप म 'कोशिका' सैल का स्थान है। कोशिका और परमाणु सरलतर घटको या पदार्थों के बने होते हैं और ये घटक एकजुट होकर ऐसे विशेष गुण दिखलाते हैं जो इनमे से न तो किसी एक मे और न इनके किसी मनमाने मिश्रण मे ही पाए जाते हैं। दोनो के गुणो म विविधता पायी जाती है, जो उनके अदा के विभिन्न प्रकार के क्रम या तरतीब के कारण होती है। अधिक जटिल रचनाओ के बनाने मे दोनो ही बुनियादी सामग्री का काम करते हैं। लेकिन इतना कुछ होने पर भी यह समानता ज्यादा दूर नही चलती क्योकि कोशिकाए तो जनन कर सकती हैं लेकिन परमाणु नही कर सकते। अजीवित पदार्थों का इस्तेमाल करते हुए उनसे जीवित पदार्थ बनाने की अद्भुत क्षमता शायद कोशिका का बिलकुल अपना मौलिक लक्षण है और इस तरह कोशिकाए खुद-ब-खुद पुनरुत्पादन करने वाली सबसे सरल इकाइयां हैं।

आजकल कोशिका और उसके घटको का अध्ययन विज्ञान की विभिन्न शाखाओ वाली तकनीको के द्वारा किया जाता है जैसे कि—जैवरसायन, जैवभौतिकी, शरीर-क्रियाविज्ञान, अनुवंशिकी, आणविक जीवविज्ञान आदि की तकनीको से और इसीलिए इसे सक्रिय इकाई के रूप मे लिया जाता है। पूरी जानकारी की कमी के कारण किसी भी क्षेत्र में हुए विकास की रूपरेखा को सामने रखना आसान नही और आदम के हाथो उलझी इसी गुत्थी को सुलझाने म हमारे जीववैज्ञानिक ताबडतोड लगे हुए हैं। विज्ञान म भी यह होता है कि कुछ के योगदान को महत्त्व देकर औरो के परिश्रम वाले प्रेक्षणो और खोजो को नजरअदाज कर दिया जाता है। कुछ भी हो, इतिहास की विशेषता यह है कि विज्ञान के किसी क्षेत्र के अध्ययन म वह कुछ खोजो को ही तवज्जह देकर और खास मानकर कुछ ही मील के पत्थरो की रूपरेखा प्रस्तुत कर पाता है।

कोशिका का असली अध्ययन सन् 1632 ई० मे डच वैज्ञानिक ल्यूवेनहॉक द्वारा किए गए खुदबीन के आविष्कार के साथ ही शुरू हुआ। इसके बूते पर वह कुछ आदि जतुओ (प्रोटोजोआ), बैक्टीरिया, शुक्राणुओ, लाल रक्त कोशिकाओ वगैरह का सही वर्णन करने मे सफल हुआ। सन् 1665 ई० मे राबर्ट हुक नाम के अग्रेज जीव-विज्ञानी ने अपनी खुदबीन स कॉर्क के कतलो को लेकर कोशिकाओ का निरीक्षण किया। उसी ने सबस पहले खुदबीन म खोखली छेद जैसी आकृतियो को देखा और इन्ही के आधार पर 'सैल' या कोशिका (लैटिन मे सैल का मतलब है, खोखली जगह) नाम रखा। ये आकृतिया दरअसल पौधो के छाल-ऊतक की मरी हुई कोशिकाए थी। फिर करीब 150 वर्ष तक इस बारे मे बहुत कम जानकारी हासिल हो सकी।

लेकिन उन्नीसवी सदी मे कोशिका को समझने के लिए काफी खोजें हुई। हमारे ज्ञान की प्रगति के कीर्तिस्तम्भ इतिहास के पन्नो मे दर्ज हैं। कोशिका सबधी खोजें बडी

तेजी से चल रही हैं और आज हम आशा करते हैं कि कई उलझी गुत्थियो को वैज्ञानिक बडे मजे में इतमीनान के साथ सुलझा लेंगे क्योकि ये गुत्थिया मानव-जीवन के लिए बडे महत्त्व की हैं।

जीवित पदार्थों के लक्षण

आज हम पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार के प्राणी और पौधे देखते हैं। वे पहले इस तरह के नही थे। ये धीरे धीरे अपने माहौल के माफिक बनते हुए सरल अवस्था से जटिलता वाली अवस्था की ओर विकसित होते गए। पृथ्वी पर जीवित और अजीवित पदार्थों वाले दो समुदाय हैं, फिर जीवो मे भी प्राणी जगत और वनस्पति जगत। अजीवित पदार्थों के विपरीत जीवो के कुछ विशेष लक्षण होते हैं। ये खास लक्षण अमीबा, हाइड्रा, कीट, मछली, पक्षी, हाथी, बदर, मानव तथा दूसरी ओर गेहू, धान, घास, मक्का, आम, अमरूद, पीपल, बरगद वगैरह मे समान रूप से पाए जाते हैं। जीवधारियो के ये विशेष लक्षण हैं—गति, वृद्धि, पोषण, श्वसन, उत्सर्जन, जनन, उत्तेजनशीलता या सवेदनशीलता और जीवद्रव्य (प्रोटोप्लाज्म) की उपस्थिति। ये ही बातें हैं जो जीवो को पृथ्वी की अलग जानदार इकाइया बना देती हैं। वास्तव मे जीवन का रहस्य है जीवित पदार्थों का इन लक्षणो के बूते पर सुव्यवस्थित होना। कोशिका मे रहने वाला जीवित पदार्थ या 'जीवद्रव्य' ही जीवन तथा सपूर्ण जैविक क्रियाकलापो का कारण है।

जीवविज्ञान के मुताबिक हर एक जीव अपनी जिन्दगी म जन्म, वृद्धि, जनन तथा मृत्यु जैसी अवस्थाओ से गुजरता है। कोशिकाओ के मरने या हरकतें बद कर देने पर ही जीव की भी मृत्यु हो जाती है। माता पिता मर जाते हैं लेकिन उनका अश यानी उनकी सतति आगे जीवन चक्र चलाती रहती है। जीव इसीलिए अपनी अवि नश्वरता को बनाए रखने के लिए और अपने वश को चलाने के लिए सतति की कामना करते हैं और इसी उधेडबुन मे जिन्दगी गुजार देते हैं।

जीवविज्ञान के सिद्धान्त वाले मुद्दो को समझाने के लिए कुछ मिसालें देकर बात साफ हो जाएगी। पत्थर का ढेला या प्लास्टिक की गुडिया और गुलाब का फूल या एक सुन्दर बच्ची भले ही छोटे छोटे कणा की बनी होती है, लेकिन क्या बात है कि इनकी खासियत अलग-अलग है। फूल मुरझा जाता है, बच्ची रोने लगती है, दूध बिस्कुट खाती है, सास लेती है, जाडे मे गरम स्वेटर पहनती है, आग तापती है और देखते ही देखते एक खूबसूरत युवती बन जाती है, और यही नही, शादी के बाद अपनी तरह के बच्चे भी पैदा करने लगती है। लेकिन इसके विपरीत पत्थर मे या प्लास्टिक की गुडिया मे ये बातें कहा। प्लास्टिक की गुडिया मे सुई चुभो दो या चाटा जड दो या भूखा रखो तो भी कुछ असर नही होगा। वह कतई रोएगी नही, न वह वृद्धि करते हुए जवान गुडिया बनेगी और न अपनी तरह की अन्य नन्ही गुडिया पैदा कर सकेगी। सार रूप में ये अन्तर अजीवित और जीवित होने के ही कारण है। जीवित वस्तुओ मे शरीर की इकाइयां या

कोशिकाए होती हैं। बहुत-सी एक प्रकार की कोशिकाए मिलकर ऊतक (टिश्यू) बनाती हैं और फिर ये ऊतक मिलकर अग बनाते हैं और कई अलग-अलग अग मिलकर एक शरीर बनाते हैं। इन जीवित कोशिकाओ मे कई रासायनिक पदार्थों के कण या परमाणु होते हैं। और ताज्जुब की बात तो यह है कि खुद तो ये रासायनिक पदार्थ अजीवित होते हैं लेकिन कुछ विशेष पदार्थों की क्रियाशीलता के कारण जीवों के शरीर को जीवित या चेतन बना देते हैं।

कोशिका मे विभिन्न पदार्थों का पनीला रस ही जीवद्रव्य है और यही जीवन सम्बन्धी बातो का कर्ता धर्ता है। इसमे खोट आई नही कि मौत, पहले कोशिका की और फिर जीव की।

पृथ्वी का आदि वातावरण और रासायनिक अभिक्रियाए

पृथ्वी के प्राक्-जैविक या जीवपूर्वी वातावरण मे विभिन्न रासायनिक अभिक्रियाओ के परिणामस्वरूप जीवो की उत्पत्ति के बारे मे जो न्यायसगत मत है उसमे तीन बातें मुख्य हैं। एक, यह कि पृथ्वी की आदि अवस्था मे साधारण तत्त्वो या अणुओ ने जीवो की बुनियादी सामग्री का निर्माण किया होगा। दूसरे, इसके बाद कई रासायनिक

पृथ्वी के आदि वातावरण मे आदि जीवो का सृजन

क्रियाओ के बाद ही जीवो की सृष्टि हुई होगी। और तीसरे, जीवो के जीवित रहने के लिए जरूर कोई न कोई पोषण स्रोत रहा होगा।

अनुमान यही किया जाता है कि पृथ्वी के प्राक जैविक पर्यावरण और समुद्रो मे ऑक्सीजन नही थी और यदि थी भी तो बहुत ही थोडी मात्रा मे। पर्यावरण मे मुख्य पदार्थ थे—पानी की भाप, कार्बन-डाई ऑक्साइड, नाइट्रोजन और थोडी-बहुत मात्रा मे हाइड्रोजन सल्फाइड, मेथेन और अमोनिया। इसी तरह समुद्रो मे भी कार्बन-डाई

ऑक्साइड, अमोनिया, मेथेन तथा हाइड्रोजन सल्फाइड और धातु तत्वों के रूप में क्लोराइड तथा घुली अवस्था में फॉसफोरस के यौगिक मौजूद थे। कुछेक रासायनिक अभिक्रियाओं के कारण प्राक जैविक काल में अन्य यौगिकों के साथ अमीनो एसिड नामक रासायनिक पदार्थ बने। जीवरसायनज्ञों के मतानुसार उस समय रासायनिक अभिक्रियाओं में ऊर्जा जमा करने और देने के लिए समुद्रों में एडीनोसीन ट्राइफौसफेट नामक पदार्थ मौजूद रहा होगा। यह पदार्थ जीवों के उदभव के पहले से ही समुद्रों में मौजूद था और आधुनिक प्रयोगों के आधार पर भी यह ठीक उतरता है। वैज्ञानिकों का कहना है कि इन अभिक्रियाओं से बने एडीनाइन और चट्टानों में घुलकर समुद्रों में जमा हुए अकार्बनिक फौसफेटों से ही एडीनोसीन ट्राइफौसफेट बना होगा। इन अभिक्रियाओं के चलने के लिए विद्युत के अलावा सूर्य के पराबैंगनी विकिरण से भी ऊष्मा मिली होगी।

वैज्ञानिकों का मत है कि अमीनो एसिड से जीवों के बुनियादी पदार्थ प्रोटीन के बनने तक का लम्बा समय बीता होगा। धीरे धीरे ज्यादा से ज्यादा ऊर्जा मिलते रहने और पानी कम होते जाने के कारण अमीनो एसिड, विटामिन पाइरिमिडीन और कार्बन सरीखे बुनियादी जैविक पदार्थों का उदभव होता गया। गरमी के कारण पानी के अणु कम होते जाने से पोलीपेप्टाइड बनते चले गए और इसी तरह ज्यादा से ज्यादा ऊर्जा मिलते रहने और पानी कम होते जाने से इन बुनियादी चीजों से जीव पदार्थों की कोशिकाओं के मुख्य अवयव यानी वसा, लिपिड न्यूक्लिओटाइड, न्यूक्लीक एसिड, पोलीसैकेराइड आदि कार्बनिक महाअणु अस्तित्व में आये। इन विशेष काम के पदार्थों के मिश्रण तथा अभिक्रियाओं के परिणाम से ही आरंभिक कोशिकाओं का निर्माण हुआ, जिनसे फिर अनेक जीवों का उद्भव हुआ।

वैज्ञानिकों का विश्वास है कि ऐसी अभिक्रियाएं जरूर ही पृथ्वी की आदि अवस्था में घटी होंगी, जो कि स्पष्ट भी है क्योंकि आदि जीव पानी में ही पैदा हुए हैं। इसी आधार पर वैज्ञानिकों ने प्रयोगों द्वारा प्रयोगशाला में कोशिका की तरह की सूक्ष्म तरल गोलिकाओं की रचना की है, जो सामान्य ताप पर काफी समय तक वैसी की वैसी ही बनी रहती हैं। कोशिका की तरह इनके बाहर भी एक रक्षाकारी झिल्ली होती है, जिसके द्वारा वातावरण की सांद्रता और जरूरत के अनुसार पानी सोखा व छोड़ा जाता है।

जीव-अजीव यानी बेजान और जानदार के बीच की कड़ी

जब एक वस्तु किसी दूसरी वस्तु में बदलती है तो बीच की अवस्था सक्रांति अवस्था कहलाती है। इसमें दोनों वस्तुओं के गुण व लक्षण मौजूद होते हैं। अजीवित पदार्थों से जीवित पदार्थों के निर्माण के बीच की अवस्था में ऐसे ही पदार्थ बनते गए जो अजीवित भी थे और जीवित भी यानी उनमें दोनों के लक्षण मौजूद थे। ये ही पदार्थ जीव और अजीव के बीच की कड़ी बने और सरल से जटिल बनते जाने के कारण जीवित पदार्थों को जन्म देने वाले मातृ पदार्थ बने। ऐसे पदार्थों ने वृद्धि व स्वजनन करने

की क्षमता भी अर्जित कर ली यानी वृद्धि करके बडा पिंड बनाकर अपनी ही तरह के दूसरे पिंड पैदा करने लगे। उनका यही गुण चमत्कारी सिद्ध हुआ और जीव सृष्टि का कारण बना।

इनमे मौजूद कुछ खास प्रोटीनो ने उत्प्रेरक या एंजाइम का काम किया यानी अभिक्रिया को तेजी से बढाने और अजीवित पदार्थों को जीवन-शक्ति देने का महान् कार्य किया। सार रूप मे कह सकते हैं कि कुछ ऐसी ही रासायनिक अभिक्रियाओ के होते जाने से ये पदार्थ कार्बोहाइड्रेट संश्लेषण आदि क्रियाएं भी करने लगे और आखिरकार ऑक्सीजन लेकर और कार्बन डाई ऑक्साइड बाहर छोडकर श्वसन की क्रिया भी। प्रकृति मे अजीवित पदार्थों से जीवित पदार्थ निर्माण का वह परिवर्तन सचमुच कितना क्रांतिकारी और अनोखा रहा होगा और आज इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है।

केंद्रकवाली कोशिकाएं और जीवो की उत्पत्ति

जीव क्या थे और कैसे उत्पन्न हुए यह बडा अहम् सवाल है और इसकी हमारे पास कल्पनाएं ही हैं। आरम्भिक कोशिकाओ से फिर केंद्रक (न्यूक्लियस) वाली कोशिकाएं बनी और उनसे बने एक कोशिका वाले जीव, जिनमे जंतु तथा पौधो दोनो के गुण

अमीबा

क्लैमाइडोमोनास

थे। ये पादप-जन्तु यानी पौधो व जन्तुओ के मिश्रित रूप कशाभी जीव या फ्लैजेलेट कहलाए। बाद मे अपना हरा पदार्थ या पर्णहरित (क्लोरोफिल) खोकर जन्तुओ की तरह ये अपना भरण पोषण करने लगे। इस बात के भी सबूत मिल जाते हैं कि पौधे

तथा जन्तु 'आदि कशाभी' जीवो से ही पैदा हुए। अपने डोरे जैसे कशाभों को खोकर इनमे से कुछ तो काई या शैवाल वगैरह की तरह बिल्कुल सरल बन गए और कुछ अपना हरा पदार्थ गवाकर जतुओ की तरह बन गए (जैसे अमीबा) और भोजन पकडकर लेने लगे। इसके बाद कुछ वोल्वोक्स सरीखे कालनी वाले जीव भी बने और इस तरह एक कोशिका वाले सरल जीवा से भिन्न भिन्न प्रकार के अधिक कोशिका वाले जटिलतर जीव बनते चले गए। इसी परिवर्तनशील क्रम को हमने विकास के नाम से पुकारा।

इस तरह हम देखते हैं कि आदि जीव अपनी आरम्भिक अवस्था म जीवद्रव्य की बस एक नन्ही बूद थे। तभी टॉमस हक्सले ने कहा था—"जीवद्रव्य एक सजीव रासायनिक यौगिक है।" अब आधुनिक मत के अनुसार—"यह एक रासायनिक यौगिक नही बल्कि जटिल कोलोडीय तत्र के रूप म, आपस मे मिले कई रासायनिक पदार्थों का समूह है।" जन्तुओ के जीवद्रव्य मे अन्य घटको की अपेक्षा प्रोटीन ही अधिक मात्रा म होते हैं और जो अधिक महत्त्वपूर्ण भी हैं।

जीवन-लीला मानव के सन्दर्भ मे

एक जवान आदमी के शरीर मे करीब 600 से 1000 खरब कोशिकाओ का अनुमान किया गया है। मानव के शरीर का चमत्कारी पिंजरा नर कोशिका या शुक्राणु और मादा-कोशिका या अडाणु के आपसी मिलने से ही तो बनता है, जो एक से दो, दो से चार, चार से आठ और इस तरह निरन्तर दुगुनी होती हुई, नौ-दस महीने म शिशु के रूप मे वृद्धि कर जाती है। कोशिका का जीवद्रव्य, कोशिकाद्रव्य (साइटोप्लाज्म) कहलाता है जो चारो ओर की झिल्ली से ढका होता है। इसके बीच मे होता है केंद्रक (न्यूक्लियस), जो कोशिका का सचालक होता है। कोशिका मे राइबोसोम प्रोटीन बनाने की फैक्टरी होती है, जो केंद्रिका (न्यूक्लियोलस) मे उत्पन्न होते हैं। कोशिका की समस्त क्रियाओं के लिए ऊर्जा देने का काम करते हैं माइटोकोंड्रिया, जो कि इसके पावर हाउस हैं। तारककाय (सेन्ट्रोसोम) कोशिका के विभाजन के समय अपना रोल अदा करते हैं।

जीवन क्या है वाले सवाल के लिए उत्तरदायी हैं केंद्रक के भीतर वाले गुणसूत्रो (क्रोमोसोम) का निर्माण करने वाला चमत्कारी रसायन *डी० एन० ए० यानी डीऑक्सी* राइबो न्यूक्लीक एसिड। इस बडे अणु की बनावट सीढी की तरह होती है, जिसके लम्बे डडे फौस्फेट और राइबोस शकरा के और पैडिया एडिनिन थाइमिन तथा ग्वनिन-साइटोसिन की जोडी की बनी होती हैं। इन चार रसायनो मे से किन्ही तीन के मिलने से एक 'शब्द' और कई शब्दा के मिलने से एक अमीनो एसिड और 20 अमीनो एसिडो की अलग-अलग तरकीबो से तरह-तरह के प्रोटीन बनते हैं। यह डी० एन० ए० सारी क्रियाओ पर नियन्त्रण रखता है और सबमे पाया जाता है। सतान मे पिता से आए 23 गुणसूत्रो और माता से आए 23 गुणसूत्रों यानी सतान के 46 गुणसूत्रो के रूप मे यह हर

कोशिका मे रहता है। यही मा बाप के उन पैतक गुणो को भी ढोता है जिन्हें 'जीन' कहते हैं।

डी० एन० ए० जीवन का आधारी रसायन है। यह अपनी नकलें यानी सतानो का सृजन कर सकता है। एक मिलीमीटर लम्बे डी० एन० ए० मे करीब 3 अरब परमाणुओ का अनुमान किया गया है। सभी प्राणियो मे डी० एन० ए० होता है और यह बेजान मुर्दे मे भी होता है। फिर प्रश्न उठता है कि शरीर को जो पुराने कपडे की तरह छोडकर चला जाता है, वह क्या होता है ? वही न कि जो सवव्यापी है पर अदृश्य है और पहेली बना हुआ है। इस रहस्य का पर्दाफाश वैज्ञानिको द्वारा कैसे और कब होगा ?

3

हमारा पर्यावरण

आज हम अपने और अपने पर्यावरण के बारे मे जरा ध्यान से थोडा सोच लें क्योंकि कुछ बुनियादी बाता पर विचार करना सचमुच बहुत जरूरी है। हम मानते हैं कि विज्ञान और टेक्नोलोजी ने हमे ढेर सारी सुख सुविधाए, ऐशो आराम और भोग विलास की चीजें दी हैं पर इन बाता म खोए हुए हम यह भूल गए कि हम गलती भी करते चले गए और करते चले जा रहे हैं। यह पर्यावरण हमे प्रकृति से विरासत मे मिला था, पर विज्ञान-युग के अपने नए रग-ढग से हम इस प्राकृतिक पर्यावरण को अप्राकृतिक बनाते चले जा रहे हैं। पर्यावरण पर सभी का हक है इसलिए इसके बारे मे मनन चिंतन कर और सबक लेकर सही तरह से रग-ढग अपनाना ठीक होगा, वरना बुरे फल भी हमी को भुगतने पडेंगे। मानव चूंकि सबसे अधिक विकसित और सोचने विचारने वाले दिमाग का प्राणी है और पर्यावरण का चौधरी भी है, इसलिए इसके भले-बुरे का जिम्मा भी उसी का है।

प्रकृति में सभी जीव जरूरी हैं

हमारे चारो ओर की भूमि, हवा और पानी ही हमारा पर्यावरण है। इसी मे हम चलते चले आए हैं और इससे हमारा सबध बहुत पुराना है लेकिन हमसे भी पुराना सम्बन्ध पौधो और जानवरो का है। हमारे लिए सारे जानवर और पेड पौधे बहुत ही जरूरी हैं क्योकि इनके बिना तो हमारी जिन्दगी की गाडी जरा भी आगे नही चल सकती। यह पर्यावरण जीव जातियो के कारण ही जीवत है। इसके खिलाफ अगर कोई बुरी क्रिया की जाती है तो वह भी अपनी प्रतिक्रिया दिखलाता है।

विज्ञान-युग के मानव की छेड़छाड़

एक ओर विज्ञान की दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति ने जहां हमे ढेरा फायदे पहुचाए हैं वही कई नुकसान भी पहुचाए हैं और बीसवी सदी के इस बीच तो पर्यावरण के प्रति सभ्य मानव ने बहुत ही अधिक छेड़छाड़ की है। आए दिन मानव को अपनी ही छेड़छाड महगी पड रही है क्योकि प्रकृति का सतुलन डगमगाने लगा है, उसकी सादगी और पवित्रता नष्ट हो रही है और कई बुरे परिणाम मानव के सामने मुह बाए हुए उसे घेरे हुए हैं।

इस बारे मे हमे कई पहलुओ से सोचना होगा। हमारा असयमी होना, मनमानी कारगुजारिया करना, सोच विचार न करके लहर मे काम करना, दूरदर्शिता न रखना, तुरत वाले फायदे देखना, आबादी को बढने देना आदि कई बातें हैं जो इन परिणामो के लिए जिम्मेदार हैं। अपनी जरूरतो को पूरा करने के लिए मकान बनाने, खेती करने, ईंधन प्राप्त करने, पैसे बनाने तथा अन्य उपयोगो के लिए पेडो और जगलो का सफाया हो रहा है और इसके साथ जीवो का भी। रोज ही नई नई सडकें, बिल्डिगें, मिल, फैक्टरिया, कारखाने वगैरह बन रहे हैं। हानिकारक रसायनो, गैसो व अन्य चीजो का जोरो पर इस्तेमाल हो रहा है। शहरो से लेकर गावो तक पर्यावरणकी प्राकृतिकता नष्ट होती जा रही है। मोटर-गाडिया वाली सडको के किनारे धूल स सनेऔर रोगो से ग्रस्त पेड पौधे चुपचाप रोते हुए अपनी कहानी कहते हैं। सारी गदगिया और बेकार बचे-खुचे पदार्थ नदियो व सरिताओ मे डाल दिए जाते हैं और मजा देखिए कि यही पानी फिर पीने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। अपने घरो, अहातो और बाग बगीचो में आए दिन हम जहरीले जीवनाशी रसायनछिडकते हैं। इस तरह पर्यावरणसामान्य प्रकार का कैसे रह पाएगा और नाजुकमिजाज प्रकृति कैसे ठीक रह पाएगी ?

पेड-पौधे और जानवर हमारे मित्र

यू तो पर्यावरण मे थोडा बहुत प्रदूषण होता रहता है पर यह प्रदूषण पर्यावरण द्वारा स्वय ही ठीक कर लिया जाता है। प्राणियो और पेड-पौधो द्वारा सास लेते समय प्राणवायु या ऑक्सीजन अन्दर ली जाती है और सास छोडते समय कार्बन-डाई ऑक्साइड या गदी हवा बाहर छोडी जाती है। अगर यह कार्बन-डाई-ऑक्साइड यू ही जमा होती रहती तो जमा होकर सब जहर हो गया होता। पर धूप की रोशनी मे पेड पौधो के हरे पदार्थ द्वारा यह गदी हवा या कार्बन डाई ऑक्साइड साफ करके फिर ऑक्सीजन मे बदल दी जाती है। इसीलिए शहरो के बीच के पेड पौधे वाले बाग-बगीचो, पार्कों या इलाको को 'शहरो का फेफडा' कहा जाता है।

पृथ्वी पर जीवन की शुरुआत हरे पौधे से ही हुई है और हरे पेड-पौधे न हो तो जीवन बिलकुल असम्भव है। खाने के लिए गेहू, चावल, जो ज्वार, बाजरा आदि अनाज तथा किस्म किस्म की दालें, मसाले, साग सब्जिया, फल वगैरह सब हमे

पेड पौधो से ही मिलते हैं। मकान, शहतीरो, कडियो, तख्तो, फर्नीचर, रेल, मोटर, बन्दूक, माचिस आदि असख्य वस्तुओ के निर्माण मे पेडो की लकडी ही काम आती है। ओढने, बिछाने व पहनने के लिए रूई, कपास जूट, रेशम आदि भी इन्ही की देन है। जलाने के लिए लकडी व कोयला भी इन्ही की देन है। करोडो वर्ष पहले जमीन के अदर दबे जगलो की लकडी से ही धीरे धीरे कडा पत्थर का कोयला बना। इसी तरह सड-गल कर और रिस रिस कर जमा होता गया पौधा का रस धीरे धीरे चटटानो मे सुरक्षित मिट्टी का तल व पट्रोल बना। लिखने पढने के लिए पुराने जमाने से लेकर आज तक भोजपत्र तथा आज के कागज के लिए पेड-पौधा का उपयोग होता रहा है। अलग-अलग प्रकार के रग, गाद, सरेस, रबड, चाय, कॉफी, वार्निश, तेल, शक्कर, गुड, चीनी, औष घिया, तम्बाकू आदि भी पेड पौधा से ही मिलते हैं। पूजा, शृगार और सजावट वगैरह मे भी पेड पौधे ही हमारे काम आते हैं। हमारे पशु व जानवर इन्ही की बदौलत जीते हैं। वैज्ञानिको ने बताया है कि अलग-अलग तरह के पेड-पौधा की पत्तिया विभिन्न गैसों आदि के जहर, धूल आदि से जूझकर पर्यावरण को स्वच्छ रखती हैं।

दूसरी ओर जानवर हमे दूध, मक्खन, घी, चर्बी, गोश्त, भोजन, दवाइया, ऊन, खाल, चमडा, कीमती चीजें वगैरह देते हैं। हमारा हल चलाते हैं, हमारी गाडियां खीचते हैं, हमे सवारी करवाते हैं, हमारा बोझ ढोते हैं, हमारा मन बहलाते हैं, हमारे कई शौक भी पूरा करते हैं। कई प्राणी हमारी बेरहमी से विलुप्त हो गए हैं व होते जा रहे हैं और जिन्हें दुबारा देखने के लिए हम तरस जाएगे। इसलिए इनकी रक्षा करना भी हमारा धम है।

जगलो के कम होने से विभिन्न जीव जातियां तो कम होती ही हैं, पर साथ ही गरमी बढ जाती है, वर्षा कम होती है और सारी आबहवा ही बदल जाती है। भूमि के नगा हो जाने से वह आसानी से पानी नही सोख पाती और कभी सूखे तो कभी बाढ़ की स्थितिया आ जाती हैं और भूमि के दरकने की सभावनाए बढ जाती हैं। अब वैज्ञानिक भी चेतावनी देकर यही कहते हैं कि खपत करने के बाद ऐसी योजना रहे कि वह फिर पूरी भी कर दी जाए। इस्तेमाल के लिए पर्यावरण से प्राप्त की गई चीज फिर उसे लौटा दी जानी चाहिए और इसके लिए विनाश की दिशा मे नही बल्कि नित्य नए निर्माण की दिशा में चलना होगा।

पर्यावरण की सुरक्षा हमारी ही जिम्मेवारी है

भूमि, पानी, हवा, प्राणिया और वनस्पतिया की सुरक्षा का ध्यान सबसे ऊपर है। यदि पर्यावरण की रक्षा नही की गई, प्रदूषण की मात्रा कम न की गई और जहरीले पदार्थों को पर्यावरण मे इसी तरह छोडा जाता रहा तो एक दिन ऐसा आएगा जब ताजी हवा और स्वच्छ पानी मिलना मुश्किल क्या असम्भव हो जाएगा और आज की बीमारियो के अलावा नई नई बीमारिया पैदा होने लगेंगी।

कुछ सवालो का जवाब देना भी बहुत जरूरी है। स्वच्छ पर्यावरण के लिए और

स्वस्थ जीवन के लिए हमे सादगी लाने के लिए पुराने पाषाण काल मे नही चले जाना है और न अपने सामाजिक जीवन मे विज्ञान और टेकनोलोजी की उन्नति, प्रगति और विकास को ताक पर रख देना है। समस्या का हल पीछे लौटने मे नही, आगे बढने मे ही है। पर्यावरण की रक्षा करके उसे स्वच्छ व स्वस्थ बनाए रखना ही विकास है। ऊर्जा का उपयोग और पदार्थों का प्रयोग प्राकृतिक रूप से और परिस्थितियो के अनुसार इस तरह व्यवहार मे लाना है कि खपत के लिए पर्यावरण से उधार ली गई चीज फिर उसे ब्याज सहित वापस कर दी जाए। तभी प्रकृति का भण्डार भरा रह सकता है। सही मायने में जब हमारे विज्ञान और टेकनोलोजी नैतिकता के आधार पर चलेंगे तभी हमारा कल्याण हो पाएगा।
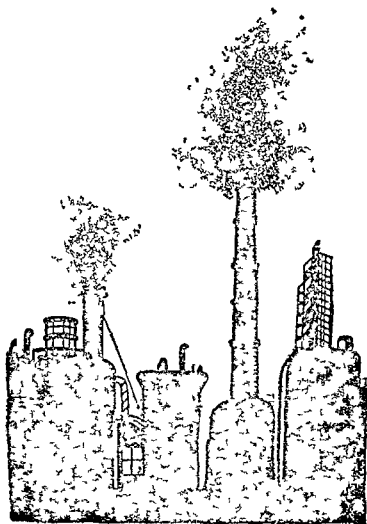
पर्यावरण का प्रदूषण

विज्ञान के बूते पर ऊर्जा व ईंधन के लिए हमे लकडी, कोयले, तेल, बिजली आदि के अलावा अन्य साधना की खोज भी करनी होगी और आम आदमी के लिए भी इसे मुहैया कराना होगा। पानी, हवा, सूर्य आदि का उपयोग करने के लिए ऐसी नई जुगतें सोचनी होगी कि ये चीजें आम आदमी की पहुच मे हो और वह भी इनका फायदा उठा सकें। तब एक ही साधन या चीज पर जोर नही पडेगा। साथ ही प्राकृतिक चीजा का उपयोग करने से पर्यावरण का प्रदूषण भी बहुत कम होगा।

योजनापूण तरीके से वनो का थोडा-बहुत उपयोग करते हुए उन्हें हमेशा हरा भरा रखने की युक्तिया भी काम मे लानी होगी। जितना काटा व इस्तेमाल किया उससे ज्यादा उन्ह भरने-पूरने की कोशिश रखनी होगी। ग्रामीण क्षेत्रो मे और शहरी क्षेत्रो के किनारे व बीच भी जल्दी उगने व बढने वाले पेडा को लगाना मुनासिब होगा। 'वन महोत्सव' वाला सिद्धात कोरा कागजी न रहकर व्यवहार मे लाना होगा ताकि हमारी वसुधरा सही अथ मे वसुधरा रहे, हरी भरी रहे और सब सपदा की दृष्टि स अक्षुण्ण भण्डार वाली रहे।

सरकारी व गैरसरकारी स्तर पर इस प्रसग मे रोज ही नई बातें और तरकीबें सोची जा रही हैं। विश्वविद्यालय व अन्य सस्थाए खोजो मे लगी हैं और सरकार हर तरह स इन सारी बाता मे भरसक मदद दे रही है। पर देश क जागरूक नागरिक क नाते हमारी भी जिम्मेदारी है कि हम बताई गई बाता पर पूरी तरह अमल करें।

जिदगी का व्यावहारिक पक्ष यह है कि थोडे-बहुत प्रदूषण के बगर तो आज के आदमी का काम चलने का नही और पेडो का थोडा बहुत कटना और नई जमीन का थोडा बहुत तोडा जाना स्वाभाविक है। बस हमे जरा अपनी प्रवृत्ति बदलनी होगी—नागरिक भावना, सयम और दूरदर्शिता से काम करना होगा। पर्यावरण के मामले म हमे अपनी बुद्धि विवेक, मर्यादा के अनुसार इन सब बाता को ध्यान मे रखकर उचित रुख अपनाना होगा और पर्यावरण को मेरा, तेरा और सबका पर्यावरण समझकर सही कदम उठाना होगा। जिस पर्यावरण और जिसकी जीव जातिया से हमारा शरीर बना है और हमारा जीवन चलता है उसक प्रति हमारी भावना पवित्र और निश्छल होनी ही चाहिए। तभी उसकी सुरक्षा है और तभी हमारा कल्याण है।

4

समुद्र · जलीय पर्यावरण

समुद्र की गुत्थिया और समस्याए भी अन्तरिक्ष की समस्याओ की तरह कम महत्त्वपूण नही हैं। सयुक्त राष्ट्र सघ, न्यूयाक मे हुई सवप्रथम अतर्राष्ट्रीय समुद्रविज्ञान काग्रेस में 38 देशो के 800 समुद्रविज्ञानियो ने पाच सामान्य विषयो पर चर्चा की थी। ये पाच विषय थे—समुद्रो का इतिहास, समुद्रो की आबादी, समुद्रो की गहराई, समुद्रो की सीमाए और समुद्रा मे कार्बनिक व अकार्बनिक पदार्थों का चक्र।
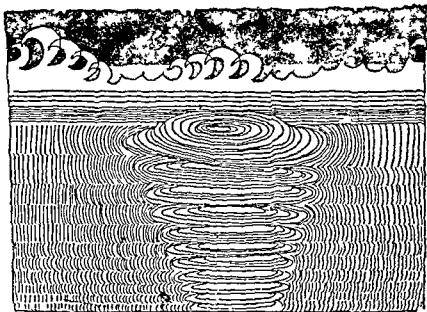
समुद्र अगाध जलराशि

अधिकाश भूमि यानी 71 प्रतिशत भूमि समुद्र के नीचे है। पृथ्वी का आरभिक इतिहास जानने से पहले हमें समुद्र की तलहटी पर की चट्टानो के इतिहास को जानना होगा। समुद्र भी मानव के लिए अतरिक्ष की ही तरह चुनौती का एक कारक है और

सच्चाई यह है कि समुद्रो के कई क्षेत्रो के बारे मे तो हम चांद की सतह से भी कम जानते हैं।

समुद्र की तलहटी की चट्टानो, उसके पानी व उसके जीवधारियो के अध्ययन से ही सृष्टि के रहस्यो का ज्ञान हो सकेगा। समुद्र से कितनी खनिज सम्पदा, कितने रसायन, कितनी मछलिया, कितने खाद्य पदार्थ, कितने प्रोटीन पदार्थ प्राप्त किए जा सकते हैं, यह सब समुद्र के बारीक अध्ययन से ही पता चल सकता है। भूमि पर खेतो से प्राप्त होने वाले अन्न की कमी और बढती आबादी के पोषण के लिए तथा दुनिया के अल्पपोषित वर्ग के लिए भोजन जुटाने के लिए समुद्र को एक अच्छा माध्यम बनाया जा सकता है।

समुद्रो के सदर्भ मे लोगो की दिलचस्पी नई नही है और यह दिलचस्पी दिना दिन बढती चली जा रही है। लेकिन आज इस दिलचस्पी की आवश्यकता भी है। केवल ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से लोग बहुत पहले से समुद्रो के रहस्यो का पता लगाने का प्रयत्न करते रहे हैं, लेकिन इसके पीछे कुछ व्यावहारिक कारण भी हैं। समुद्रो से हमे ऐसी अनेक वस्तुए प्राप्त हो सकती हैं, जिनकी हम दैनिक जीवन मे आवश्यकता पडती है। आनेवाली पीढिया अवश्य ही अपने भोजन के लिए समुद्र की ओर आज की अपेक्षा अधिक ध्यान देंगी और उनका यह भोजन केवल मछलियो के ही रूप में नही होगा बल्कि अन्य खाद्य पदार्थों और नए उत्पादो के रूप मे भी होगा। समुद्रो मे आधुनिक उद्योगो के लिए अनेक खनिज व रसायन भी हैं। समुद्र, परिवहन के प्रमुख मार्ग भी बने ही रहेंगे और जैसे-जैसे विमान जहाजो की जगह लेते जाएगे वैसे-वैसे मौसम के अधिक सही अनुमान की जरूरत भी बढ़ती जाएगी। मौसम को समुद्रो के अन्दर की प्रघटनाए बहुत अधिक प्रभावित करती हैं।

समुद्र का तल समुद्र-तट से शुरू होकर लगभग सौ फैदम की गहराई तक धीरे धीरे अधिक-से-अधिक गहरा होता चला जाता है। इसके बाद महाद्वीपीय मग्न ढाल से होते हुए यह खडी ढलान का रूप ले लेता है और महासागर के वितल मे परिवर्तित हो जाता है। समुद्र-तट से लेकर सौ फैदम तक की गहराई के क्रमिक ढलान को महाद्वीपीय मग्नतट भूमि कहते हैं। इस प्रकार महाद्वीपीय मग्नतट भूमि एक तरह से उपान्तीय अथवा सतत स्थल खड ही है और सूखी जमीन की तरह ही इसमे भी घाटिया, पहाडिया, कटक या धार तथा पठार हैं। मग्नतट-भूमि सकरी भी हो सकती है, जिसके परिणाम स्वरूप समुद्र तल समुद्र-तट से कुछ मील पर ही कई सौ फैदम नीचे चला जाता है, जैसा स्कॉटलैड या आयरलैड के पश्चिमी समुद्र-तटो मे है। लेकिन यह भूमि चौडी भी हो सकती है, जिसके परिणामस्वरूप समुद्र-तट से लगभग सौ मील पर भी सौ फैदम की गहराई शुरू नही होती, जैसाकि इगलिश चैनल मे है।

महाद्वीपीय मग्न ढाल समतल नही है। कुछ भागो मे तो यह ऊची पर्वतमालाओ के ढलानों की तरह है। करीब पन्द्रह सौ फैदम की गहराई मे जाकर यह ढलान समाप्त हो जाती है और महासागर के वितल के समतल मैदानो मे परिवर्तित हो जाती है।

यद्यपि इन स्थानो को प्राय मैदान ही कहा जाता है तथापि उनके सबध मे व्याख्या के कुछ शब्द आवश्यक हैं। विस्तृत क्षेत्रो मे, जैसे कि पूर्वी अटलांटिक मे, महासागर तल आश्चयजनक रूप से समतल और सपाट हो सकता है पर विस्तृत क्षेत्रो मे भी ऊची पवतश्रेणिया, पहाडिया तथा घाटिया और गहरी खाइया होती हैं। उदाहरण के लिए, अटलांटिक महासागर उत्तर से दक्षिण तक चली गई एक लम्बी पवतश्रेणी द्वारा पूर्वी तथा पश्चिमी द्रोणी मे विभाजित है। प्रशात और हिन्द महासागर भी इसी प्रकार द्रोणियो मे विभाजित हैं, यहा तक कि समतल मैदानो मे भी समुद्री पहाडिया तथा ऊबड खाबड शकु होते हैं जो कभी-कभी समुद्र की सतह से दो सौ फैदम के भीतर तक उठे होते हैं। प्रशात महासागर मे समुद्री पहाडियो की विशेष रूप से बहुलता है।

इस प्रकार जिन जलराशियो से समुद्र और महासागर बनते है उनमे से एक तो वे हैं जो महाद्वीपीय मग्नतट-भूमि पर हैं और दूसरी वे हैं जो महासागरो की द्रोणियो मे हैं। उनमे बसने वाले प्राणियो और पौधो मे अन्तर है और उनके पानी के रग भी अलग अलग हैं। महाद्वीपीय मग्नतट भूमि के ऊपर समुद्र हरे हैं और उनके उपतट, विशेषत बडी नदियो मे मुहानो के पास, जल मे निलम्बित बालू तथा कीचड के कारण, गदले होते हैं। महाद्वीपीय मग्नढाल के ऊपर पानी कुछ हरापन लिए हुए नीले रग का और अत मे खुले महासागर मे पहुचकर नीले रग का हो जाता है।

पानी की सतह पर से प्रवेश करनेवाला प्रकाश प्रकीण होने के साथ साथ सोख लिया जाता है। जहा जल मे कण लटके होते है वहा वह कम गहराई तक प्रविष्ट होता है। गोताखोरो की रिपोट के अनुसार तीस फुट की गहराई मे केवल हरा रग होता है। इसका कारण यह है कि पराबगनी और लाल किरणें सतह की परता मे शीघ्रता से सोख ली जाती हैं, जबकि हरी और नीली किरणें सबसे अधिक दूरी तक पहुचती हैं। महासागरीय जल मे मानवीय आखें ढाई सौ फैदम की गहराई तक प्रकाश का आभास पा सकती हैं और जब सुग्राही फोटो प्लेटो को गहराइयो मे उतारा गया तो उन पर इससे दुगुनी गहराई मे प्रकाश का आभास अकित हुआ। पाच सौ फैदम की गहराई से नीचे महासागर पूण रूप से अधकारमय है।

जहा तक जन्तुओ का सबध है, उन पर केवल प्रकाश का ही प्रभाव नही पडता लेकिन पौधो पर प्रमुख प्रभाव प्रकाश का ही पडता है। जैसे जैसे नीचे जाए, वैसे वैसे दाब बढता जाता है, परन्तु अधिक गहराई मे रहने वाले जतु इसके और साथ ही न्यूनतर तापमानो के प्रति भी अनुकूलित होते हैं। गहराई वाले जन्तु दाब के कारण चपटे और प्रकाश के अभाव मे आखो आदि प्रकाश सवेदी अगो से रहित होते हैं।

ध्रुवीय अक्षाशो की तुलना मे उष्णकटिबधीय समुद्रा की सतहो पर तापमान अधिक होता है, परन्तु सतह के नीचे तापमान समान ही रहता है। समुद्र का खारापन अलग-अलग प्रदेशा और गहराइयो मे बदलता रहता है और जैसे-जैसे गहरे जाए, कम होता चला जाता है।

पानी जितना ठडा होता है, उसका घनत्व उतना ही अधिक होता है। ध्रुवीय

प्रदेशो से आनेवाला अपेक्षाकृत ठडा और भारी पानी जल्दी से सतह मे नीचे डूब जाता है और वस्तुत महासागर तल पर दो भिन्न जलराशियां धीरे धीरे बढ़ती हैं, उत्तर ध्रुवीय धारा दक्षिण की ओर तथा दक्षिण ध्रुवीय धारा उत्तर की ओर। सार रूप मे यह कह सकते हैं कि ये शीतल धाराए और जलराशिया उष्णकटिबधीय समुद्रों की सतह पर गम होकर कुछ स्थाना पर आकर मिलती हैं। अत में परिणाम यह होता है कि सतह का, बीच का तथा तल का पानी भिन्न भिन्न दिशाओ मे चलता होता है। यदि हम इसमे उन धाराओ को भी सम्मिलित कर लें जो हवा से प्रभावित होकर चलती हैं, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि किस प्रकार विशाल जलधाराओ के प्रभाव से महासागरों की जलराशिया मे सदैव सचलन होता रहता है। ससार के अनेक भागो में इसके सुपरिचित उदाहरण हैं, जस कि गल्फ स्ट्रीम, लैब्राडोर धारा, वेनेजुएला धारा, पेरू धारा आदि। इन सबका प्राणिया तथा पौधो के जीवन पर गहरा प्रभाव पडता है।

समुद्र म गहरे पैठकर मोती बटोर लाना बहुत पुरानी बात है। समुद्र के गम से अक्षय भडार को प्राप्त करने के लिए सुर और असुरा ने भी समुद्र मथन किया था और चौदह रत्ना की प्राप्ति की थी। आज के वैज्ञानिक भी समुद्र-मथन मे लगे हुए हैं।

अब तक अधिकाश खनिज और कच्ची धातुए जमीन का खोदकर प्राप्त की जाती थी, लेकिन अब परिस्थितिया बदलती जा रही हैं। अनेक आवश्यक कच्चे मालों के भूगर्भीय स्रोत समाप्त होते जा रहे है। अब हम नई विधियो से समुद्री तनु घोल से पहले की अपेक्षा अधिक आसानी से अधिक पदाथ निकाल सकते हैं। समुद्री जल के विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि समुद्री जल म विद्यमान लवण आदि पदाथ ये हैं—साधारण नमक, मैग्नीशियम क्लोराइड, मग्नीशियम सल्फेट, कल्शियम सल्फेट, पोटाशियम सल्फेट, कैल्शियम कार्बोनेट, मैग्नीशियम ब्रोमाइड, फ्लोरीन, बेरियम, आयोडीन, आर्सेनिक, रुबिडियम, चादी, सोना, रडियम आदि। यूरेनियम और टाइटेनियम ऑक्साइड भी तली मे जमा होते रहते हैं।

करीब 44 राष्ट्र अतर्राष्ट्रीय समुद्रविज्ञान आयोग क सदस्य हैं। आज नवीन इलेक्ट्रोनिक उपकरणा और वैज्ञानिक उपस्करा की सहायता से मानव ने समुद्र के अधिकाश तल के ऊचे नीचे स्थाना अर्थात् पवतो का मानचित्रण कर लिया है, तलहटी के फोटो खीच लिए है तथा चट्टान और तलछट के नमूने प्राप्त कर लिए हैं। समुद्र की गहराइया यानी भीतरी स्थानो को खोजने के लिए वैज्ञानिका व इजीनियरो ने समुद्र विज्ञानीय वाहना की रूपरेखा तैयार की है।

समुद्र से खाद्य काइ या शैवाल भारी मात्रा मे निकाले जा सकते हैं। जापान तो यह काय कई सालो से करता चला आ रहा है। अभी कई ऐसे समुद्री जानवर भी है, जिनका स्वाद मानव की जिह्वा न लिया ही नही है और इनको समुद्र की अतल गहराई से ऊपर तक हाकने के तरीके खोजने होगे। समुद्र मे मछलिया की खेती अर्थात अडो को बोकर फसल बटोरने की वैज्ञानिक विधि से भी भोजन के स्रोत बढाए जा सकते हैं।

भोजन के अतिरिक्त आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से समुद्र की गहराई मे अन्य और भी कई बहुमूल्य चीजें हैं। समुद्र की तलहटी के नीचे तेल के भडार, प्राकृतिक गैस और लगभग सभी प्रकार की उपयोगी खनिज सम्पदा बिखरी हुई है। भारत का तेल और प्राकृतिक गैस आयोग समुद्रो से तेल और प्राकृतिक गैस प्राप्त करने के लिए कायरत है और तेल आदि निकालने के लिए समुद्र मे मच बनाए गए हैं। एक दिन आएगा जब हमारे विशेषज्ञ मिट्टी से सोना वाली कहावत की तरह पानी से तेल आदि सम्पदा निकालकर नई कहावत को सच कर दिखाएगे।

5

कीटनाशी रसायन और प्रकृति का प्रदूषण

ये कीटनाशी रसायन सचमुच 'बूमरेंग' हैं। इनका छिड़काव होता है कीटो और हानिकारक जीवो को मारने के लिए लेकिन प्रभाव पडता है उल्टे मानव पर ही। कितनी भारी विडम्बना है। इनसे हमारे वातावरण, जीवन और मौसम मे बहुत परिवर्तन आते जा रहे हैं। हमारी इस पृथ्वी का इतिहास वास्तव मे जीवधारियो और उनके पर्यावरण के बीच पारस्परिक प्रतिक्रिया का इतिहास रहा है। पृथ्वी का भौतिक रूप तथा वनस्पतियो व प्राणियो का स्वभाव काफी अधिक सीमा तक वातावरण द्वारा ढाला गया है। इतने लम्बे अन्तराल को देखते हुए विपरीत क्रिया यानी जीवो द्वारा वातावरण कितना प्रभावित हुआ है, यह कहना पडेगा कि पर्यावरण बहुत ही कम प्रभावित हुआ है। लेकिन इस शताब्दी मे मानव ने इतनी शक्ति अर्जित कर ली है कि वह दुनिया की प्रकृति को बदल रहा है।

वातावरण पर मानव आक्रमण की सबसे अधिक चौंकाने वाली बात है—भयानक और प्राणघाती पदार्थों से वायु भूमि नदिया व समुद्रा का प्रदूषण। अधिकाश प्रदूषण ऐसा है जो कि फिर से ठीक नही हो सकता। जीवधारियो के अगा व ऊतको मे एक बार शुरू हुआ नही कि फिर बदलना मुश्किल। वातावरण के इस विश्वव्यापी सदूषण म ये रसायन विकिरण के साथ मिलकर पृथ्वी व उसके जीवो की आधारभूत प्रकृति को बदलने म लगे हुए हैं।

मानव उत्पत्ति के बहुत पहले से ही सृष्टि मे विविधानुकूली कीट विराजमान थे। मानव उद्भव के बाद ये उसकी खुशहाली मे दो प्रकार से बाधा पहुचाने लगे। एक तो भोजन मे उसका हिस्सा बटाकर और दूसरे विभिन्न रोगो के वाहक के रूप म। इसलिए इन कीटो का नाश करने म हमने कीटनाशी रसायनो का प्रयोग शुरू कर दिया, जिसमे कि हमे केवल सीमित सफलता ही मिल पाई।

बीस वष की अवधि से कम समय मे ही सश्लेषित हानिकारक जीवनाशी रसायन जीवित और अजीवित पदार्थों मे अच्छी तरह से घुलमिल कर सवव्यापी बन गये हैं। बृहत् नदी तन्त्रा और यहा तक कि पृथ्वी के नीचे अदृश्य रूप मे बहने वाली भूमि

गत सरिताओ से भी ये प्राप्त किए गए हैं। ये दूर पर्वतीय झीलों की मछलियो, केंचुओ, चिडियो के अण्डो और मानव मे भी पाए गए हैं।

यह सब द्वितीय महायुद्ध की देन है क्योंकि इन कीटनाशी गुणो वाले सश्लेषित रसायनो का उत्पादन सम्बद्ध उद्योगो की स्थापना के कारण ही हुआ। रासायनिक युद्ध के लिए प्रयोगशाला मे आयुध तैयार करते समय कुछ रसायन कीटो के लिए प्राणघातक जो सिद्ध हुए। धीरे-धीरे सरल रसायनो से जटिलतर कीटनाशी रसायन तैयार किए
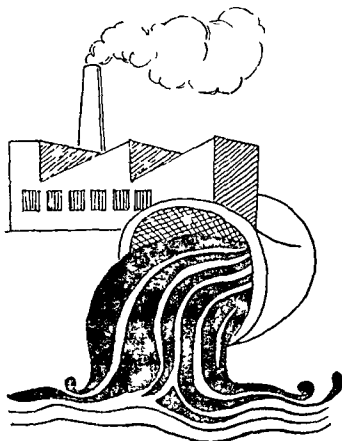
प्रकृति का प्रदूषण

जाने लगे। इन शक्तिशाली रसायनो मे विपाक्त करने की ही शक्ति नही बल्कि शरीर की महत्वपूण क्रियाओ मे प्रवेश कर उनको बिगाडकर घातक रीति से बदल देने की भी बडी क्षमता होती है।

डी० डी० टी० का विश्वव्यापी स्तर पर बहुत अधिक प्रयोग होने लगा। सबसे पहले इसका प्रयोग महायुद्ध मे सैनिको, शरणार्थियो व कैदियो की जूए मारने के लिए किया गया था। यह पूर्ण रूप म त्वचा द्वारा नही सोखा जाता, लेकिन तेल मे घोलने पर विषैला होता है। शरीर मे प्रविष्ट होने पर यह वसा प्रधान अगो मे जमा होता रहता

है। अधिकांशतया यह जिगर, गुर्दे और आंतों को सम्हाले रखने वाली आंत्रयोजनी की वसा में जमा हो जाता है।

इनके अल्पांश से ही शरीर के एंजाइमों का सदमन व जिगर की कोशिकाओं का ह्रास हो जाता है और अन्य कुपरिणाम भी सामने आते हैं। डिएल्ड्रिन और क्लोरडेन नामक रसायन तो बहुत प्रभावकारी होते हैं। 1930 35 में पाया गया कि यकृतशोथ (हेपेटाइटिस) का कारण क्लोरीनीकृत नैफ्थलीन का प्रयोग था। डिएल्ड्रिन, ऐल्ड्रिन और एंड्रिन नामक कीटनाशी (इनसेक्टीसाइड) अपने वर्ग में सबसे अधिक विषैले हैं और इनमें एंड्रिन सबसे अधिक। दूसरी कोटि के कीटनाशी हैं ऐल्किल या कार्बनिक फॉस्फेट। ये सबसे अधिक विषैले रसायन हैं। इनमें अधिकतर पैराथायोन प्रयुक्त होता है जो बहुत खतरनाक होता है। दूसरा कार्बनिक फॉस्फेट मलाथायोन है जो डी० डी० टी० की ही तरह सुप्रचलित है।

हमारे जलमार्गों का प्रदूषण रिऐक्टरों, प्रयोगशालाओं, अस्पतालों आदि के रेडियोऐक्टिव अवशिष्टों व नाभिकीय परीक्षणों की राख तथा गन्दे कूड़े करकट और फैक्टरियों के रासायनिक मल आदि से हो सकता है। यह अन्य प्रकार की रासायनिक बुकनी के छिड़के जाने से भी हो सकता है। घरेलू व अन्य मल पदार्थों के साथ जब इन्हें पानी में छोड़ा जाता है तो शुद्धीकरण संयंत्रों द्वारा अपनाई गई परीक्षण विधि में भी ये रसायन पकड़ में नहीं आते।

कीटों, चूहों, अन्य जीवों तथा बेकार वनस्पतियों के नियन्त्रण के लिए छिड़के जाने वाले इन कीटनाशियों से प्रदूषण की मात्रा में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इस जल प्रदूषण समस्या में सबसे अधिक चौंकाने वाली बात यह है कि भूमिगत जल के प्रदूषण का भय व्यापक रूप से बढ़ता ही जा रहा है। वर्षा वगैरह वाला भूमि पर का यह मिश्रित जल छेदों व दरारों के नीचे पैठकर निरन्तर गति करता रहता है और अधिकांशतया सरिताओं व नदियों में पहुंच जाता है।

प्रदूषित जल को मानव शरीर में ग्रहण करने पर तो हानि होती ही है लेकिन ऐसे जल से जब पौधों व फसलों की सिंचाई होती है तो वे पौधे भी रोगी हो जाते हैं और इनके रसायनधारी हो जाने के कारण पशुधन व मानव भी इनसे प्रभावित हो जाते हैं। भूमिगत और सतही जल में जीवनाशी रसायनों की उपस्थिति के कारण सार्वजनिक जल में विषैले ही नहीं बल्कि कैंसर उत्पन्न करने वाले रसायन भी मिलते जा रहे हैं।

मिट्टी की जो पतली परत महाद्वीपों को ढकती है, वही परत हमारे, स्थलीय प्राणियों व पौधों के अस्तित्व का नियंत्रण करती है। लेकिन भूमि भी जीवों पर निर्भर करती है। भूमि के अदृश्य सूक्ष्म जीव मिलकर भूमि को जीवन्त, सामान्य व सार्थक बनाए रखते हैं और एक दूसरे पर आश्रित रहते हैं। हमने कभी भी यह ध्यान नहीं दिया है कि इन रसायनों से भूमि की ऊपरी परत के लाभकारी और महत्त्वपूर्ण बाशिन्दों पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से क्या बीतती होगी। न कभी हमने यह सावधानी

बरती कि लाभकारी 'अच्छे' कीट, बैक्टीरिया या जीव न मरें और केवल हानिकारक जीव ही मरें। न ही हमने कभी यह सोचा कि इतने विषैले रसायनो से तिलमिलाकर पृथ्वी अपनी बेइज्जती पर कभी उल्टी मार भी करेगी। और न हमने कभी इस बात पर ध्यान किया कि भूमि तथा प्राणी व वनस्पतियो के ऊतक कितनी मात्रा मे इन विषैले रसायनो को सोखते चले जा रहे हैं।

इन कीटनाशियो द्वारा भूमि मे नाइट्रीकरण की क्रिया भी मद पड जाती है। अनेक लुभावने वृक्ष, प्राणी, पक्षी, मछलिया, वनस्पतिया लुप्त ही होती जा रही हैं। प्रकृति की गरिमा बिगडती जा रही है। प्रकृति मे जो स्वत चलने वाला जैविक नियन्त्रण है वह नष्ट हो रहा है। विदेशो मे कुछ सगठनो ने मछलियो, मेढको व जलीय प्राणियो के नाश को देखकर हेप्टाक्लोर, डिएल्ड्रिन और अन्य विषो की हवाई फुहारो को बन्द करने की सलाह दी है।

आजीवन खतरनाक रसायनो का यह सम्पर्क अन्तत दुखान्त ही रहेगा। कितना ही अल्प सम्पर्क क्यो न हो, शरीर मे शनै शनै रसायनो का अर्थात विषो का जमाव होता रहता है। औसत नागरिक को पता ही नही चलता कि वह इन्हें इस्तेमाल कर रहा है किन्तु विडम्बना यह है कि घर की रसोई से लेकर दूर के जगलो तक इनका खूब प्रयोग हो रहा है।

जीवनाशी रसायनो द्वारा हमारी भूमि, जल और भोजन प्रदूषित हो रहे हैं। मानव प्रकृति का एक अभिन्न अग है। वह इस प्रदूषण से बच नही सकता है। स्वास्थ्य अधिकारियो ने बताया है कि इनके जैविक प्रभाव लम्बी अवधि मे सचयी प्रकार के होते हैं। व्यक्ति विशेष पर इनका प्रकोप उसके जीवन काल के समस्त प्रभावो का मिलाजुला परिणाम होगा। डाक्टर रीने डुबोस के अनुसार—"मानव तुरन्त प्रकट होने वाली बीमारियो से अधिक प्रभावित होता है किन्तु सत्य यह है कि उसके भयानक शत्रु अप्रकट और अदृश्य रूप मे उस पर मडराते रहते हैं।

हमारे शरीर के अन्दर की परिस्थितियो का भी बडा हाथ है। "एक स्थान पर का परिवर्तन, यहा तक कि एक अणु का परिवर्तन असम्बद्ध अगो, ऊतको व सम्पूर्ण तन्त्र में खलबली मचा सकता है।" लेकिन हम हैं कि तुरन्त प्रकट होने वाले लक्षणो पर ही अधिक ध्यान देते हैं और अन्य तुरन्त प्रकट न होने वाले लक्षणो को टाल जाते हैं। इसके दौरान विषैले पदार्थ शरीर की वसा मे जमा होते रहते हैं। इस जमा वसा को शरीर की क्रियाए जब उपयोग के लिए खीचती हैं तो उस समय यह विष एकदम अपना असर दिखा सकता है। वसा को अनेक कार्य करने होते हैं और इसमे विद्यमान विष इसके कार्य मे बाधा पहुचा सकते हैं। वसा के माध्यम से ही उपचय और ऊर्जाप्राप्ति आदि की महत्वपूर्ण क्रियाए सम्पन्न हो पाती हैं।

क्लोरीनीकृत हाइड्रोकार्बन रसायनो का सबसे अधिक कुप्रभाव यकृत यानी जिगर पर पडता है। इस असाधारण अग के बूते पर ही सारी महत्त्वपूर्ण क्रियाए चलती हैं। इसमे जरा भी खोट आ जाती है तो बडे भयकर परिणाम भुगतने पडते हैं। वसा के

पाचन के लिए पित्तरस उत्पन्न करने के अतिरिक्त यह अन्य खाद्य पदार्थों के चयापचय की विविध क्रियाओं का भी सम्पादन करता है। शकरा को यह उपयोगी ग्लाइकोजन के रूप में जमा रखता है। रक्त का थक्का बनाने वाले पदार्थों व प्रोटीनों का निर्माण करना तथा रक्त में कोलेस्टरोल को ठीक स्तर पर बनाए रखना भी इसके काम हैं।

कीटनाशी रसायनों का छिड़काव

यह नर और स्त्री हॉरमोनों को मर्यादित रखकर विटामिनों को जमा रखता है। इन सबके अतिरिक्त यह शरीर में आने वाले या उत्पन्न होने वाले विषों से जूझकर उन्हें नष्ट करता रहता है। अतः कीटनाशियों द्वारा यकृत के क्षतिग्रस्त होने का अर्थ है जान का जोखिम में पड़ना।

इन कीटनाशियों की विषाक्तता की समस्या बड़ी विचित्र है और इस बात से तो और भी विचित्र हो जाती है कि मानव प्रयोगशाला के अन्य प्राणियों की तरह न तो उतनी नियंत्रित दशा में रहता है और न उस पर केवल एक ही रसायन का प्रभाव पड़ता है। दो प्रकार के रसायनों में भी परस्पर प्रतिक्रियाएं होती हैं। ये रसायन, भूमि, पानी, मानव रक्त में या कहीं भी पृथक् नहीं रहते बल्कि अनेक गुप्त परिवर्तनों के द्वारा एक-दूसरे की हानिकारक शक्ति को बढ़ा देते हैं।

इसका यह मतलब नहीं कि हमें इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए। लेकिन

हमारा कल्याण तभी है जब कि हम इनका प्रयोग उचित, सीमित और मर्यादित प्रकार से करें। इन रसायनो के प्रयोग में हमे, अधाधुध इस्तेमाल न करके, सावधानिया बरतनी होगी। प्रकृति इतनी आसानी से हमारे साचे मे नही ढल सकेगी। कीट हमारे रसायनो के प्रति अपने को नए-नए तरीकों से बचाते जा रहे हैं। वे अपनी अवरोधक्षमता बढाते जा रहे हैं और हमारे रसायन उनकी रक्षाशक्ति के प्रति कमजोर साबित होते जा रहे हैं। अत नियत्रण विधियो मे हमे जोर शोर से अनुसधान और उपाय करने होगे। हमारा ध्येय जोर जबरदस्ती के असगत तरीको को अपनाना नही बल्कि सभाव्य साव-धानी से प्राकृतिक विधियो का निर्देशन होना चाहिए।

6

पारिस्थितिक असतुलन

पारिस्थितिक असतुलन और प्रदूषण वह क्रिया या अवस्था है, जिसमे पर्यावरण का सतुलन और निर्मलता नष्ट हो जाती अथवा बिगड जाती है। ऐसा कई तरह स हो सकता है।

मानव और वातावरण का बहुत ही गहरा सम्बन्ध है। वातावरण का प्रभाव प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मानव पर पडता है। यह प्रभाव तुरन्त नजर नही आता किन्तु काफी समय बाद स्पष्ट रूप से सही तस्वीर सामने आती है। प्रकृति के विरुद्ध क्रिया की जाएगी तो उसकी प्रतिक्रिया होगी ही और इसी प्रतिक्रिया की चपेट में अन्य जीवो समेत मानव भी आ जाता है। यह काफी कुछ वैज्ञानिक उन्नति के कारण हो रहा है जबकि मनुष्य तुरत मिलने वाले फायदो और सुविधाओ के चक्कर मे गडबडिया करता चला जाता है और फिर उनसे उबरना और बाहर निकलना उसके लिए मुश्किल हो जाता है।

प्रकृति से छेडछाड

मानव के चारो ओर का प्राकृतिक वातावरण और उसमे होने वाले या किए जाने वाले परिवतन ही उसकी परिस्थितिया हैं और उसके इस पारिस्थितिक तन्त्र (इकोसिस्टम) मे प्राकृतिक और मानवकृत विभिन्न क्रियाकलाप होते रहते हैं। मानव अपनी सुख-सुविधा के लिए जाने अनजाने ऐसे काय कर बैठता है जिनसे प्रकृति को निरन्तर हानि पहुच रही है और चारो ओर का वातावरण विकृत यानी प्रदूषित हो रहा है। जनसख्या की भीषण वृद्धि के साथ साथ मकानो, खेती, ईंधन आदि के लिए जगलो का सफाया हो रहा है, नए नए कारखाने, मशीनो का प्रयोग व उद्योग बढ रहे हैं और पर्यावरण अप्राकृतिक होता जा रहा है यानी वह हानिप्रद रसायनो, गैसा तथा अन्य पदार्थों से प्रदूषित व असतुलित होता जा रहा है। नगरो और महानगरो का वाहित मल नदियो मे छोड दिया जाता है और फिर वही पानी पीने के लिए इस्तेमाल मे लाया जाता है। घरा, बगीचों, खेतो, आसमान में आए दिन हम विषालु कीटनाशियो का इस्तेमाल करते हैं, जिनसे वातावरण मे धीरे धीरे प्रदूषण बढ रहा है, विषाक्त गैसें

भरती जा रही हैं और प्रकृति का सतुलन बडी उग्रता से गडबडाता जा रहा है।

मानव के जीवित रहने के लिए जिस तरह भूमि जरूरी है उसी तरह वनस्पतिया और अन्य प्राणी भी जरूरी हैं। प्रकृति का सम्पूर्ण तन्त्र एक विशाल मशीन की तरह है जिसमे छोटे से छोटा पेच और पुर्जा उसके सुचारु कार्य सचालन के लिए बडे अवयवो की भाति ही महत्त्वपूर्ण है। जरा-सी खराबी से सारी मशीन और उसकी क्रिया गडबडा जाती है। प्रकृति का हर जीव यानी पेड-पौधे, प्राणी, कीडे-मकोडे, पक्षी, हिंस्र जीव आदि सभी प्रकृति के महत्त्वपूर्ण अग और पुर्जे हैं, जो इस ग्रह पर जीवन के प्राकृतिक तन्त्र का सचालन और निर्धारण करते हैं। किसी भी कारण पौधे या प्राणी की किसी भी जाति को यदि गडबडी पहुचती है तो इसके परिणाम सृष्टि के सारे क्रियाकलापो मे महसूस किए जाते हैं। अगर किसी कारण से जगल मे हरिणो की सख्या कम हो जाए तो उनका शिकार करने वाले शेर, बाघ आदि को भोजन की कमी हो जाएगी और वे हमारा पशु-धन उठाने लगेंगे या आदमखोर बन जाएगे। कुछ साल पहले जमैका मे चूहा ने फसलो को इतना अधिक नुकसान पहुचाया कि भारत से वहा नेवले भेजे गए। नेवलो ने अपना काम इतनी मुस्तैदी से किया कि वहा सारे चूहो का सफाया हो गया। लेकिन जब चूहे नही मिले तो नेवलो ने चिडियो और मुर्गियो आदि को खाना शुरू कर दिया। फिर जब वहा पक्षी भी साफ हो गए तो कीडे इतने बढ गए कि फसलो को पहले चूहो से जो हानि पहुचती थी उसकी अपेक्षा और भी अधिक क्षति पहुची। प्रकृति का जैविक सतुलन बहुत नाजुक होता है और किसी एक जाति की वद्धि अथवा निराकरण से भौतिक वातावरण मे सुस्पष्ट परिवतन हो जाता है।

प्रकृति मे जैविक सतुलन की गडबडी

प्राकृतिक सतुलन मे अन्य कारणो की अपेक्षा मानव ने अपनी सभ्यता के दप मे आकर सबसे अधिक गडबडी की है। बुलडोजरो और अन्य मशीनो के प्रयोग से अनेक जैविक समुदायो का नाश हुआ है। इससे जगलो, घास के मैदानो अथवा मरुस्थलो और भूमि की ऊपरी परत मे ही पूण परिवतन नही होता बल्कि आसपास के क्षेत्रो का वाता-वरण भी बदल जाता है। सडकें और महामाग बनाने से अपवाह तत्र मे परिवतन हो जाता है जिससे किसी पादप समुदाय को बहुत अधिक या बहुत कम पानी प्राप्त होता है जिसका परिणाम होता है अनेक पौधो की मृत्यु। प्राकृतिक वनस्पतियो के निराकरण से हवा और पानी से होने वाला भूमि क्षरण बढ जाता है, जिससे आधी-तूफान से अथवा नदियो द्वारा भूमि की ऊपरी उवर परत की हानि होती है। मटमैले पानी से इतना कम प्रकाश पहुचेगा कि जलीय पौधे भोजन की कमी के कारण नष्ट हो जाएगे क्योकि वे पर्याप्त प्रकाश सश्लेषण (फोटो सिंथेसिस) नही कर पाएगे। इसका परिणाम यह होगा कि जलीय प्राणी भूखे मरेंगे और उनकी कमी से जल के मासाहारी प्राणी भी। बही हुई मिट्टी मछलियो तथा अन्य प्राणियो को प्रत्यक्ष रूप से मार सकती या घायल कर सकती है। नदी, ताल अथवा झील मे वाहित मल, छिडके रसायनो और औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थों

का ऐसा प्रभाव पडता है कि जैविक सतुलन पूरी तरह से गडबडा जाता है।

प्राकृतिक वनस्पतियो का आवरण न रहने से कभी सूखे की तो कभी बाढ की स्थिति आ जाती है क्योकि फिर भूमि आसानी से पानी नही सोख सकती और वर्षा का अधिकाश जल एकदम नदियो मे बह जाता है। कीटनाशी रसायनो के व्यापक प्रयोग से भी भयानक गडबडी हो जाती है। पक्षी तथा अन्य प्राणी, जो कीटो का प्राकृतिक नियन्त्रण करते हैं, विषाक्त कीट खाने से मर जाते हैं। ये कीटनाशी लाभदायक कीटो, जैसे भौंरो और मधुमक्खियो को भी मार देते हैं।

इसी प्रकार कार्बन-डाई-ऑक्साइड की बढती हुई मात्रा, घरेलू अपमाजक नदियों व समुद्रो में गिराया जाने वाला वाहित मल, औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थ, स्वचल गाडियो से उत्पन्न गैसें, रेडियोसक्रिय पदार्थ, धुआं, शोर आदि से पर्यावरण प्रदूषित होता है।

विकास योजनाओं का बुरा परिणाम

भारतीय विज्ञान सस्थान, बगलोर के श्री माधव गाडगिल के अनुसार सिंचाई और पन बिजली परियोजनाओ के प्रभाव से पश्चिमी घाट की जैविक विविधता बहुत कम हो गई है। इन परियोजनाओ का अधिक वर्षा वाले क्षेत्रो और जल-पथ के निकटवर्ती क्षेत्रो पर विशेष प्रभाव पडता है। यहा पहले सदाबहार पेडो की जातिया खूब पनपा करती थी। ये वन पौधों तथा प्राणिया की अनेक ऐसी जातियो के अनुपम भण्डार रहे हैं, जो दुनिया मे अन्यत्र कही भी नही पाई जाती।

शरावती के प्रसिद्ध जोग प्रपात के बिखरे क्षेत्र मे 'बोर' नामक घास उगा करती थी जो ससार मे अन्यत्र कही नही होती। पर अब शरावती विद्युत् परियोजना के कारण इसका लगभग लोप ही हो गया है। इसी प्रकार सन् 1955 के लगभग जब पश्चेत बांध का काय शुरू हुआ तो उस समय पहाडी ढाल पर आम और हरड के काफी वृक्ष थे। जैसे जैसे इस परियोजना का कार्य आगे बढा वैसे-वैसे आम और हरड के पेडो का सफाया किया जाता रहा। हरड के पेडो के अच्छे कोयले की भी माग खूब बढी। फलस्वरूप 1960 तक केवल जलमग्न क्षेत्र ही नही, पहाडी ढाल के सम्पूर्ण निचले क्षेत्र के सारे पेड काट दिए गए और लगभग आधा अपवाह क्षेत्र सफाचट हो गया।

पश्चिमी घाट का दूसरा विलुप्त होने वाला जीव है सिंह-पुच्छी वानर। दुनिया मे अब तक इस बन्दर की केवल दो सक्षम जातिया ही बची हैं। यह वानर कुलीनिआ वश के वृक्षो पर ही जिन्दा रहता है और यदि अधिकाश कुलीनिआ वन जलमग्न हो जाएगा तो इसके साथ ही इस वानर का भी सफाया हो जाएगा।

प्रदूषण के प्रति विश्व चेतना

विश्व के विशेषज्ञा ने चेतावनी दी है कि यदि प्रदूषण इसी तरह बढ़ने दिया गया तो एक अवस्था ऐसी आएगी जब ताजी हवा और शुद्ध पानी मिलना मुश्किल हो जाएगा। वातावरण मे विषैले पदाथ जमा होते जाएगे तो नए-नए रोग पनपते जाएगे

और मानव जाति खतरनाक मोड पर पहुच जाएगी।

भारतीय पर्यावरण समिति के तत्त्वावधान मे अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरणी प्रबन्ध शिक्षा कायक्रम के निदेशक, डॉक्टर माइकल जी० रायस्टन ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था कि—"एक हाथ से जो निर्माण किया जा रहा है, दूसरे हाथ से उसका नाश नही होना चाहिए और पारिस्थितिक की (एकोलोजी) का अर्थ विनाशहीन विकास समझना चाहिए। इस सदर्भ मे गाव वालो और शहर वालो दोनो को सक्रिय होना चाहिए। भूमि, जल और पेडो की सुरक्षा का ध्यान रखना चाहिए। यदि पानी प्रदूषित होता है तो भूमि क्षरण होगा। पृथ्वी का विनाश होता है तो सोते, सरिताए आदि सूख जाएगी, और इतना ही नही, फिर इस प्रकार के पारिस्थितिक असन्तुलन से मछली पकडने वालो और किसानो के दैनिक जीवन पर असर पडेगा।"

पेडो की रक्षा मे राजस्थान के विश्नोइयो और गढवाल हिमालयवासियो का 'चिपको आन्दोलन' प्रकृति सरक्षण के अनुपम उदाहरण हैं। वक्षो को बचाने के लिए उन्होने अपनी जान की बाजी लगा दी। केरल की शात घाटी (साइलेण्ट वैली) का सरक्षण भी इसी दिशा मे एक प्रयत्न है। परिस्थितिविज्ञान की शिक्षा यही है कि खपत वाले साधनो को हमेशा नव-निर्माण की दिशा मे अग्रसर रखा जाए।

पर्यावरण सबधी अनुसधान

बम्बई शहर मे वायु और धूलि प्रदूषण नियत्रण के लिए आम के पेड लाभदायी सिद्ध हुए हैं। सूरजमुखी सरीखे शोभाकारी पौधे भी उपयोगी पाए गए हैं। ये रोचक परिणाम विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा आयोजित अनुसधान परियोजना 'पौधो पर औद्योगिक वायु प्रदूषको का प्रभाव' के आधार पर प्राप्त हुए हैं जिसका सचालन इस्टीट्यूट ऑफ साइसेज, बम्बई के परिस्थितिविज्ञान के एसोशिएट प्रोफेसर डा० एस० बी० चाफेकर ने किया था। वे आम की पत्तिया और सडक के किनारे उगने वाले खर पतवार 'कनकउवा' या 'कोमलाइना' की पत्तियो की सहायता से बम्बई शहर मे प्रदूषण वितरण के मानचित्र तैयार करने म सफल रहे।

प्रयोगशाला मे पौधो पर सल्फर-डाई ऑक्साइड के नियन्त्रित धूमन (फ्यूमिगेशन) सम्बन्धी प्रयोगो से ज्ञात हुआ है कि 10 दिन के 'मथ' (अमरेन्टस विरिडिस) के पौधे इसके प्रति बहुत अधिक सवेदनशील होते हैं, और इसी कारण सल्फर डाई ऑक्साइड के प्रदूषण का नियत्रण करने मे काफी अधिक सक्षम है। यह गैस औद्योगिक प्रक्रमो मे बहुत अधिक मात्रा मे निकला करती है और श्वसन सम्बन्धी रोग उत्पन्न करती है। बृहत् बम्बई में रोज ही वातावरण मे लगभग 1,000 टन प्रदूषक पदार्थ छोडे जाते हैं जिनका एक तिहाई से अधिक अश सल्फर डाई ऑक्साइड का होता है।

प्रदूषक पदार्थों मे एक अमोनिया भी है। डॉ० चाफेकर द्वारा किए गए प्रयोगो से यह भी पता चला है कि 'गौर' (स्यामोप्सिस टेट्रागोनोलोबा) और 'सनई' (क्रोटालेरिया जसिया), हवा से अमोनिया अलग करने मे बहुत सक्षम होते हैं।

7

पानी स्वच्छ तो काया स्वस्थ

पुरानी प्रसिद्ध कहावत है कि—'पानी पीजे छान के, गुरु कीजे जान के' इसम छने यानी स्वच्छ पानी की बडी महत्ता दिखलाई गई है कि देखभाल के स्वच्छ पानी ही पीना चाहिए क्योकि गदे पानी से सकडा रोगाणु जो पनपते हैं। अब तो गदे पानी की एक बूद मे हम खुदबीन की मदद स गदगिया, सूक्ष्म जतु, रोग फैलाने वाले रोगाणु देख सकते हैं। जब यह कहावत बनी होगी उस समय खुदबीन नही थी, पर उस समय के दाने सयाने लोगो ने अपने लम्बे अनुभवो के आधार पर ही यह बात कही होगी जो आज भी खरी उतरती है। अगर हम गदा पानी पिएगे तो पानी के साथ हमारे शरीर मे ढेर सारे महीन जतु, रोगाणु तथा विषैली चीजें भी पहुच जाएगी और कई बीमारिया पैदा कर देंगी। फिर हम परेशान होगे ही और समय पर दवा नही करेंगे तो बीमार होकर क्या मालूम जान भी गवा बैठें।

पानी के बिना हमारी ही नही बल्कि किसी भी जानवर या पौधे की जिदगी नही चल सकती। जीवधारियो के शरीर का लगभग 60 प्रतिशत पानी ही होता है। हमारा लहू और पेड पौधो का रस कुछ नही, बस पानी म खनिज पदार्थों वाला घोल ही तो है। यह पानी किस काम नही आता यानी यह हमारे सभी कामो मे इस्तेमाल होता है। इसके बगैर हमारी कोई भी क्रिया पूरी नही हो सकती। यह हम सबके लिए सचमुच अनमोल चीज है, लेकिन वैसे कितनी सस्ती और साधारण चीज है। यह पीने, शरीर मे अन्य पदार्थों को बहाने व पहुचाने, भिन्न भिन्न अगो को भोजन ले जाने, मल-मूत्र निकालने, शरीर का ताप बनाए रखने, धुलाई सफाई करने, सिचाई करने यानी कि सारे कामकाजो मे इस्तेमाल होता है। हमारी खेती स लेकर आधुनिक उद्योगो तक एकमात्र आधार है यह। हमारे लिए यह बेजोड चीज प्रकृति का एक वरदान है।

अच्छे स्वास्थ्य के लिए आम सफाई के साथ साथ स्वच्छ पानी बहुत जरूरी है। सक्रामक बीमारियो के अलावा ज्यादातर छोटे बच्चों की मौत दो बुरी चीजो स होती है यानी कि दूषित पानी और सामान्य स्वच्छता की कमी से। यदि हम अपने दैनिक जीवन म स्वच्छ पानी का इस्तेमाल करें और व्यक्तिगत सफाई पर ध्यान दें तो गदे पानी के कारण होने वाले हैजा, टाइफाइड सरीखे रोगो, पानी स फैलने वाली खुजली,

रोहे सरीखे रोगों, कृमि या कर्म वाले रोगों तथा मलेरिया, पीत ज्वर सरीखे कई रोगों से बचे रह सकते हैं।

काफी कुछ पढने लिखने और सीखने के बाद हमे बचाव की बातों पर अमल करना ही चाहिए और औरों को भी प्रेरित करना चाहिए। इन बातों पर महिलाओं को भी ध्यान देना चाहिए कि वे बच्चों को भी बात-बात में सिखलाकर उन्हें भी जागरूक बनाएं। बच्चों को भी बतलाया जाना चाहिए कि स्वच्छ पानी कितना जरूरी है और गंदे पानी से क्या क्या हानियां होती हैं। उन्हें उन नदियों और नहरों का पानी नहीं पीना चाहिए जिनमें वे नहाते व तैरते हैं और गाय-भैंस भी नहाती-तैरती हैं। शौचालयों को स्वच्छ रखना तथा सफाई से उनका इस्तेमाल करना और अपनी व अपने खाने की सफाई पर ध्यान देना स्वास्थ्य के पहलू से बहुत महत्त्वपूर्ण है।

मानव सभ्यता के दौर से गुजरता रहा है और यह कोई बढ़ा-चढाकर बोली जाने वाली बात नहीं है, यदि हम कहें कि आदमी को सभ्य बनाने में पानी का बहुत बड़ा हाथ रहा है। देख लीजिए कि सभ्य मानव को हर बात के लिए आज सबसे अधिक पानी चाहिए। आदमी की प्रसिद्ध बस्तियां नदियों, झीलों, तालाबों या पानी के किनारे ही बसी हैं। मानव की तंदुरुस्ती तथा खुशहाली और पानी का बहुत गहरा सम्बन्ध है।

आज के युग में स्वच्छ पानी लोगों की जिन्दगी का एक पैमाना ही हो गया है। अधिकांश पश्चिमी देश इसीलिए अधिक विकसित हैं कि उनके यहां बहुत अधिक स्वच्छता रहती है और उन्हें स्वच्छ पानी आसानी से मिल जाता है। वे जब भी इस्तेमाल करते हैं तो स्वच्छ पानी ही इस्तेमाल करते हैं।

हवा की प्राणवायु या ऑक्सीजन के अलावा कोई भी चीज शरीर के लिए ज्यादा जरूरी नहीं है। एक अच्छा तंदुरुस्त व्यक्ति भोजन के बिना एक महीने तक भी जिन्दा रह सकता है, पर बिना पानी के वह कुछेक दिनों के बाद जिन्दा रह ही नहीं सकता। एक सामान्य तंदुरुस्त व्यक्ति को औसत रूप से रोज पानी के करीब छह गिलासों की जरूरत पड़ती है। लेकिन हम जैसे गर्म देश वाले लोगों को ठण्डे देश वाले लोगों की तुलना में अधिक पानी की जरूरत होती है। यह इस कारण कि गर्म देश के लोगों के शरीर से पसीने के रूप में काफी पानी बाहर निकल जाता है। यदि किसी आदमी को पानी की काफी मात्रा नहीं मिल रही है तो उसके बीमार पड़ने का अंदेशा अधिक रहता है।

दूषित पानी और कुस्वास्थ्य

पानी को तभी दूषित कहा जाता है जब उसमें मैल, मल मूत्र, कूड़ा कचरा, गंदगी, उद्योगों के बचे खुचे पदार्थ, विषैले रसायन, रोग फैलाने वाले सूक्ष्म जीव् जन्तु या अन्य प्रकार के बेकार पदार्थ मिले होते हैं। नदियों, तालाबों, सरिताओं, झीलों, झरनों, स्रोतों आदि के पानी में गन्दगियां और हानिकारक पदार्थों के मिल जाने को ही पानी का दूषित होना कहा जाता है।

लोगो को अक्सर यह मालूम नही रहता कि अपने जल साधनो का अच्छा और सही इस्तेमाल कैसे करें। एक ही तालाब तलैया कपड़े धोने, नहाने, बतन धोने, जानवरो को नहलाने और पीने के पानी के लिए इस्तेमाल की जाती है। यह सचमुच ही बहुत हानि कारक है। पीने वाले पानी के कुए और तालाब विभिन्न प्रकार के जानवरो के त्याज्य पदार्थों से सावधानीपूवक बनाए जाने चाहिए। दूषित पानी से हमारी तन्दुरुस्ती को भारी खतरा रहता है क्योकि कई तरह के रोग हो सकते हैं, जैसे कि—पीलिया और पोलियो सरीखे वाइरस रोग, दस्त हैजा, टाइफाइड सरीखे बैक्टीरिया रोग और सूक्ष्म जीवो व कृमियो से होने वाले रोग।

अपने देश की सभ्यता व सस्कृति बहुत पुरानी है। 'मनुस्मृति' मे भी लोक कल्याण के लिए कहा गया है कि पानी मे मल मूत्र, थूक, खून, जहरीले पदार्थ, रसायन व अन्य दूषित पदाथ न डाले जाए। बतन व कपडा धोने तथा नहाने म भी साबुन, रसा यन तथा मैल पानी मे मिल जाते हैं। सोचिए कि पीने के पानी मे ये चीजें मिल जाए तो फिर कैसा लगेगा। इन बातो से सबक लेने से यह फायदा होगा कि हम दूषित पानी नही पिएगे और हमारी तन्दुरुस्ती को खतरा नहीं होगा।

जहा सफाई रखने और धोने के लिए पानी पूरा नही पडता तो खुजली, खारिश सरीखी कई गडबडिया हो जाती हैं। बचे व सडते पानी मे कीट पनपते हैं और इस तरह मलेरिया, फाइलेरिया आदि जानलेवा रोग पैदा हो जाते हैं।

शरीर मे पानी पीने की कमी होना

प्राय लोग शरीर म पानी की कमी से भी पीडित हो जाते हैं, खासकर छोटे बच्चे। हैजा या दस्त होने पर और लगातार कै होने पर शरीर से बडी तेजी से पानी बाहर निकल जाता है। बच्चो को अगर पोषण ठीक से नही मिल रहा है और ऊपर से दस्त होते हैं तो उनका बीमार पडना व कमजोर होना स्वाभाविक है।

शरीर मे पानी की कमी से पीडित व्यक्ति पीले व मुरझाए स हो जाते हैं। उनकी आखें धस जाती हैं और चमडी व जीभ सूख जाती है। चमडी की आमतौर पर रहने वाली लचक कम हो जाती है। एसा व्यक्ति बीच-बीच मे बार-बार ज्यादा से ज्यादा पानी पीता रहता है तो वह शरीर से पानी की कमी को पूरा करता रहता है और धीरे धीरे ठीक हो सकता है। ऐस पीडित व्यक्तियो को ज्यादा से ज्यादा पानी या अन्य प्रकार के तरल पीते रहना चाहिए और अपने खान म भी कमी नही रखनी चाहिए। इस दशा म एक लीटर पानी मे एक चुटकी नमक और एक करछुल चीनी डाल कर देने से फायदा पहुचता है। इस तरह नमक व चीनी के घोल से शरीर से निकले खनिज पदार्थों की पूर्ति हो जाती है और व्यक्ति स्वास्थ्य लाभ कर लेता है।

हानिकारक पानी पीने से फ्लुओरोसिस नामक रोग भी हो जाता है। अपने देश के कुछ भागो मे जो लोग लम्बे समय तक 'फ्लोराइड' वाला पानी पीते हैं उनम हड्डियो की कुरूपता और दातो की गडबडिया हो जाती हैं। आध्रप्रदेश और पजाब के कुछ

भागो मे यह रोग आमतौर पर पाया जाता है। पीने के पानी मे फ्लोरीन या फ्लोराइड नामक लवण के कम होने से भी स्वास्थ्य सबधी समस्याए उठ खडी होती हैं, खासकर दात की गडबडिया। पश्चिम के देशो मे तो यह आम बात है। ऐसी जगहो पर पानी मे फ्लोराइड डाले जाते हैं।

भारी पानी से भी कुछ रोग हो जाते हैं। पानी को उबालने से उसका भारीपन दूर हो जाता है और पानी के रोगाणु भी मर जाते हैं। इस तरह पानी का स्वाद भले ही बदल जाता है पर ऐसा पानी स्वास्थ्य के लिए अच्छा रहता है। छोटे पैमाने पर पानी को स्वच्छ करने के लिए ब्लीचिंग पाउडर या विरजन चूर्ण मिलाना भी एक आसान तरीका है।

अत मे हम यही कहेंगे कि पीने के पानी के इस्तेमाल मे हमे सावधानी रखनी चाहिए और तभी हमारा कल्याण है। स्वच्छ पानी से हम अपनी तन्दुरुस्ती को बरकरार रख सकते हैं।

8

विकिरण और उसका प्रभाव

वैसे तो अवकाश (खाली स्थान) अथवा किसी माध्यम म ऊर्जा (एनर्जी) वाली तरगो के उत्पन्न होने और चलने के प्रक्रम अथवा इस प्रकार सचरित ऊर्जा को ही सामान्यतया 'विकिरण' (रेडिएशन) कहते हैं, लेकिन इस सदभ मे विकिरण की परिभाषा इस प्रकार होगी—'वह ऊर्जा, जो विद्युत् चुम्बकीय तरगा के रूप मे निकलती है और जिसमे कोस्मिक किरणें, गामा किरणें, एक्स किरणें, पराबैंगनी विकिरण, प्रकाश, अवरक्त विकिरण, ताप किरणें और रेडियो तरगें शामिल हैं। यह रेडियोऐक्टिव पदार्थों द्वारा उत्पन्न इलेक्ट्रोन, न्यूट्रोन, प्रोटोन, अल्फा बीटा कणो या अधिक ऊर्जा वाले फोटोन सरीखे कणो का प्रवाह अथवा इनके मिश्रण का प्रवाह है।"

अधिकाश लोगो को पता नही है कि मानव जाति निरतर विकिरण के प्रभाव मे आती जा रही है, जिसका 68 प्रतिशत प्राकृतिक पृष्ठभूमि से, 31 प्रतिशत चिकित्सीय विकिरण स, 0 6 प्रतिशत नाभिकीय परीक्षणा के 'फॉल आउट' से और केवल 0 15 प्रतिशत नाभिकीय शक्ति उद्योगा से आता है।

इस बात की स्थापना बीसवी सदी के दूसरे दशक के उत्तराध मे मुलर, आल्टेन बग और स्टैंडलर (1924) की खाजो स हुई कि एक्स रे प्रकार के आयनकारी विकिरण से आनुवशिक या पैतृक (जीनेटिक) पदाथ पर स्पष्ट प्रभाव पडता है। इनकी खोजो से निष्कष निकला कि एक्स किरणो मे उद्‌भासन या सम्पक और प्रभावित सततियो की वृद्धि मे घनिष्ठ सबध है।

विकिरण के वातावरण का हमारे शरीर पर बहुत प्रभाव पडता है। विकिरण किसी भी प्रकार का हा सकता है अर्थात् नाभिकीय आयुधो अथवा परीक्षणा, न्यूट्रोन, एक्स-रे, गामा किरणा व अ य रेडियोऐक्टिव उत्पादा का। सभी विकिरणा का प्रभाव करीब-करीब एक सा ही होता है। नाभिकीय आयुधो और बम परीक्षणो के कारण उत्पन्न होने वाले विकिरण स हमारे शरीर म सीजियम 137 और स्ट्राशियम 90 नाम के प्रमुख रेडियोऐक्टिव तत्व तथा वायु व भूमि म बरियम, लेन्थेनम, येनियम, निओडिमियम और यूरेनियम परमाणु के अ य आइसोटोप उत्तरोत्तर काफी मात्रा मे जमा होते जायेंगे। इनस शरीर मे सदूषण की वृद्धि होती जाएगी, जिसके फलस्वरूप खून और

हड्डी में कैंसर तथा अन्य रोग शरीर में घर करते जाएगे। गुणसूत्र (क्रोमोसोम) व जीनों अर्थात् पैतृकता से सबद्ध लक्षणा की वाहक इकाइयो पर इनका गहरा प्रभाव पडेगा, जो ऋणात्मक रहेगा।

1927 मे मुलर नामक जीवविज्ञानी ने घोषणा की थी कि उन 'ड्रोसोफिला' या फलमक्खियो मे, जिनके पूर्वज विकिरण मे रखे गए थे, आनुवशिक (पैतृक) असामान्यतायें पाई गइ, और इस घोषणा के बाद अनेक प्रकार के पौधो व प्राणिया मे मुलर की खोज का सत्यापन किया गया। अध्ययन के बाद पाया गया कि सभी प्रकार के अधिक ऊर्जा वाले विकिरण, यदि वे गुणसूत्रो व जीना तक पहुचते हैं तो, अवश्य ही शरीरक्रियात्मक-परिवतन, गुणसूत्र-परिवतन और विशेष परिवतन या 'उत्परिवतन' (म्यूटेशन) करते हैं।

मुलर ने पहले-पहल एक्स-रे विकिरण द्वारा कायापलट या 'जीन-परिवतन' की तरकीब खोज निकाली। तब से फलमक्खिया, पौधो व अन्य जीवो पर अधाधुन्ध प्रयोग और अनुसधान होते जा रहे हैं। विकिरण और मक्खिया के इन्ही मनचाहे कायापलट सबधी प्रयोगो के परिणामस्वरूप मोगन ने 1933 मे और मुलर ने 1946 म नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया। विकिरण द्वारा डण्डी घुमाकर एक ही प्रकार की फलमक्खी को मुडे, सीधे या छोटे पखो वाली, लाल या सफेद आखो वाली, काले या भूरे शरीर वाली, भिन्न प्रकार की टागो वाली या जैसा चाहे वसा ही बनाया जा सकता है।

विकिरण द्वारा जीव-परिवतन या जीन परिवतन के प्रयोगो के बलबूते पर ही आजकल गेहू, ज्वार-बाजरा, मक्का, धान आदि के अधिक उपज व बडे दाने वाले और रोगसह पौधे धडाधड पदा किये जा रहे हैं। सूक्ष्मदर्शी अध्ययन से ज्ञात होता है कि विकिरण गुणसूत्र टूटन मे सहायक होते हैं। वे गुणसूत्रा म सभी प्रकार क विपथन या अपसामान्यतायें उत्पन्न करते हैं। इन होने वाले परिवतना की सख्या और विकिरण मात्रा मे परस्पर प्रत्यक्ष रूप से समानुपात होता है। आनुवशिकविज्ञ (जेनेटीसिस्ट) इस बात से सहमत हैं कि विकिरण द्वारा प्रेरित उत्परिवतना की कोई सीमा नही है। ऐसी अल्प मात्रा कोई नही है जिससे जरा भी उत्परिवतन न हो। कहने का मतलब यह है कि अल्प से अल्प विकिरण से भी कुछ न कुछ परिवतन अवश्य होता है। जनन-कोशिकाओ—शुक्राणु व अडाणु—मे प्रत्येक 'डोज' या खुराक कितनी ही अल्प क्यो न हो उससे गभधारण की अवस्था और जनन के बीच भावी पीढ़िया के लिए खतरे की सभावना रहती ही है।

मात्रात्मक अनुमान

मात्रात्मक अनुमान करने बैठें तो कुछ अनिश्चिततायें सामने आती हैं, क्योंकि मानव सबधी आकडे अभी अपर्याप्त हैं और प्रयोगात्मक प्राणियो मे परिणाम विभिन्न जातिया मे बदलते जाते है। उदाहरण के लिए, एक निश्चित विकिरण मात्रा के प्रति चूहे फलमक्खियो की अपेक्षा 18 गुना अधिक सवेदनशील होते हैं। चूहा फलमक्खी की अपेक्षा बडे शरीर और लम्बे जीवन चक्र वाला होता है, इसीलिये वह अधिक सवेदन-

शील होता है। अत इसी आधार पर मानव को चूहे की अपेक्षा और अधिक उत्परिवतनशील होना ही चाहिए।

परमाणु विकिरण के प्रभाव पर सयुक्त राष्ट्र सघ की रिपोट से अनुमान होता है कि 4 प्रतिशत मानव शिशुओ मे अभी या बाद म गम्भीर आनुवशिक दोष होंगे। यद्यपि यह अज्ञात है कि इसका कितना अश उत्परिवतन दर से सबद्ध है, तो भी सयुक्त राष्ट्र सघ की समिति ने अनुमानित किया है कि उत्परिवतन दर को दुगुना कर देने से यह 4 प्रतिशत स 5-8 प्रतिशत तक भी बढ सकता है। विकिरण की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप माता पिता से दोषी जीन शिशु म जो पहुच जाते हैं।

छोटा नुकसान, बडा नुकसान

1000 रोटजन से अधिक विकिरण से जब छोटी आत को नुकसान पहुचता है तो वह नुकसान दूर नही हो पाता और स्थायी हो जाता है। ऐसे मे विकिरण सपक के एक सप्ताह बाद रोगी की मृत्यु हो जाती है और ऐसी मृत्यु को 'आत्र मृत्यु' कहते हैं। 3000 रोटजन से अधिक विकिरण से होने वाली मत्यु को 'केन्द्रीय तन्त्रिका तत्र मृत्यु' या मस्तिष्क वाली मृत्यु' कहते हैं। ऐसा रोगी उद्भासन के कुछ घटे, एक दिन या दो दिन बाद मर जाता है। इसके विपरीत कम विकिरण मात्रा से अन्य प्रभाव हो सकते हैं। हाथ, जबडे या अन्य अगो मे दाह (जलन), शरीर मे थकान, मतली आना, क होना, दात बालो का झडना, अस्थायी बध्यता तथा सूखी चमडी का रोग आदि बातें हो जाना सामान्य लक्षण हैं। 50 100 राटजन वाला विकिरण रुधिर मे अस्थायी प्रभाव कर सकता है, जैसे कि रुधिर मे लाल व श्वेत रुधिर कणिकाओ की कमी, यद्यपि व्यक्ति को इसका कुछ भी मान नही होगा।

विशेपज्ञ का कहना है कि विकिरण की ऐसी कोई सीमा नही है जिससे रोग न हो। जीनी या आनुवशिक (पैतक) हानि के सन्दभ मे तो कितनी ही कम मात्रा क्यो न हो अवश्य हानि पहुचेगी। यह तो थी शरीर से बाहर से आने वाले विकिरण की बात, लेकिन शरीर के अन्दर के पदार्थों से भी विकिरण होने लगता है, जैसे कि 'फौल-आउट' के रेडियोऐक्टिव उत्पाद—स्ट्रोशियम, सीजियम, बेरियम, आयोडीन—आदि स। इस प्रकार के विकिरण के कुप्रभाव आइसोटोप विशेष, विकिरण के प्रकार व परास, शरीर द्वारा ली गई मात्रा, रहने की अवधि, ग्राही अग आदि पर निभर करते हैं।

कुछ विकिरण, जस कि अल्फा कण जीवागो के लिए अधिक हानिकारक होते हैं। प्रभाव के हिसाब स पहले अल्फा कण, फिर न्यूट्रोन, बीटा-कण और सबसे बाद म एक्स रे का नम्बर आता है। इन कणा द्वारा अगो म 'आयन उत्पन्न और विपरीत होते हैं, जो कोशिका या शरीर की इकाई के प्रमुख अणुओ व सरचनाओ को विचलित कर हानि पहुचाते हैं।

विविध कोशिकाओं पर प्रभाव

यह विकिरण जीवो को मुख्य रूप से तीन प्रकार से हानि पहुचाता है—(1) *यह कोशिकाओ का यानी अतत जीवो का नाश करता है,* (2) *चयापचयी तत्र* मे परिवतन करता है, जिसमे सामान्यतया जीव को हानि पहुचती है, और (3) यह आनुवशिक पदाथ मे परिवतन करता है, जो प्राय बाद वाली पीढियो के लिए हानिप्रद होते हैं।

तेजी से विभाजन करने या विभाजित होने वाली कोशिकायें विकिरण के प्रति अधिक सवेदनशील होती हैं। इसका इतना प्रभाव होता है कि कोशिकाओ का विभाजन तक रुक जाता है। छोटे कीटो के इक्ले अडा पर भी प्रयोग किए गए, जहा यह सुभीता है कि इच्छानुसार कोशिकाद्रव्य (साइटोप्लाज्म) या क द्रक (न्यूक्लियस) को ही किरणियित किया जा सकता है। प्रयोगो के आधार पर पाया गया कि केन्द्रक, जिसमे कि गुण सूत्र व जीन अर्थात पैतृक गुणो वाली इकाइया से सम्बद्ध पदाथ होते हैं, सबसे अधिक सवेदनशील भाग होता है।

विकिरण से कसर, त्वचा कसर, सबसे पहले देखा गया। जमन खानो मे पिचब्लेंड अयस्क या रेडियम खोदने वालो मे आधो की मृत्यु फेफडो के कैंसर से हुई। इसी तरह रेडियम घडी के पेन्टर मे अस्थि ट्यूमर देखे गये। प्रयोगो द्वारा यह भी देखा गया है कि एक्स रे द्वारा या खिलाने या रेडियोऐक्टिव पदाथ के इजेक्शन से भी अस्थि कैंसर हो जाता है। मानव म सबसे अधिक सभावना ल्यूकेमिया या रक्त कैंसर की रही है। कुछ प्रभाव सुधारे भी जा सकते हैं और कुछ नही।

आधुनिक अनुसधान

विकिरण से चिकित्सा करने मे यह भी खतरा रहता है कि खराब कोशिकाओ के साथ अच्छी कोशिकायें भी प्रभावित हो जाती हैं। अत विवेक और सतुलन का भारी महत्त्व है। सोवियत वैज्ञानिको ने रेडियोऐक्टिव टॉक्सिन या विष खोजे हैं, जो प्राणियो मे कैंसर-कोशिकाओ पर आक्रमण करते हैं और स्वस्थ कोशिकाओ पर कोई छाप नही छोडते। प्रोफेसर ऐलेक्जेंडर कुजिन ने प्रयोगशाला मे सूरजमुखी आदि पौधो की पत्तियो पर रेडियोऐक्टिव टॉक्सिन उगाकर प्रयोग किये। उन्होने बताया कि चूहो पर ये टॉक्सिन सबसे पहले ग्रस्त कोशिकाओ पर प्रभाव डालते हैं। उन्होने यह चेतावनी भी दी है कि मानव मे कैंसर की चिकित्सा मे इनका प्रयोग करने से पहले जानवरो मे इन प्रयोगो की एक लम्बी श्रृखला पूरी करनी होगी। अमरीका मे ये प्रयोग नए नए आयामो से ताबडतोड चल रहे हैं और मानव के सन्दम मे विकिरण सबधी तस्वीर निश्चय ही और अधिक सुस्पष्ट होती जाएगी।

9

जीवाश्म भूगर्भ मे पुरातन जीवो के स्मृतिशेष

जीवाश्म (फॉसिल) शब्द दो छोटे शब्दो —जीव और अश्म—के मिलने से बना है, जिसका मतलब है पृथ्वी मे चट्टानो, प्रस्तरो आदि में प्रागैतिहासिक काल के जीवो के सुरक्षित अश या स्मृति चिह्न। अग्रेजी मे जीवाश्म का पर्याय है 'फॉसिल' और फॉसिल शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन के 'फोसेस' शब्द से हुई है, जिसका अथ है 'खोदा' अर्थात पथ्वी को खोदने पर प्राप्त होने वाला अश्मीभूत जीव पदार्थ। और वह विज्ञान जिसके द्वारा प्राचीन काल के इन जीवों—प्राणियो और पौधो—का निरूपण होता है फौस्सिलोलोजी, फोस्सिलौजी, पैले टोलोजी या जीवाश्मविज्ञान कहलाता है।

पादक जीवाश्म ग्लैगेमोप्टेरिस की कूटमध्य शिरा वाली पत्ती

जीवाश्मो का प्रारम्भिक अध्ययन

जीवो के साधारण अवशिष्टो के रूप मे जीवाश्मो की ओर जीनोफेनेस, स्टेनो तथा जगत्प्रसिद्ध मोनोलिसा के कुशल चित्रकार लियोनाद दा विशी की दृष्टि भी गई थी, किन्तु कुवियर ही वह पहला व्यक्ति था जिसने इस प्रकार के पदार्थों का ध्यान से निरीक्षण किया और जीवाश्मविज्ञान का श्रीगणेश किया। उसकी 'औस्सेमेन्स फौस्सिलेस' (1812 1813) चूनेदार चट्टानो के विभिन्न नमूनो पर आधारित थी। इही के आधार पर कुवियर ने अपना मत प्रकट किया कि हर सृष्टि के बाद प्रलय हुई है, जिसके परिणामस्वरूप उस समय के जीव नष्ट होते गये और सृष्टि में पुन नए जीव पदा होते गये। फलत पथ्वी के गभ मे मृतक जीव अपने स्मृतिचिह्न छोडते चले गये जो कि आज भी उस समय के जीव जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। जीवाश्मो के अध्ययन से

उनकी उपयोगिता का अतिम निणय स्कॉटलैण्ड के वैज्ञानिक चार्ल्स लायेल (1797-1875) और उसके अनुगामियो ने दिया। इसके पश्चात् कुवियर इधर कशेरुकियो (रीढ वाले प्राणियो) के जीवाश्मो के अध्ययन मे लग गया और फ्रासिसी वैज्ञानिक लैमार्क (1744-1829) उधर अकशेरुकिया अर्थात रीढहीन प्राणियो के अध्ययन मे।

जीवाश्मों की रचना

जीवो के खोल या कवच, हड्डिया व अन्य कडे भाग तलछट के जमने पर रेत, नदियो की तलहटी की मिट्टी, झीला की तहो तथा समुद्रतलो मे दबा दिये जाते हैं। पानी धीरे धीरे जीवो के मौलिक पदार्थों को गला देता है और कालान्तर मे अपने मे मिश्रित अन्य पदार्थों द्वारा उनका स्थान ले लेता है, जिससे कि वे पत्थर की तरह कडे बन जाते हैं। मुलायम और रीढहीन प्राणियो, जैसे घोघे आदि का कडा भाग चूकि खोल या कवच ही होता है इसलिए इन प्राणियो द्वारा अवशिष्ट रूप म केवल कवच ही छोडे जा सके हैं। इस तरह जीवाश्म रूप मे परिरक्षित हड्डीहीन प्राणियो मे प्रोटोजोआ (प्रथम प्राणी), सीलेंटरेटा, ब्रैकियोपोडा, मोलस्का, इकाइनोडर्मेटा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उधर कशेरुकी या रीढ वाले प्राणी साधारणतया हड्डिया और दात ही अवशेषो के रूप मे छोडते हैं और इनके अतगत विभिन्न मछलियो, मण्डूको, सरीसपो, पक्षिया तथा स्तनधारियो के जीवाश्म प्राप्त हुए हैं।

माना कि जन्तुओ तथा पौधो के मुलायम अगा का परिरक्षण होना बहुत असभव-सा लगता है, फिर भी उगलियो के निशाना की तरह वे अपने निशान या चिह्न तो छोड ही सकते हैं। और इस प्रकार मुलायम अगो के चिह्न वास्तव में प्राप्त भी हुए हैं, जैसे पादप जीवाश्म—गगेमोप्टेरिस, ग्लोसोप्टेरिस की पत्तिया तथा प्राणी जीवाश्म काइरोथीरियम के हाथ के चिह्न। इतना ही नही आर्थ्रोपोडा अर्थात मक्खी सघ के मुलायम ट्राइलोबाइट नामक प्राणी तो केवल अपने तनिक कडे काइटिन के आवरण के कारण ही परिरक्षित हो गये, जिनका जीवाश्म विज्ञान मे विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है।

अश्मीभवन (पत्थरीकरण) की रीतियां

जीवाश्म बनने तथा परिरक्षण के लिए स्थान या विशेष वातावरण के अतिरिक्त वहा पर ऐसी परिस्थितियो का होना भी बहुत जरूरी है जहा पर उनकी कोशिकाओ का विघटन न हो। इस तरह जीवाश्म बनने की कई रीतिया हैं। कभी-कभी तो जीवो का बिल्कुल समूचे रूप मे ही परिरक्षण हो जाता है। हिमकाल मे जीवो के समूचे शरीर बर्फ मे जमकर परिरक्षित हो गये, जैसे साइबेरिया के प्रसिद्ध हिमगज या विशालकाय हाथी और बाल्टिक प्रदेशा मे वृक्षो के राल मे पाये गये कुछ परिरक्षित कीडे।

जैव ऊतको के प्रतिस्थापन यानी स्थान लेने वाली रीति जीवाश्म निर्माण की विलक्षण रीति है। इसमे जैव ऊतको मे प्रविष्ट होने वाले कुछ खनिज पदार्थों के कारण मौलिक कोशिका-सरचना बिल्कुल ज्यो की त्यो बनी रहती है। जैव पदार्थों का प्रतिस्था-

पन करने वाले इन खनिज पदार्थों मे मुख्य हैं—सिलिकन डाइऑक्साइड (रेत) कैल्शियम या मैग्नीशियम कार्बोनेट, आइरन सल्फाइड आदि। कुछ जीवो अथवा जीवाग का साचे के रूप मे भी अश्मीभवन या पत्थरीभवन हो जाता है। साधारणतया क्य होता है कि जन्तुओ के कवच भूमि मे धसने पर मिटटी से भर जाते हैं और कवच तो बाद मे भूमिजल द्वारा गला दिये जाते हैं लेकिन उनसे सबद्ध मिट्टी कालान्तर मे विशेष वातावरण के उत्प्रेरण से जैव पदार्थों का प्रतिस्थापन कर तथा कडी बनकर पत्थर या चट्टान मे बदल जाती है। तब कवच के स्थान पर पत्थर-सी कडी आकृति साचे के रूप मे ज्यो की त्यो परिरक्षित हो जाती है। और यही नहीं, जीवो की हल्की छापो तथा निशानो के रूप मे भी विविध प्रकार के जीवाश्म पाये गये हैं। भूमि पर जानवरो के पावो के निशानो के ऊपर तलछट के जमा होते जाने और कडा बनते जाने से उस अग की छाप युग युगो तक जीवाश्म रूप मे सुरक्षित रह जाती है। या जब कोई चीज नीचे भूमि पर गिरकर सूखती गलती है तो उस स्थान पर उसका निशान पड जाता है और अन्त मे पत्थर बन जाने पर जीवाश्म बन जाता है। इस बात की पुष्टि करने के लिए कोमल पत्तिया के शिराविन्यास के निशान मौजूद हैं जो जीवाश्म रूप में पाये गये हैं। इसी तरह प्राणिया की केंचुलिया तथा उनके रेंगने घिसटने से बनी लीकें बग रह उनकी याद दिलाने के लिए भूगर्भ मे सुरक्षित रह गईं।

कार्बनीकरण की रीति से भी जैव पदार्थों का अश्मीभवन हो जाता है। नदियो द्वारा वर्षों पहले बहाई गई लकडियो मे से कुछ नदी की तलहटी मे बैठती गईं और फिर सडने गलने के लिए उचित ऑक्सीजन के अभाव मे तथा चारो ओर से जमने वाली मिट्टी के प्रभाव से उनका सेल्यूलोस काले कार्बन मे बदल गया। इस प्रसग मे हमारे सामने पत्थर का कोयला एक ज्वलन्त उदाहरण है। और यही नही, विशेष तापमान और दबाव पर पृथ्वी की प्राकृतिक भूमिगत प्रयोगशाला मे होने वाले कुछ विशिष्ट रासायनिक परिवर्तनो के कारण जब कोयले म अधिक कठोरता और साथ ही साथ अनुपम द्युति या चमक आ जाती है तो वह काला कलूटा कोयला चकाचौंध करने वाली अमूल्य द्युतिमान धातु मे परिवर्तित हो जाता है जो कि वास्तव मे यदि सोचा जाय तो प्रकृति का एक अद्भुत करिश्मा है।

जीवाश्मो की उपयोगिता

जीवाश्मो का असली महत्त्व तो इस बात मे है कि इनसे हमे पृथ्वी की आयु तथा प्राचीन युगो के जीवो के बारे मे पता चलता है। जीवाश्मो का अध्ययन करके और फिर आधुनिक युग के जीवो से उनकी तुलना करके हमें जीवो के उदभव व जाति विकास का ज्ञान होता है जिससे जैव विकास का प्रतिपादन तो होता ही है लेकिन साथ ही साथ उसका सत्यापन भी हो जाता है। भिन्न भिन्न कल्पो या युगो की चटटानो मे विविध रूपा मे एक ही प्रकार के जीवाश्म यह दिखलाते हैं कि उन जीवों मे परिवर्तन हुआ है और जब परिवर्तन हुआ है तो इसका मतलब यह है कि उनमे विकास हुआ है।

इस प्रसग मे घोड़े तथा हाथी के दो सुप्रसिद्ध उदाहरण हमारे सामने आते हैं, जो इस विषय पर काफी अधिक प्रकाश डालते हैं।

जीवाश्मो के द्वारा पृथ्वी के गर्भ मे छिपे हुए पदार्थों का भेद खुलता है, जैसे पेट्रोलियम, कोयला, हीरा आदि का। इन पदार्थों से सभी अच्छी तरह परिचित हैं लेकिन पेट्रोलियम पर तो हमारी आज की सारी औद्योगिक प्रगति निर्भर करती है। इसी से आधुनिक नये नये 'सिंथेटिक फाइबर' प्राप्त हो रहे हैं। किन्तु पृथ्वी के भीतर इसके निर्माण और सचय की कहानी भी कम विचित्र नही है। प्रागैतिहासिक काल मे प्राणियो व पेड पौधो के पृथ्वी के गर्भ मे दबने व सडने गलने मे तथा रासायनिक प्रक्रियाओ की क्रियाशीलता के कारण ही भूमिगत भण्डार मे चूर्ण प्रस्तर, पेट्रोलियम द्रव तथा ज्वलनशील गैसें अस्तित्व मे आईं। प्राणियो तथा पौधो के ठोस पदार्थ तो चूर्ण प्रस्तरो मे बदल गये लेकिन तरल पदार्थ रिस रिसकर अधोभूमिक द्रव के रूप मे बहकर कडी चट्टानो के गहरे अवकाशो मे जमा होते चले गये और तरल पदार्थ के ये सचित व सुरक्षित भण्डार ही बाद मे तेल-कूप बन गये। इसीलिए पेट्रोलियम को 'रॉक ऑयल' या 'शैल-तेल' भी कहते हैं क्योकि पेट्रोलियम शब्द लैटिन व ग्रीक के 'पेट्रोस' तथा लैटिन के 'ओलियम' शब्दो से मिलकर बना है, क्रमानुसार जिनका अर्थ है चट्टान और तेल। और अत मे विविध रासायनिक परिवर्तनो के फलस्वरूप बनने वाले जो गैस पदार्थ थे वो ज्वलनशील गैसो के रूप मे पृथ्वी के अन्दर चारो ओर व्याप्त गये।

जीवाश्मो की सहायता से सृष्टि के विभिन्न जीवो मे आपसी सबध स्थापित होता है और विभिन्न चट्टानो की आयु का पता लगता है कि अलग-अलग स्थानो की चट्टानें एक ही समय की हैं या अलग-अलग समय की। एक ही जीवाश्म यदि दूसरे स्थान पर भी पाया जाय तो यह जान लिया जाता है कि दोनो जीवाश्मो वाली चट्टानें समकालीन हैं। इसी तरह प्राचीन काल मे इस पृथ्वी पर भूमि और सागर के विन्यास व उस समय की जलवायु का ज्ञान भी इनकी सहायता से हो जाता है। समुद्री जीवाश्मो के आधार पर हम कह सकते हैं कि अमुक जगह पर पहले अवश्य समुद्र रहा होगा या वहा तक उसका पानी चला आया होगा, और इसी तरह स्थलीय जीवाश्मो के आधार पर हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि अमुक स्थान तक भूमि का प्रसार रहा होगा आदि-आदि।

10

जीवो की जातिया मौत के कगार पर

जीव उन्हें ही कहते हैं जिनमे जीवन होता है, जान होती है। इनमे भी दो समूह हैं—एक समूह है जानवरो या प्राणियो का और दूसरा है वनस्पतियो या पेड़-पौधो का। सृष्टि के आरभ में केवल सेवार या काई सरीखी वनस्पतिया ही थी और धीरे धीरे बनते बदलते

विलुप्त होते जीव

विकास होता गया और अनगिनत किस्म के पेड़-पौधे और प्राणी पनपते गए।

अभी तक सबसे श्रेष्ठ और महान् प्राणी मानव ही है, जो अपनी बुद्धि के बल पर

बोल सकता है, लिख पढ सकता है, सोच विचार सकता है, अपना भला-बुरा देख सकता है और अपने दिल दिमाग से कुछ भी कर सकता है। उसके करिश्मे इतने चौंकाने वाले हैं कि चाद पर भी उसके पैर पड चुके हैं और अन्य ग्रहो पर भी उसकी आकाश गाडिया जा रही हैं। अपनी रौ मे, अपनी उन्नति के चक्कर मे और अपने गरूर मे कभी कभी वह बहुत आगे बढ जाता है और बाद मे पता लगता है कि कहीं उसने गलती कर दी है।

पैदा होने से लेकर मरते दम तक हम प्रकृति की गोद म पलते व खेलते हैं। इस प्रकृति पर दूसरे प्राणियो और पेड पौधो का भी अधिकार है। हम यह भूल जाते हैं कि अन्य प्राणियो व पेड पौधो को नुकसान पहुचेगा तो वह हमारा ही नुकसान तो होगा।

इस पृथ्वी पर जीव जातियो के रहने से हमारा ही फायदा है। बिना इनके तो हमारा काम जरा भी नहीं चलने का। हमारा जीवन और हमारे रोजमर्रा के सारे काम इन प्राणियो और पेड-पौधो की बदौलत ही चलते हैं। ये न हो तो हम भूखो मर जाए, हमे कुछ भी नसीब न हो और हम तरस तरसकर रह जाए। हमारी जिन्दगी की गाडी इन्ही से चलती है।

इधर हम हैं कि इन जीवो व प्रकृति पर इतनी मनमानी और ज्यादतिया करने लगे हैं कि इन बेचारे जीवो की जातिया नष्ट होने लगी हैं और कई तो रो धोकर खतम भी हो गई हैं। यह इसीलिए कि इनकी बागडोर और कुछ हद तक प्रकृति की बागडोर मानव के हाथ मे है।

पर्यावरण मे हमारी दखलदाजी

जहां हम रहते हैं वहा हमारे चारो ओर की जमीन, हवा और पानी ही हमारा 'पर्यावरण' कहलाता है। यह प्राकृतिक पर्यावरण हमे प्रकृति से विरासत मे मिला है पर हम इसे नकली व जहरीला बनाते जा रहे हैं जिसमे हमारे आज के विज्ञान, सुख सुविधाओ, ऐशोआराम वगैरह का हाथ है।

हमारा और पर्यावरण का बहुत पुराना व गहरा रिश्ता है। लेकिन पौधो व अन्य प्राणियो का तो हमसे भी पुराना रिश्ता है। पर्यावरण या प्रकृति का यह सारा कारोबार एक बडी मशीन की तरह है जिसमे हरएक जीव प्राकृतिक क्रिया के लिए बहुत जरूरी और काम का कल पुर्जा है। किसी मे भी जरा सी खोट खराबी से सारी बात गडबडा सकती है। प्रकृति का हर कण, बूद, प्राणी और पौधा एक महत्त्वपूर्ण अग और पुर्जा है।

प्रकृति मे सभी जीव-जातियो का तालमेल जरूरी है। प्रकृति मे जीव जातिया का औसत और हिसाब किताब ठीक ठाक रहना चाहिए, नहीं तो प्रकृति का सारा मामला डगमगाने लगता है, तेवर तिरछे हो जाते हैं क्योंकि प्रकृति का मिजाज नाजुक जो है। जीवो के हिसाब से प्रकृति के पलडे बराबर रहने चाहिए।

10

जीवो की जातिया मौत के कगार पर

जीव उन्हें ही कहते हैं जिनमे जीवन होता है, जान होती है। इनमे भी दो समूह हैं—एक समूह है जानवरो या प्राणियो का और दूसरा है वनस्पतियो या पेड-पौधो का। सृष्टि के आरभ में केवल सेवार या काही सरीखी वनस्पतिया ही थी और धीरे धीरे बनते बदलते

विलुप्त होते जीव

विकास होता गया और अनगिनत किस्म के पेड-पौधे और प्राणी पनपते गए।

अभी तक सबसे श्रेष्ठ और महान् प्राणी मानव ही है, जो अपनी बुद्धि के बल पर

बोल सकता है, लिख-पढ सकता है, सोच विचार सकता है, अपना भला-बुरा देख सकता है और अपने दिल दिमाग से कुछ भी कर सकता है। उसके करिश्मे इतने चौंकाने वाले हैं कि चाद पर भी उसके पैर पड चुके हैं और अन्य ग्रहो पर भी उसकी आकाश गाडिया जा रही हैं। अपनी रौ मे, अपनी उन्नति के चक्कर मे और अपने गरूर मे कभी कभी वह बहुत आगे बढ जाता है और बाद मे पता लगता है कि कहीं उसने गलती कर दी है।

पैदा होने से लेकर मरते दम तक हम प्रकृति की गोद म पलते व खेलते हैं। इस प्रकृति पर दूसरे प्राणिया और पेड पौधो का भी अधिकार है। हम यह भूल जाते हैं कि अन्य प्राणियो व पेड पौधो को नुकसान पहुचेगा तो वह हमारा ही नुकसान तो होगा।

इस पथ्वी पर जीव जातियो के रहने से हमारा ही फायदा है। बिना इनके तो हमारा काम जरा भी नहीं चलने का। हमारा जीवन और हमारे रोजमर्रा के सारे काम इन प्राणियो और पेड पौधो की बदौलत ही चलते हैं। ये न हो तो हम भूखो मर जाए, हमे कुछ भी नसीब न हो और हम तरस-तरसकर रह जाए। हमारी जिन्दगी की गाडी इन्ही से चलती है।

इधर हम हैं कि इन जीवो व प्रकृति पर इतनी मनमानी और ज्यादतिया करने लगे हैं कि इन बेचारे जीवो की जातिया नष्ट होने लगी है और कई तो रो धोकर खतम भी हो गई हैं। यह इसीलिए कि इनकी बागडोर और कुछ हद तक प्रकृति की बागडोर मानव के हाथ मे है।

पर्यावरण मे हमारी दखलदाजी

जहा हम रहते हैं वहा हमारे चारा ओर की जमीन, हवा और पानी ही हमारा 'पर्यावरण' कहलाता है। यह प्राकृतिक पर्यावरण हमे प्रकृति से विरासत मे मिला है पर हम इसे नकली व जहरीला बनाते जा रहे हैं जिसमे हमारे आज के विज्ञान, सुख सुविधाओ, ऐशोआराम वगैरह का हाथ है।

हमारा और पर्यावरण का बहुत पुराना व गहरा रिश्ता है। लेकिन पौधो व अन्य प्राणियों का तो हमसे भी पुराना रिश्ता है। पर्यावरण या प्रकृति का यह सारा कारोबार एक बडी मशीन की तरह है जिसमे हरएक जीव प्राकृतिक क्रिया के लिए बहुत जरूरी और काम का कल पुर्जा है। किसी मे भी जरा सी खोट खराबी से सारी बात गडबडा सकती है। प्रकृति का हर कण, बूद, प्राणी और पौधा एक महत्त्वपूण अग और पुर्जा है।

प्रकृति मे सभी जीव जातियो का तालमेल जरूरी है। प्रकृति मे जीव-जातियो का औसत और हिसाब किताब ठीक-ठाक रहना चाहिए, नहीं तो प्रकृति का सारा मामला डगमगाने लगता है, तेवर तिरछे हो जाते हैं क्योकि प्रकृति का मिजाज नाजुक जो है। जीवो के हिसाब से प्रकृति के पलडे बराबर रहने चाहिए।

शिकार होता है और इनसे प्राप्त चीजो को खूब बेचा

स्म की अनोखी जीव-जातियो के लिहाज से बहुत धनी देश
पाए जाते हैं उतने अन्य किसी भी देश म नहीं पाए जाते।
हमारी प्राकृतिक सपत्ति है, इसलिए इन्हे बचाए रखना
धम है।

र खतरे की दशा म जानवरा की करीब एक हजार
रूप से मौत क कगार पर डेढ सौ से भी अधिक मुख्य जान-
रा की, छिपकली साप वाले समूह की, पक्षियो की, कीडा की
विभिन्न जातिया शामिल है। इन सबम प्रमुख है जगल
णियो क नाम है—बाघ, बर्फीला चीता, चिकारा, कस्तूरी
कछुए, छिपकलिया, हागुल या कश्मीरी बारहसिगा, चार
न, कुरग, कृष्णसार, चकार, भराल, गीदड़, लोमड़ी, जगली
, पहाडी भेड-बकरिया, काली गरदन वाला सारस, बाज,
डक), महान् भारतीय सारग या हुकना, तोत आदि कई
जैसी पूछ वाला वानर, हूकू (हुलुक बदर), समुद्र म पाया
आदि। यह भी बतला दें कि ह्वेल दुनिया का सबसे बडा
है कि इसका भी जीवन खतरे म है। इसस चर्बी, तेल आदि
।

हालत भारत मे ही है, दुनिया क सभी देशा म जीवा की
लिए, अमरीका क दो एक जानवरा क नाम गिनान स बात
म 'पसेंजर' नाम की एक कबूतर जैसी चिडिया हुआ करती
ाले झुडा म उडा करती थी। इसका इतना अधिक शिकार
हो गई। इसी तरह वहा 'बाइसन' नाम क प्राणी को अधा-
बस कुछ दजना की ही सख्या म बचे है।

र ही नहीं पडी बल्कि पौधा पर भी पडी है और ऐस पौधे
मे हैं। किस किसक नाम गिनाए जाए। पर इनम नमूने क
देना जरूरी होगा। इनम कुछ हैं—चदन, आर्किड, बुरास,
लोनिया वश क पेड, कुछ कैक्टस, दवाओ व अन्य उपयोगी
धे, बोर तथा घास की अनक जातिया वगरह-वगरह।

हिसाब कटाई करने से जगलो का नाश करते हैं तो दूसरी
रकर पौधे वाले इलाका को सफाचट कर डालती हैं और

प्रकृति से छेड़छाड़

मानव ने अपनी सभ्यता व उन्नति के चक्कर म प्रकृति से अधिक छेडछाड की है। बुलडोजरो व अन्य मशीनो के इस्तेमाल से कई जीव जातियो का नाश हुआ है। इससे जगलो, घास के मैदानो तथा रेगिस्तानो वाली जमीन की ऊपरी परत म ही बदलाव नही होता बल्कि आसपास के इलाको का वातावरण भी बदल जाता है। आबादी की बेहद बढोतरी के कारण मकान बनाने, खेती बाडी, लकडी, कोयले आदि की जरूरतो के लिए जगलो को सफाचट किया जा रहा है। रोज ही नई सडकें बनती जाती हैं तथा नए कल कारखाने, फैक्टरिया, मिलें आदि खुलती हैं। डी० डी० टी० सरीखे नुकसानदेह जहरीले रसायन या दवाए व गैसें अधाधुध तरीके से छिडकी जाती हैं। इन बातो स गावो, नगरो और महानगरो का पर्यावरण अपनी असलियत खोता जा रहा है। मोटर गाडियो आदि से सडक के किनारे के पौधे व पत्तिया धूल से बुरी तरह सन जाती हैं। कई पेड-पौधे नष्ट हो जाते हैं। सारा गदा मल पदार्थ और मलबा नदियो आदि मे छोड दिया जाता है। गदे पानी से और छिडकी जाने वाली दवाओ क असर से पानी के प्राणी मर जाते हैं क्योकि पानी की सेवार जो मर जाती है, जिसे कि पानी के जानवर खाते हैं। जमीन पर जहरीली दवाओ के छिडकने से कीडे मर जाते हैं।

भलाई करने वाले पेड-पौधे

यह पहले ही बता चुके हैं कि पेड पौधो स ही हमे भोजन और उपयोग की ढेर सारी चीजें मिलती हैं। बेकार कही जाने वाली नन्ही काही, सेवार व घास से लेकर चीड, आम, पीपल, बरगद तक बडे पेड हमारी भलाई करते रहते हैं। ये पौधे वातावरण की गदी हवा को छानकर और जहर का घूट पीकर हम साफ हवा या प्राणवायु देते हैं। हमारे पशु इन्ही पौधो की पत्तिया खाकर हमे क्या कुछ नही देते। दुनिया के सारे प्राणी इन पौधो की बदौलत पलते व पनपते हैं।

वैज्ञानिको द्वारा प्रयोग करके देखा गया है कि आम, सूरजमुखी, पथ, चौलाई, कनकउवा, गौर, सनई तथा चारो ओर वाली खर पतवार व अन्य पेड पौधे वातावरण मे फली धूल, गदी हवा व गदी गैसो को साफ करके हमारी सेवा करते रहते हैं। इस लिए इनका पर्यावरण म ज्यादा से ज्यादा तादाद मे रहना बहुत जरूरी है।

आदमी का दिल बहलता है, जीवो की जान जाती है

इस तरह कुछ तो पर्यावरण की गडबडी से, पनबिजली योजनाओ से और कुछ उद्योगो के कारण और इन सबके ऊपर आदमी की खुदगर्जी और मनमानी से वातावरण की गडबडी से जीवो की जातियो मे कमी हुई है, और कमी ही नही बल्कि कुछ का तो लोप ही हो गया है। आदमी अपनी मौज मस्ती और खेल म जानवरो का अधाधुध शिकार कर अपनी बहादुरी दिखलाता रहा है। कई जानवर गोश्त, खाल, चमड़े, ऊन, फर, सीग, जूते, हड्डियो, हाथीदात, कपडे, पख, पस, तेल, चर्बी, सजावटी चीजें वगरह

ड़ों की घाटियों को रौंद डालती हैं। 'जुनिपर' नाम के पेड़ को जलाकर खाद बनाई
ती है। जुनिपर के नाश से बर्फ और भूमि की टूट फूट होती है जिससे धीरे धीरे
ाड़ के पहाड़ दरकने चटकने लगते हैं। इसका नतीजा आप समझ ही सकते हैं। जंगल
र होने से जीव-जातियां तो कम होती ही हैं, पर गर्मी बढ़ जाती है, वर्षा कम होती है
र सारी आबहवा ही बदल जाती है। और ये सारी परेशानियां आदमी को ही तो
झनी पड़ती हैं।

पौधे

11

हरा पौधा, सूर्य और हमारा भोजन

हरा रग आशा और विश्वास का प्रतीक है और यह इसीलिए कि हरियाली ही जीवन का चिह्न है। हरियाली की एक इकाई या हरा पौधा विश्व की आस है और इसमे लेशमात्र भी अतिशयोक्ति नही कि यदि हरा पौधा न हो तो पृथ्वी पर जीवन बिल्कुल असम्भव हो जाए। विकास का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि जीवन का आरम्भ हरे पौधे से ही हुआ और यह पौधा था हरी काई या शैवाल वग का सूक्ष्म व एककोशीय

हरे पौदे, सूर्य और भोजन का त्रिकोण
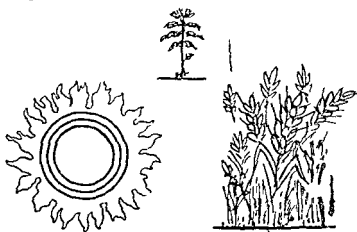
'क्लैमाइडोमोनास'। हरा पौधा ही जीवन की इकाई है और शनै शन कालान्तर में अन्य जीवो का विकास हुआ।

यसे तो नित्य प्रति काम मे आनेवाली बातो से ही हम इसकी उपयोगिता का अनुमान लगा सकते हैं परन्तु फिर भी उदाहरण के तौर पर मुख्य-मुख्य उपयोगिताओं को दोहराना युक्तिसगत होगा। गेहू, जौ, ज्वार, बाजरा, चावल आदि अनाज, किस्म किस्म की दालें, मसाले, सब्जिया तथा फल आदि सब हरे पौधे से प्राप्त होते हैं। मकान, घहतीर, कडियो, तख्ता, फर्नीचर, रेल, मोटर, बन्दूक, माचिस की तीलिया आदि

असंख्य वस्तुओं के निर्माण मे हरे पौधे की सूखी लकडी की ही आवश्यकता होती है। ओढने, बिछाने व पहनने के लिए रुई, कपास, जूट आदि के रेशे व रेशम आदि भी इसी के वरदान हैं। जलाने के लिए ईंधन अर्थात लकडी व कोयला भी इसी की देन हैं। करोडो वर्ष पहले भूमि के अन्दर दबे जगलो की लकडी से ही कालान्तर मे कडा पत्थर का कोयला बना। इसी तरह सड गलकर व रिस रिसकर जमा होता गया पौधा का रस कालान्तर मे चट्टानो मे सुरक्षित मिट्टी का तेल व पेट्रोल बन गया। लिखने पढने के लिए पुराने जमाने से लेकर आज तक भोजपत्र से कागज तक इसी का ही उपयोग होता रहा है। विभिन्न प्रकार के रग, सजास, गोद, रबर, चाय, कॉफी, वार्निश, तेल, शक्कर, गुड, चीनी, औषधिया, तम्बाकू आदि अनेक आवश्यक पदार्थ सब इसी की कृपा के फल हैं। इसके अतिरिक्त पूजा, शृगार व साज सज्जा आदि मे हमारी धार्मिक व सौन्दर्य-भावना की तुष्टि के लिए भी यह अपने कमनीय कलेवर मे मुस्काता रहता है। कहने का मतलब यह है कि पैदा होने से लेकर श्मशान तक यह सदैव हमारी सेवा मे तत्पर हाथ बाधे खडा रहता है।

धूप की गर्मी और हरे पदार्थ की करामात

पृथ्वी की कहानी की ही तरह जीवो की कहानी भी सूर्य से ही प्रारम्भ होती है। मनुष्य द्वारा उपयोग मे लाई जानेवाली आधुनिक परमाणु शक्ति को छोडकर लगभग सभी प्रकार के सजीव पदार्थों के लिए ऊर्जा का एकमात्र स्रोत सूर्य ही है। निर्जीव मशीनो को चलाने के लिए भी किसी न किसी प्रकार के ऊर्जा स्रोत की आवश्यकता होती है, जैसे घडी कुडलित कमानी से उत्पन्न ऊर्जा का उपयोग करती है, जलविद्युत सयत्र गिरते हुए पानी की ऊर्जा मे चलता है और पेट्रोल की रासायनिक ऊर्जा के बल-पर ही हवाई जहाज आसमान मे तीर की तरह सर्राता हुआ निकल जाता है। इसी तरह सभी जीव भोजन से ही अपनी ऊर्जा प्राप्त करते हैं। रासायनिक दृष्टि से भोजन के अणुओ मे बडी विविधता है परन्तु इसके स्वभाव का अदाजा हम ग्लूकोस नाम की साधारण शकरा के अध्ययन से लगा सकते हैं, जो कि सबमे अधिक महत्त्वपूर्ण है। भोजन का यह आधार-भूत पदार्थ लगभग प्रत्येक सजीव कोशिका मे पाया जाता है और हरी कोशिकाओ की 'प्रकाश सश्लेषण' अथवा सूर्य के प्रकाश मे भोजन निर्माण की क्रिया द्वारा सीधे सूर्य से प्राप्त किया जाता है।

सांस ले-देकर अर्थात ऑक्सीजन लेकर हम जो वातावरण को दूषित वायु या कार्बन-डाइ-ऑक्साइड से भरते रहते हैं, उसे यदि साथ-साथ स्वच्छ न किया जाए तो हमारा जिंदा रहना मुहाल हो जाए। और वातावरण मे ऑक्सीजन और कार्बन-डाइ-ऑक्साइड के सन्तुलन को बनाए रखने का काम करता है हमारा यही हरा पौधा। दिन में धूप के प्रकाश मे पौधा वातावरण की सारी दूषित कार्बन-डाइ-ऑक्साइड को बारीक छिद्रो द्वारा ग्रहण करता है और हमारे श्वसन के लिए ऑक्सीजन बाहर छोड देता है। पत्तियो व तने के हरे रगद्रव्य पर्णहरित (क्लोरोफिल) के कारण ही पौधो में

भोजन बनता है और सम्पूर्ण जीवन लीला चलती है। बस इसी कारण हम जीते हैं क्योंकि इसी हरे रंग की ही बिसात है कि वह सूर्य की विकीर्ण ऊर्जा को अपनी अद्भुत क्षमता से खाद्य वस्तु में परिवर्तित कर देता है। यह हरा रंगद्रव्य धूप की उपस्थिति में पानी और कार्बन-डाइ ऑक्साइड द्वारा भोजन या कार्बोहाइड्रेट अर्थात् मण्ड और शर्करा का संश्लेषण करता है।

जब एक हरा पौधा वृद्धि करता है तो वह वास्तव में सूर्य की ऊर्जा का उपयोग कर रहा होता है। मनुष्य या तो हरे पौधों को खाता है या हरे पौधे खानेवाले जानवरों को, इसलिए वह भी परोक्ष रूप में सौर ऊर्जा का ही उपभोग करता है। यहां तक कि पेट्रोल से चलने वाली मोटरगाड़ी भी 'जीवाश्मीभूत' अर्थात् पथराई हुई सूर्य-ऊर्जा का उपयोग करती है, जो कि 'प्रकाश संश्लेषण' (फोटो सिंथेसिस) में लाखों वर्ष पहले के मरे हुए जीवों द्वारा प्राप्त की गई थी। सचमुच अगर सूर्य ऊर्जा के संपरिवर्तक के रूप में कार्य करने के लिए हरा पौधा नहीं होता तो निश्चय ही पृथ्वी पर सारा जीवन समाप्त हो गया होता। सूर्य की इस भीषण गर्मी का सहन, वहन और उपयोग सचमुच कैसे हो पाते यदि हरा पौधा नहीं होता। सूर्य की इस सारी ऊष्मा में से एक तिहाई भाग करीब पानी की भाप बनाने में और शेष प्रकाश संश्लेषण और अन्य क्रियाओं में पौधे द्वारा खर्च कर दिया जाता है। पौधा वायुमंडल की कार्बन डाइ-ऑक्साइड में से करीब दो हजार खरब टन कार्बन को शर्करा में बदल देता है। इस तरह गणना करने पर ज्ञात होता है कि प्रकाश संश्लेषण की क्रिया प्राप्त होनेवाली ऊर्जा के दो हजारवें भाग का परिवर्तन कर देती है।

वातावरण में व्याप्त सूर्य का तीव्र विकिरण जीवों के लिए खतरनाक होता है जो वायुमंडलीय ओजोन गैस, पानी की भाप, कार्बन डाइ ऑक्साइड द्वारा कुछ सीमा तक सोख लिया जाता है। शेष विकिरण को सोखने की सामर्थ्य केवल हरे पौधे में ही है कि वह प्रकाश संश्लेषण की क्रिया से इस विकीर्ण ऊर्जा का कुछ अंश अपने में जमा कर लेता है और फिर भोजन बनाकर प्राणियों के कल्याण के लिए दान कर देता है।

हमारी सीमाएं और आबादी का गुब्बारा

हम लोग सचमुच बड़े असाधारण समय में रह रहे हैं, बगैर सोचे-समझे जिए जा रहे हैं और बढ़ते जा रहे हैं। दुनिया की आबादी तेज रफ्तार से बढ़ती ही चली जा रही है। इस हिसाब से पृथ्वी पर प्रतिवर्ष भोजन करने के लिए चार सौ सत्तर लाख अतिरिक्त उपभोक्ता बढ़ते जाते हैं। यह दैनिक वृद्धि एक लाख लोगों की लगभग होती है जिसका मतलब हुआ हर सेकेंड में खाना खानेवाला एक से भी अधिक मुंह। इस तरह पृथ्वी पर जैसे जैसे मनुष्यों की संख्या बढ़ती जाएगी वस वैसे जनसंख्या की सालाना बढ़ोतरी होना भी स्वाभाविक है। इसके अलावा आए दिन चूंकि जनसाधारण के स्वास्थ्य संबंधी उपायों में भी प्रसार तथा सुधार हो रहे हैं इसलिए मृत्यु दर भी कम होती जा रही है। अंततः इसका परिणाम यही होगा कि जनसंख्या की वृद्धि-दर अपने

आप ऊपर चढेगी और अगर अगली सहस्राब्दि तक ऐसे ही चलता रहा तो पृथ्वी पर के लोगो का भार करीब करीब पृथ्वी के अपने ही भार के बराबर हो जाएगा। इसलिए कुछ न कुछ अवश्य ही होना चाहिए, इससे पहले कि यह आबादी का विस्फोट हम सबको स्वाहा कर डाले। और इस बढती आबादी को रोकने के केवल दो ही उपाय हैं—या तो स्वय अपनी इच्छा से, सुनियोजित और शातिपूर्ण तरीके से आबादी कम रखी जाए और नही तो भुखमरी, बीमारियो और लडाइयो के कारण फैलनेवाली हिंसात्मकता व अन्य गडबडिया से माल्थस नियम के अनुसार यह आप ही कम हो जाएगी, जिसको कि कोई भी नही रोक सकता।

पानी पर खेती हल-ट्रैक्टर की जरूरत नहीं

मनुष्य से लेकर सभी जानवर अपने भोजन के लिए पौधो द्वारा सोखी गई सूर्य ऊर्जा और फिर उससे बने भोजन पर ही आश्रित रहते हैं। इसलिए इस बात की गणना करना कि हम पृथ्वी पर कितने लोगा को पाल सकते है, अततोगत्वा हरे पौधे द्वारा प्रकाश सश्लेषण से प्राप्त की जा सकनेवाली ऊर्जा राशि पर ही निर्भर करता है। परन्तु प्रकाश सश्लेषण की क्रिया द्वारा प्रतिवर्ष जमा होनेवाले दो हजार खरब टन कार्बन मे आखिर कितनी वृद्धि की जा सकती है? यहा तक कि वर्तमान समय की उपजाऊ भूमि का क्षेत्रफल बढाने के लिए अनेक भगीरथ प्रयत्नो के बावजूद भी उसे अधिक से अधिक उसके दुगुने तक ही बढाया जा सकता है। और तब भी हमारे ये अतिरिक्त प्रयत्न उत्पादिता को कभी भी दुगुना नही कर पाएगे क्योकि इस समय हमारे पास हर प्रकार से अच्छी भूमि है और बढाई जानेवाली भूमि इससे अधिक अच्छी नही होगी। अत निकट भविष्य मे भोजन प्राप्त करन के लिए हमे समुद्रो मे खेती करना बहुत जरूरी हो जाएगा अर्थात विशेष रूप से उवर जलीय माध्यमो के हौजो म विभिन्न प्रकार क छोटे पौधे उगाने होगे। पानी मे सिंघाडे आदि तो उगते ही है पर इसके अतिरिक्त इसमे हरी काई या शैवाल भी उगाये जा सकते है कि उनसे भोजन प्राप्त किया जा सके। विज्ञान की इस विशेष शाखा को, जिसमे पानी जैसे द्रव माध्यमो मे काक आदि छोटे पौधो को उगाकर खेती की जाती है, जल कृषि या जल सवधन (हाइड्रोपोनिक्स) कहते हैं। बढती हुई आबादी के लिए भोजन प्राप्त करने के लिए इसी विधि के सुधार होने पर भी भोजन प्राप्ति की आशा है। यद्यपि यह बात इस समय अटपटी सी जान पडती है तो भी एक दिन जबकि दुनिया मे भूखे आदमियो की भरमार मच जाएगी, कुछ इसी प्रकार की जुगत सोचनी पडेगी।

इसके अतिरिक्त खाद्य उत्पादन बढाने का दूसरा तरीका यह है कि पौधे मे ही कुछ सुधार किए जाए। इस क्षेत्र मे वैज्ञानिक कृषि द्वारा सुधार करने स काफी कुछ सफलता भी मिली है और इसम वनस्पति वैज्ञानिको का योगदान सबसे अधिक है, जिन्होने खेती के लिए अच्छे से अच्छे पौधे दिए पौधे की पोषण सबधी आवश्यकताओ की ओर ध्यान दिलाया, विशिष्ट रासायनिक उपायो द्वारा उसके वृद्धि स्वभाव मे

परिवतन करना सिखाया, हानिकारक कीडो व फफूदियो को मारने की तरकीब सुझाई और भुरभुरी चट्टानो व जटिल भूमि वाले स्थानो को उवरक बनाने के प्रयत्न बतलाए। लेकिन एक दिन शायद जरूर आएगा जबकि प्रकाश सश्लेषण की क्रिया को वैज्ञानिक इतनी अच्छी तरह से समझ लेंगे कि पौधे मे उसकी दक्षता का नियत्रण और सुधार करने मे समर्थ हो सकेंगे। यही नही बल्कि उतनी ही कुशलता से कृत्रिम रूप से पौधे की कोशिका के बाहर भी। और इन सब बातो के उपाय हैं विज्ञान के पास, जिसके बल पर हमे अभी जाने क्या-क्या करना है!

12

घासे हमारे जीवन का आधार

मानव-जीवन का आधार तो अन्न है किन्तु अन्न का आधार ? अन्न का आधार है घास। वही घास जिसे क्षुद्र मानकर मानव ने उपेक्षापूर्ण कहावतो और किवदतियो मे याद किया है।

घासे जीवन का आधार

उपनिषद् मे एक प्रश्न है

"कस्माद मूतानि जायन्ते ?"—अर्थात् "यह विश्व किस

है ?"

और उत्तर यो लिखा है—'अन्नाद् भूतानि जायन्ते।"—जिसका अर्थ है—'यह जगत् अन्न से अर्थात् बाहर से प्राप्त खाद्य से उत्पन्न हुआ।" वास्तव में यह सत्य भी है क्योंकि अन्न से ही जीवद्रव्य बनता है। इसी से जीव पनपते हैं और अन्य नए जीवों का सृजन होता है।

गीता का निम्नलिखित श्लोक भी सर्वविदित है

"अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भव,
यज्ञाद भवति पर्जन्यो यज्ञ कर्मसमुद्भव।"

—क्योंकि सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं और अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है और वृष्टि यज्ञ से होती है और वह यज्ञ कर्मों से उत्पन्न होने वाला है।

यह भी कहा गया है कि 'अन्नं वै प्राणा' अर्थात् 'अन्न ही प्राण है।'

पुन अन्न की ही महिमा का एक श्लोक और है—

"अन्नेन रक्षितो देह देहेन प्राणस्तथा,
प्राणेन रक्षितो धर्म अन्नम् रक्षित सर्वांहि।'

गेहू आदी अन्न घासो से ही प्राप्त होते है ।

अथर्ववेद में भी अन्न को सब पूजित तथा श्रेष्ठ धन कहा गया है और उसे विनष्टि की अवस्था को पहुचाने वाले को दण्डनीय माना है, जो निम्नलिखित पक्तियो से स्पष्ट हो जाता है

"यो मे अन्नं यो मे रसं
वाच श्रेष्ठां जिघांसति
इन्द्रश्च तस्मा अग्निश्च
अस्त्र हिंवारमस्यताम्।"
(अथर्ववेद)

—मेरे अन्न को, मेरे पेय को और मेरी श्रेष्ठ वाणी को जो नष्ट करना चाहता है, हे इन्द्र! हे अग्नि! उसे भस्मीभूत कर दो।

हाँ तो अन्न, धान्य या अनाज जिसके विषय मे यह सबकुछ कहा गया है, जिसकी यह सारी महिमा है, जो हमारे शरीरों का पोषक है वह घास से ही प्राप्त होता है घास का ही सुफल है। घास को अंग्रेजी में 'ग्रास' और लैटिन में 'ग्रैमेन' कहते हैं। इसी ग्रैमेन शब्द के आधार पर वनस्पतिविज्ञान में घास के कुल को 'ग्रमिनी' कहा गया है। घास शब्द की उत्पत्ति

शायद 'घस्' से ही हुई होगी क्योंकि मोनियर विलियम के शब्दकोश मे घास का मूल 'घस' ही दिया हुआ है और जब घास काटी जाती है या गाय भैंस उसे दातो से चबाती हैं तो उस समय भी घस् की ही ध्वनि उत्पन्न होती है।

यह तो सभी जानते हैं कि घास विश्व के हरेक कोने पर बिना किसी हिचकिचाहट व रुकावट के उगती है। प्रकृति ने भी अपने ओढने के लिए घास की ही धानी चदरिया छाटी है। घास से ही चारो ओर हरा-भरा दीखता है। और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सृष्टि मे जीवन, आशा और विश्वास का चिह्न भी घास का हरा रग ही है।

जितने भी मुख्य अनाज—गेहू, धान (चावल), जौ, जई, ज्वार, बाजरा, मक्का आदि हैं और जिनके बिना हमारा भरण पोषण असम्भव है, सब इन घासो के कुल ग्रैमिनी के ही अतगत हैं। गन्ना, ईख व पोडा भी घास ही हैं, जिनसे हमे शक्कर, गुड, खाड, रस आदि प्राप्त होता है कि इच्छानुसार खीर, मिठाइया आदि बनायें या कच्चा ही चूस-खाकर उनका रसास्वादन करें। उधर मक्का, जूदरी आदि भूनने पर अपना अलग ही स्वाद देती हैं। गरीब लोग तो मक्का, ज्वार बाजरे से सस्ते मोटे अनाज से ही पेट भरने मे परम सतोष का अनुभव करते हैं। इसी प्रसग मे एक लोकगीत की पक्तिया याद आ जाती हैं, जिसमे गवई गाव के लोग मस्त होकर नाचते हुए मक्का का गुणगान करते हैं

"मकइया रे! तोरो गुन गूथो मे माला " आदि आदि।

घासें एकबीजपत्री होती हैं अर्थात इनके बीज मे एक ही दल होता है, चने या मटर की तरह दो दल नही। ये मुख्यतया एकवर्षी या बहुवर्षी शाक हैं और आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक आदि सभी पक्षो से मानव जीवन के अभिन्न और महत्त्वपूर्ण पदार्थ हैं।

मनुष्य के जनमते ही पूजा के अनुष्ठान मे पाटे के ऊपर गणेश का प्रतीक बनाने मे बछिया के गोबर से बनाये लिंग पर दूर्वा ही रोपी जाती है। पूजा मे छीटे देने के लिए भी दूर्वा ही प्रयोग मे लाई जाती है। बच्चा जब तक छ-सात महीने से अधिक का नही हो जाता उसे अन्न नही दिया जाता है क्योकि तब तक उसमे अन्नपाचक प्रक्रिया परिवर्धित नही होती हैं। इस अवधि के बाद उपयुक्त अवसर पर बच्चे को अन्न ग्रहण कराने का कितना बडा महत्त्व है कि इसे 'अन्नप्राशन' के नाम से पुकारकर एक सस्कार, शुभ कर्म या त्यौहार सा मान लिया गया है।

दैनिक जीवन मे खाये जाने वाले इन गेहू, चावल, जौ, मक्का आदि से हमे कार्बोहाइड्रेट—मड (स्टाच) प्राप्त होता है जो भोजन का प्रमुख अश है। इसी स्टाच के किण्वन द्वारा विविध भाति के आसव (एलकोहोल) भी प्राप्त किये जाते हैं।

घासें सूखी हो या हरी, पुआल, भूसी या चरी के रूप मे हमारे जानवरो के प्रमुख खाद्य हैं। ये अपनी बाला से हमे अनाज प्रदान करती हैं। इनका एक भी अश व्यर्थ नही जाता। यही नही सडा गलाकर भूमि की उर्वरता बढ़ाने के लिए इनमे खाद भी तैयार की जाती है।

आप आश्चय करेंगे कितु बास भी एक ऊची तथा काष्ठीय तने वाली घास है, जो कभी कभी 120 फुट से भी ज्यादा ऊची होती है। इसकी कोशिका भित्तियों मे सिलिका के जमाव के कारण ही यह इतना सुदृढ़ व मजबूत होता है। बास की खपच्चिया तथा शहतीरें मकानो, छप्परो तथा टट्टरा को छान के काम आती हैं। इसकी लकडी पुलो, छडिया, सीढ़ियो, बासुरियो, मछली मारने की बसियो, झाड ओ, हुक्को, बोतला, डण्डा, दरवाजो की कीला, पिचकारियो, धनुष-बाणो, खिलौनों, ब्रुशों, खेती के उपकरणो, चटाइयो, टोकरियो, कधियो, गाय भस को तेल पिलाने के पात्रो, टोप तथा फर्नीचर आदि के बनाने मे प्रयुक्त की जाती है। बास तथा इसी के निकट सबधी पौधो के तनो, जैसे पहाडी रिंगाल आदि, से लिखने की कलम तथा मजबूत कधिया बनती हैं। नटो द्वारा बांस के डडो पर करतब दिखाकर अपनी आजीविका कमाना भी एक उद्यम है। बास की कलियो स सब्जी तथा सुस्वादु अचार भी बनता है। बास के बीज चावल की तरह पकाकर गरीब कबीलो द्वारा भात के रूप मे खाये जाते हैं। भूख मिटाने के लिए ही नही वल्कि औषधि रूप मे भी इनका उपयोग होता है। यही नही बास की पत्तियो व गाठो पर सफेद पदाथ 'तबाशीर' का भी औषधि रूप मे प्रयोग होता है। इसकी लुगदी से बास के कागज (बैम्बू पेपर) का निर्माण होता है।

बास वास्तव म इतना उपयोगी है कि अत मे पचतत्व से बने शरीर की लीला समाप्त होने पर श्मशान घाट तक ले जाने के लिए भी बास की टिक्टी ही स्वाभिभक्ति दिखाती है। फिर देह के भस्म होने के बाद कपाल क्रिया भी बास के गाठयुक्त डडे से ही पूरी होती है। और यदि मैं कहू कि मनुष्य की कहानी बास के नीचे और ऊपर ही सीमित है तो यह असत्य न होगा क्योकि झोपडियो म मनुष्य बास की शहतीरो तथा खपच्चियो के नीचे निवास करता है शरण लेता है और इहलीला समाप्त हो जाने पर बास के दो डडो पर लेटकर अपनी महायात्रा करता है।

घर के आसपास पाक, लॉन या मैदान कितने मनोरम और उपयोगी होते हैं स्वास्थ्य की दृष्टि से कि लोग हरी घास पर अपनी सारी व्यथा भूल जाते हैं। यह घास का ही चमत्कारी प्रभाव तो है कि वह थके तन मन को हौले हौले थपथपाता है और शीतलता व शान्ति प्रदान करता है। ओस वाली घास पर टहलने से तो नेत्र रोग तक दूर हो जाते हैं और स्वास्थ्य वद्धि होती है। खेल कूद के लिए भी लॉन आदि का महत्त्व सभी जानते हैं। घास के बडे विस्तत मैदान व्यापारिक व आर्थिक दृष्टि स लाभदायक सिद्ध होकर स्थान-स्थान पर विशेष नामो से प्रसिद्ध हो गए हैं, जैसे उत्तरी अमेरिका के घास के मैदान प्रेयरीज, दक्षिण अमेरिका के पैम्पास, आस्ट्रेलिया के डाउन्स, दक्षिणी अफ्रीका के सवन्ना या वेल्ड आदि आदि। इनकी विशेषता यह है कि कुछ मे फसला के मौसम पर गेहू, मक्का आदि उगाये जाते हैं और कुछ मे गाय, भस, सूअर आदि पाले जाते हैं। इस तरह अधिक से अधिक दूध, मक्खन, पनीर आदि प्राप्त किया जाता है। यही कारण है कि आस्ट्रेलिया, न्यूजीलड, अमेरिका आदि देशो से कडे स्ड मिल्क, मक्खन पनीर तथा दुग्धचूर्ण (पावडड मिल्क) के डिब्बो का अन्य देशो को बहुतायत से

निर्यात होता है। कुछ मैदानो मे कागज की लुगदी बनाने के लिए लम्बी लम्बी घास उगाई जाती है।

कुछ अन्य घास भी हैं जो हमारे दैनिक जीवन मे अनेक प्रकार से उपयोगी हैं। जिंजर घास, लेमन घास तथा तेलीय घासो से सुगधित तेल निकाले जाते हैं, जिनसे सुगधियो तथा साबुनो का निर्माण होता है। कपूर घास से उत्तम प्रकार का लपेटने व बाधने का कागज (रैंपिंग पेपर) और सस्ते प्रकार का बादामी कागज भी बनता है।

मूज घास से रेशा प्राप्त होता है, जिससे रस्सिया, चटाइया, डलिया आदि बनाई जाती हैं। इसी से मूज का जनेऊ भी बनाया जाता है जिसके कारण हनुमानजी के छवि-वणन मे हनुमान चालीसा का 'काधे मूज जनेऊ साजे' वाला अश साथक हो जाता है। इसके तने का नीचे वाला भाग सरकण्डा या सेंठा कुर्सी (मोढे), मेज, टोकरी, परदे, चिक, कलम आदि बनाने के काम आता है और तने का ऊपरी भाग सिरकी हाउस बोटो, गाडियो, मकानों आदि को छाने के। इस घास की ऊचाई करीब 18 फुट तक होती है।

दीरु घास से मूज की ही तरह का रेशा प्राप्त होता है और कागज तथा बीयर की तरह के आसव बनाने के लिए भी प्रयुक्त होती है। माबर घास जो करीब दो तीन फुट ऊची होती है, भारत की कागज निर्माण वाली घासा मे से एक है।

खस नामक घास की जडें खस की टट्टी के रूप मे ग्रीष्म की तपती दुपहरी मे सारा ताप हरकर शीतल सुखद वातावरण प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त इससे चिक, पखे, टोकरिया, सुराही के ढक्कन आदि भी बनाये जाते हैं। सुरभियुक्त होने से खस की जडो से सुगधिया (सेन्ट) व सुगधित तेल भी प्राप्त किए जाते हैं जो साबुन बनाने मे योगदान देते हैं और औद्योगिक क्षेत्र मे हाथ बटाते हैं। इसके तने से एलकोहोल और बीजो से लाल रग का तेल निकाला जाता है जो दवा के रूप मे उपयोगी होता है। जायन्ट रीड घास या स्पेनिश घास से इटली मे रेशम तथा रेयन तैयार किया जाता है। कुछ घासें माला बनाने तथा कुछ घासें जैसे कोटन ग्रास सूत बनाने के लिए प्रयोग में लाई जाती हैं।

अब तो पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि यदि घास न हो तो हमारा जीना दूभर हो जाए और सम्भवतया इसके अभाव मे हम सष्टि के प्राणी शायद जिन्दा ही न रह सकें। हमारे दूध देने वाले, हल चलाने वाले, गोबर-खाद देने वाले, बोझा ढोने वाले, सवारी गाडी खीचने वाले, मनोरजन आदि प्रदान करने वाले सभी पशु तो घासभक्षी हैं, सब घास पर ही तो पलते हैं। तो देखिए! ये घासें जिन्हे हम घास पात कहकर तुच्छ तथा हेय समझते हैं वास्तव मे सृष्टि की, हमारे जीवन की एकमात्र आधारशिला हैं।

13

तुलसी का बिरवा

हिंदुस्तान में तुलसीदास भी प्रसिद्ध हैं और तुलसीदास का बिरवा भी, बल्कि अगर या कहें कि यहां जनजीवन में रामचरितमानस का तुलसी और तुलसी का पौधा बहुत महत्त्वपूर्ण है तो अत्युक्ति न होगी। अधिकाश हिंदू घरो में तुलसी का पौधा पाया जाता है, जिसकी कि स्त्रिया पूजा करती हैं। ग्रामीण या आम भाषा में लोग इसे तुलसा भी कहते हैं। इसी तुलसी के सबध में विशेष बात यह है कि हिन्दू धम में ही नहीं, इसाई धम में भी इसे बहुत पवित्र माना गया है। अंग्रेजी में इसे 'बेसिल' या 'सेक्रेड बेसिल' यानी

तुलसी का बिरवा

पवित्र तुलसी कहते हैं। और इसीलिए पवित्रता का बोध कराने के लिए अतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक नामकरण में, जो कि लैटिन भाषा में होता है, इसे 'ओसिमम सक्टम' कहा गया है। अंग्रेजी का बेसिल शब्द ग्रीक भाषा के 'बसिलिकोन' शब्द से व्युत्पन्न हुआ है जिसका

अथ है राजसी। फ्रांस वाले इसीलिए इसे 'ल प्लांती रोयली' अर्थात् राजसी पौधा कहते हैं। ईसाइयों में इसके पवित्र माने जाने का कारण यह है कि यही वह पौधा है जो ईसा मसीह यानी क्राइस्ट की कब्र पर उगा था। तब से ईसाइयों द्वारा इसे पवित्र कहा जाने लगा।

इटली और ग्रीस के लोगों को भी बहुत पहले से इसके गुप्त लक्षणों या औषधीय गुणों का पता था। इसीलिए संत बेसिल दिवस को स्त्रियों द्वारा तुलसी की टहनियां का गिर्जाघर में ले जाने और घर लौटने पर उन टहनियों को फर्श पर बिखरा देने की प्रथा रही है कि आने वाला वर्ष खुशहाली हो। इन टहनियों की कुछ पत्तियों को खा लेने और कुछ को अपने वार्डरोब में चूहे व कीड़े भगाने के लिए प्रयुक्त करने की प्रथा भी है।

वृन्दा का वास और विष्णु का छल

तुलसी के पौधे का उद्भव खोजने के लिए हमें हिन्दू धर्म की शरण में आना पड़ता है, जहां से हमें एक करुण कथा सुनने को मिलती है। पद्म पुराण में नारदजी उल्लेख करते हैं कि एक बार इन्द्र शिवजी को मिलने कैलाश गये। जाने क्या बात थी कि उस समय शिवजी इतने क्रोध में थे कि इन्द्र को बचाने के लिए देवताओं के गुरु बृहस्पतिजी को बीच बचाव कराना पड़ा। इन्द्र को मारने के लिए शिवजी ने गुस्से में जो तड़ित फेंकी वह समुद्र में गंगा के संगम पर जाकर गिरी।

समुद्र में इस तड़ित के मिलने से एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम ब्रह्मदेव ने जलन्धर रखा। यह जलन्धर बाद में बड़ा होने पर महान् विजेता बना और उसने पृथ्वी के अनेक राजाओं को हराया। बाद में उसने कालनेमी नामक दैत्य की लड़की वृन्दा से विवाह किया। अपने पराक्रम से गर्वित हो, उसने शिव से युद्ध की ठानी। कैलाश पर्वत पर जब युद्ध शुरू हुआ तो त्र्यम्बक शिवजी उसे परास्त न कर सके, क्योंकि जलन्धर की पत्नी वृन्दा बहुत सती साध्वी थी। इस तरह जलन्धर देवताओं को खूब सताने लगा। देवता उसका नाश करने के उपाय में लगे थे लेकिन किसी तरह सफल न हो सके।

अन्त में विष्णु भगवान को एक उपाय सूझा। उन्होंने अपनी योजना के अनुसार वेश बदलकर जलन्धर का रूप धारण कर लिया और वृन्दा के पास चले गये। वृन्दा इस छलावे में आ गई। लेकिन जैसे ही उसे सत्यता का बोध हुआ उसने विष्णु को कोसा और स्वयं जलकर भस्म हो गई और उधर इसी बीच शिवजी की तड़ित से जलन्धर का भी काम तमाम हो गया।

भय से पीड़ित इधर-उधर छिपे देवता बाहर निकल आये और सबने मिलकर दैत्यों का नाश कर दिया। देवता सब अमन चैन से रहने लगे। लेकिन विष्णु वृन्दा के महल से बाहर नहीं निकले। वे दुःख से पागल थे और वृन्दा की राख में लोटते रहे। देवताओं ने लाख जतन किये लेकिन वे विष्णु को सामान्य स्थिति पर न ला सके। अब यह दायित्व पार्वती पर छोड़ा गया कि वह विष्णु के मन पर से वृन्दा के

उन्हें देवताओं मे वापस ले आयें। अंतत वे सफल भी हो गईं। पार्वती मे वृन्दा की राख मे तीन बीज रोपे, जो तीन पौधो मे उग गये। इन्ही पौधो मे एक पौधा तुलसी का पौधा था। विष्णु को यों तो तीनो पौधे प्रिय थे लेकिन तुलसी का पौधा उन्हे सर्वप्रिय था, क्योंकि उनकी दृष्टि मे वह वृन्दा का ही दूसरा रूप था।

अंधविश्वास और विज्ञान

भारत मे तुलसी की पत्ती व मजरी को औषधि रूप मे प्रयुक्त किया जाता है। छोटे बच्चे या शिशुओ को हिचकी लगते समय इसकी पत्ती की एक बिन्दी बच्चे के माथे पर लगा देते हैं। गदे स्थानो या कीटाणुओ वाली जगहो से लौटने के बाद लोग तुलसी की पत्ती मुह मे रखकर चबा लिया करते हैं। चरणामृत के द्रव्यो मे तुलसी की पत्ती एक प्रमुख अंश है। घरो मे पूजा के जलपात्र मे पानी के साथ तुलसी दल भी देवताओं को चढाया जाता है। हिन्दू लोगो द्वारा अभी भी जनेऊ, चूडी वगैरह टूटने पर पवित्र जगह यानी तुलसी के पास रख दिए जाते हैं। मरते समय आदमी के मुख मे तुलसी की पत्ती रखे बिना सस्कार पूरा नहीं होता। यह विधि वैज्ञानिक इसलिए भी है कि मरते आदमी की सास के कीटाणु तुलसी से नष्ट हो जाए, फैलें नही और उधर कहते हैं कि तब तक प्राण-पखेरू शांति से नही निकलते जब तक कि तुलसीदल न रखा जाय।

बहुत पहले से ही भारतीय लोग इसके औषधीय महत्त्व को जानते रहे हैं। यह वातावरण की वायु को शुद्ध रखती है और मच्छर, कीट पतगो आदि को दूर भगाती है। इसकी तेज सुगन्ध अनेक रोगो के कीटाणुओ को नष्ट कर देती है। खासी, जुकाम, पेट की बीमारियो मलेरिया आदि मे उबले पानी या चाय के साथ इसका सेवन लाभकारी होता है। इसीलिए स्त्रियो द्वारा इसकी पूजा का आरम्भ हुआ होगा। इसके औषधीय और लाभकारी महत्त्व के कारण ही स्त्रिया इसे कठडें, कनस्तर, गमले, बगिया या घर-आगन के कोने मे उगाने लगी होगी। सुबह उठकर नित्यकम से निवत्त होकर इसका सिंचन और देखभाल करना ही शनै शनै पूजा बन गई। फिर लाभकारी वस्तु की पूजा तो भारत की परम्परा रही है। स्त्रिया चूकि धार्मिक अधिक होती हैं इसलिए धीरे धीरे तुलसी के बिरवे की पूजा-परिक्रमा करना, धूप दीप, नैवेद्य, रोली व अक्षत चढाना, तुलसी की शादी रचाना आदि अनेक बातें पूजा के अन्तगत हो गइ। कुछ लोग, जिनकी लडकिया नही होती, तुलसी का विवाह रचाकर ही कन्यादान का पुण्य प्राप्त करते हैं। यदि माना इससे और कुछ न मिलता हो तो व्यस्त रहने के लिए धार्मिक और सामाजिक कम तो है ही यह। जो चीज मन को शांति दे दे, कितनी महान है वह चीज।

हिन्दू, क्रिस्तानी या यूनानी लोगो के तुलसी वाले औषधीय विश्वास को वैज्ञानिको ने भी सच सिद्ध कर दिया है। इसकी एरोमा या सुगंधि सचमुच रोगाणुनाशी व सक्रमणहारी होती है। तुलसी के विभिन्न रासायनिक घटक और तत्त्व विभिन्न रोगों

पर विविध प्रकार से प्रभाव डालते हैं। कुछ वर्षों पहले दिल्ली के एक अनुसधान सस्थान ने इस बात की खोज निकाला कि तुलसी से जो तैलीय पदार्थ निकलता है वह टी० बी० या यक्षमा जैसे रोग का नाश कर डालता है। अभी इस क्षेत्र मे अधिक अनुसधान नही हुए हैं और इसके अनेक गुणो पर पर्दा पडा हुआ है, लेकिन आशा है कि वैज्ञानिक शीघ्र ही सबद्ध रहस्यो का पर्दाफाश करेंगे कि मानव उनसे उत्तरोत्तर लाभान्वित हो सके।

14

केसर उत्पादन और उपयोग

भारतीय सस्कृति और इतिहास म केसर का अपना महत्त्व है। केसरिया बाने से भला कौन परिचित न होगा। केसर से ही केसरिया शब्द की सार्थकता है। केसर को ही यह श्रेय है कि केसरिया रग और केसरिया बाना प्रचलन मे आया। केसरिया रग त्याग और शौर्य का प्रतीक रहा है। तभी तो सोच विचारकर अपने तिरगे झडे मे तीन रगो मे एक रग केसरिया भी रखा गया है और वह भी ऊपरी प्रतिष्ठित रग।

केसर को अग्रेजी मे 'सैफ्रन', अरबी मे 'जाफरान' और लैटिनीकृत वैज्ञानिक रूप मे क्रोकस कहते हैं। क्रोकस शब्द यूनानी के 'क्रोकोस' से व्युत्पन्न हुआ है। मध्य कालीन अग्रेजी का सैफ्रन प्राचीन फ्रासीसी भाषा के 'साफरान' स और य सब मध्य कालीन लटिन के 'सफ्रेनम' शब्द से व्युत्पन्न हुए। इस प्रकार हम दखते हैं कि अग्रेजी के सैफ्रन, प्राचीन फ्रासीसी के साफरान, मध्यकालीन लटिन के सैफ्रेनम और अरबी के जाफरान मे कितना साम्य है।

बहुपयोगी केसर का शाकीय पौधा भारत मे केवल जम्मू और कश्मीर मे ही उत्पन्न होता है। इसकी खेती कश्मीर घाटी की पम्पोर तहसील के 27 गावो और जम्मू के कश्तवाड पठार के छह गावो तक ही सीमित है। कश्मीर घाटी के पम्पोर को छोड दिया जाय तो कह सकते हैं कि सम्पूर्ण भारत मे जम्मू का मटटा गाव और उसके आस पास का इलाका ही ऐसा स्थान है जहा कि केसर उगाई जाती है।

पम्पोर की केसर मटटा की केसर की अपेक्षा अधिक पुरानी कही जाती है और कुछ लोगो का तो यह विश्वास है कि मट्टा म केसर पम्पोर से ही लाई गई। मटटा और पम्पोर की कसर मे यह अतर है कि मटटा की कसर अपेक्षतया अधिक चिटटे रग की लेकिन पम्पोर की केसर अधिक सुवासित होती है। मट्टा की ढलुआ स्थलाकृति और विशेष प्रकार की काली मिटटी तथा इसके परिवेश ने इस अन्य स्थानिक पौधे के कारण इसे जगत्प्रसिद्ध बना दिया है।

अन्य पौधो की तरह केसर की उपज बढाने के लिए जब कृषि की आधुनिक प्रणालियो का प्रयोग किया गया ता केसर न कुछ भी अनुक्रिया नही दिखलाई। जम्मू व कश्मीर राज्य के कृषि विभाग न दो प्रकार स अपना काय आरम्भ किया—एक, प्रति

एकड उपज बढाने के लिए खेती व शोधन की उन्नत विधियो का प्रयोग करके और दूसरे, पुराने स्थलो के अतिरिक्त नए नए स्थानो पर इसको उगाने का प्रयास करके।

लेकिन अभी तक उवरको के प्रयोग से केसर की उपज मे कोई विशेष वृद्धि नही देखी गई है और नए स्थलो पर इसको उगाने के प्रयास भी असफल ही रहे हैं। फिर भी केसर उगाने का यह उपक्रम अभी भी जारी है और जिन स्थानो पर यह उपक्रम चल रहा है, वे स्थान हैं—कश्मीर घाटी मे पलवामा, पडगाम व बारामुला तहसीलें और जम्मू मे तवाड तहसील। जम्मू व कश्मीर राज्य ने केसर उगाने, उसके शोधन और उसके मानकीकरण की आधुनिक विधियो के अध्ययन के लिए कृषि विशेषज्ञो की एक टोली को स्पेन भेजा था।

केसर फूल का स्त्रीकेसर

वनस्पतियो के वर्गीकरण के अनुसार केसर का पौधा पौधो के 'इरिडेसी' नामक कुल मे आता है। इसके फूल लम्बे छरहरे नली जैसे और सूई के आकार के होते हैं। केसर के सामान्य पौधे को वनस्पतिविज्ञान की भाषा मे 'क्रोकस सटाइवस' कहते हैं, जिसमे क्रोकस वश का और सैटाइवस जाति का नाम है।

केसर का वानस्पतिक उत्पादन उसके भूमि म रहनेवाले तने से होता है, क्योकि उसी मे खाद्य पदाथ जमा रहता है। यह हल्दी, आलू व अरबी की तरह भूमि मे तने के द्वारा फलता है। इसके भूमिगत तनो को कन्द का ही घना रूप यानी घनकन्द कहते हैं। इसका फूल उभयलिंगी होता है, अर्थात इसके एक ही फूल मे नर और स्त्री दोनो अग होते हैं। नर-अग पुकेसर और स्त्री अग स्त्रीकेसर कहलाते हैं। आकृति मे फूल सममित या समरूप होते हैं। इसके फूलो की विशेषता यह है कि इनकी अखुडिया (बाह्यदल) व पखुडिया (दल) अलग-अलग नही पहचानी जा सकती, बल्कि एक ही प्रकार की होती हैं और इसीलिए इन्हें परिदल कहा जाता है जो कि तीन-तीन के दो चक्करो मे और रगीन होते हैं। इसका फल सपुट या कैपसूल कहलाता है।

वस्तुत केसर के वर्तिकाग्र यानी स्त्रीकेसर (स्त्री अग) के ऊपरी भाग ही सामूहिक रूप से मिलकर व्यापारिक या सामान्य केसर बनाते हैं। केसर की सुगध उसके मकरन्द के कारण होती है जो फूल म अडाशय के ऊपरी हिस्से पर स्थित मकरन्द ग्रथि से निकलती है। यह मकरन्द ग्रथि आरभ मे नीचे रहती है, परन्तु धीरे धीरे फूल की नली (परिदलो मे बनी लम्बी नली) के मुह पर ऊपर उठ आती है। फूलो का परागण या पराग सेचन भक्खियाओ या तितलिया द्वारा सम्पन्न होता है। यो तो कीटो द्वारा ही पराग एक फूल से दूसरे फूल मे ले जाया जाता है, किन्तु ऐसा न होने पर स्वपरागण भी हो सकता है, यानी उसी फूल के पुकेसर का पराग उसी फूल के स्त्रीकेसर पर पडकर सेचन या निषेचन की क्रिया पूरी कर सकता है।

केसर की सुदर और निरतर वृद्धि के लिए तेज सूरज अभिशाप है, इसलिए सूय के तेज होने के पूव ही केसर के फूल चुन लिए जाते है और यह सारा उत्पादन चार

श्रेणियो मे पृथक कर लिया जाता है। ये चार श्रेणिया हैं—शाही जाफरान, मोगरा, लच्छा और तुर्रेला। प्रत्येक श्रेणी पहली श्रेणी की अपेक्षा क्रमश कम अच्छी होती है अर्थात सबसे अच्छी केसर शाही जाफरान, दूसरे नम्बर पर मोगरा, तीसरे नम्बर पर लच्छा और चौथे नम्बर पर तुर्रेला आती है।

रोग, भोग और उपयोग

भोजन तथा खाद्य पदार्थों को रगने व सुव्यवस्थित करने, सामान्य रगाई करने और औषधियो के निर्माण मे कसर का उपयोग किया जाता रहा है। महगे व अच्छे मसाले के रूप मे केसर का अपना स्थान है। सुगधि मे भी केसर का सानी नही है। विभिन्न औषधिया म विविध प्रकार से इसका प्रयोग किया जाता है। अनेक रोगो मे इसकी शीतलता का फायदा उठाया जाता है। बच्चो की औषधिया मे यह विशेष गुण कारी है। मीठे चावलो व पकवाना मे यह विविध रूप में प्रयुक्त होती है। इसी के नाम पर केसरिया चावल की अपनी विशेषता है। भक्त व धार्मिक वृत्तिवाले हिन्दुओ द्वारा माथे पर केसर का तिलक लगाया जाता है और देवपूजा मे तो इसका महत्त्व है ही।

आधुनिक उपयोग की वस्तुओ मे भी इसको अनेक प्रकार से प्रयुक्त किया जाता है। प्रसिद्ध जाफरानी पत्ती और विभिन्न प्रकार के खुशबूदार और जायकेदार खाये जाने वाले तम्बाकुओ के निर्माण मे केसर एक अनिवाय अवयव है। इसके बिना सारा स्वाद अधूरा और सारा जायका बेमजा है।

केसर के बोने और फसल सभालने के अवसर प्रसन्नता और आमाद प्रमोद के क्षण होते हैं। ऐसे मौको पर निकट या दूर के रिश्तेदारो को आमत्रित किया जाता है। ये मधुर मिलन गाव के रौनक मेलों में बदल जाते हैं और लोग आनदित होकर झूम-झूम कर गाते बजाते हैं। ऐसे लोक गीतो का आधार होता है इसके मनभावन पौधे और अनूठे फूलो की गाथा का गान। केसर से सबधित ये क्रियाकलाप त्यौहार का ही रूप ले बैठे हैं। इस प्रकार रिवाजो और लोक परपराओ की नीव रखने मे भी केसर का योग दान है, जो सस्कृति की दृष्टि से कम महत्त्वपूर्ण नही।

15

वहुउपयोगी वास

जी हा, एकबारगी आप चौंकेंगे जरूर लेकिन वही बास विविध प्रकार से उपयोगी होता है जिसको आप कभी-कभी उपमान के रूप मे प्रयुक्त करते हैं। नही समझे। उपमान इस रूप म जब आप किसी भले आदमी को कहते हैं कि, 'क्या फटे बास के स्वर मे गा रहे हो'। बास के बारे मे अगर मैं कहू कि यह एक बेजोड और महत्त्वपूर्ण चीज है तो आप विश्वास नही करेंगे लेकिन जब इसके गुण गिनाने बैठूगा तो लोहा मान जाएगे। ज म से लेकर जीवन और मरण तक का सच्चा साथी बास ही है, यह कहने मे कोई अत्युक्ति न होगी। ज म मे यानी झोपडी मे शरण देने से लेकर जि दगी म भरण पोषण और अन्त में मरण के समय टिकटी पर महायात्रा तक इसका हमारा चोली-दामन का साथ है और अ त मे कपाल क्रिया भी इसके डडे से ही पूरी होती है।

कौन नही जानता कि आज का युग आबादी की बढोतरी के कारण अनाज की कमी का युग है। अधिक अ न उपजाने के लिए अधिक से अधिक भूमि व जगलो का उपयोग किया जा रहा है। जगलो का सफाया करके खेतीवाली भूमि तैयार की जा रही है लेकिन हम भूल जाते हैं कि इस शोषण से कई हानियां भी हो सकती हैं। प्रत्येक सम्पदा का अपने क्षेत्र मे अपना महत्त्व होता है और उसकी कमी से अनेक दुष्परिणाम सामने आ सकते हैं। ऐसी ही प्राकृतिक सम्पदाओ मे बास भी एक है।

बास से रोटी, भात और साग

आपने पढा होगा कि अनेक स्थानों जैसे बालाघाट (मध्यप्रदेश) आदि के अकालपीडित लोग बास के फलो या दानो को खाकर पेट पालते रहे। ये दाने गेहू की तरह दिखते हैं और लोग इन्हें सुखाकर व पीसकर रोटिया बनाकर खाते हैं। लेकिन ये भी अधिक दिनो तक नसीब हो पायें तब तो। भूख से पीडित गरीब लोग बांस के बीजो को भात के रूप में पकाकर भी खाते हैं। इसके कोमल तनों, कलियों से सब्जी व अचार बनाकर खाया जाता है। इसकी पत्तियों तथा गाठों पर के सफेद पदार्थ तबाशीर या बंसलोचन का औषधि रूप में उपयोग होता है। अन्न न मिलने पर गरीब लोग इसी की रोटी, भात व सब्जी-अचार बढ़िया आदि खाकर गुजारा करते हैं। लेकिन केवल

25 से लेकर 50 वर्ष पुराने बास वृक्ष ही यह प्रदान कर सकते हैं, और नहीं, क्योंकि बहुत कम बास ऐसे होते हैं जो तीन या एक साल में फूलते हैं। अकाल के समय प्रकृति मा भूख से कलपते बच्चो की भूख मिटाने के लिए ही सम्भवतया यह रूप धरती है।

बास को मलाया की भाषा मे बम्बू कहते हैं और यही शब्द अंग्रेजी मे अपना लिया गया है। लैटिन म इसे अतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक नाम 'बैम्बूसा' दिया गया है। यह एक क्षुपीय या झाडीनुमा घास है, लेकिन जिसका तना लम्बा व काष्ठीय होता है। इसकी कोशिकाओ की दीवारो मे 'सिलीका' नामक कडे पदार्थ के कारण ही तना सख्त होता है। घास होते हुए भी इसकी अनेक किस्म पेड के रूप मे उगती हैं, जो विशेष बात है।

उद्भव मे मुख्यतया यह उष्णकटिबधीय पौधा है और मानसून वाले जगलो मे खूब पनपता है, जहा इसका परिवर्धन अधिकतम होता है। शीतोष्ण जलवायु मे करीब 12 हजार फुट की ऊचाई पर यह केवल छोटे क्षुपो व घास के ही रूप मे उगता है।

भारत मे बास हिमालय की तलहटी मे मानसून प्रदेश, नीचे पेनिसुला और पश्चिमी घाट या सह्याद्री म बहुतायत से पाया जाता है। यह 12 हजार फुट तक की ऊचाई यानी ऊचे पर्वतो की हिमरेखा मे भी उगने का बूता रखता है, जैसे कि एडीज आदि पर्वतो मे। बर्मा, असम, बगाल, उत्तर पूर्व हिमालय, पश्चिमी घाट, श्रीलका और अडमान म यह बहुत घने प्रकार से होता है।

यह प्रमुख रूप से वन प्रदेशो मे होता है, लेकिन इधर उधर बिखरे छिटपुट रूप म फाम, नदियो और नहर के किनारे भी उगता है। टिम्बर या इमारती लकडी वाले पेडो की अपेक्षा यह विभिन्न भूमि व जलवायु वाली परिस्थितियो मे उग सकता है। टिम्बर या काष्ठ की तुलना म यह हल्का फुल्का जरूर होता है, लेकिन मजबूती म सानी नहीं रखता। व्यास या मोटाई म यह दो या चार इच और 20 से 40 फुट तक तथा लबाई म 10 इच स लेकर 120 और 150 फुट तक हो सकता है। कुछ के तने खोखले और कुछ के ठास होते हैं, जो गाठो के कारण अनेक पर्वों या पोरियो में बटे होते हैं। गाठो की उपस्थिति ही इसकी शक्ति है। लेकिन इसकी यह शक्ति फफूदियो क लगने से क्षीण हो जाती है और यह भी रोट या सडने, बधक, दीमक आदि कीटो तथा अन्य समुद्री जीवो के आक्रमण का शिकार हो जाता है।

गरीब की झोपडी से नवाब की छडी तक

बहुतायत स होन वाली यह एक ऐसी प्राकृतिक सम्पदा है कि इसे गरीब का लकडी कहते हैं, क्योकि गरीब को तुन, देवदार, चीड आदि की शहतीरें नसीब कहा, उसे तो अपनी टूटी मढ़ैया या छप्पर टट्टर छाने के लिए और जलाने के लिए बास ही आसानी से सुलभ हो पाता है। फिर यह सस्ता भी तो होता है। बास की दो गाठो के बीच की पोरी बहुत पहले स ग्रामीण लोगो द्वारा बर्तन या बोतल तथा हुक्के के रूप मे प्रयुक्त की जाती रही है। सुरीली बासुरी, मछली मारने की बसी व पशुओ को तेल व

मट्ठा पिलाने वाली नाल भी इसी की बदौलत बनती है। नसैनी या सीढ़ी, चिक या सिरकी, परदे, फर्नीचर, टोकरी, खिलौने, कघी, ईंधन, कागज, चटाई, टोप, कलम, छडी या लाठी, डडे, झाड़ू, ब्रुश, बाड, गृहोपयोगी सामान, दरवाजे की कीला आदि के रूप मे इसका उपयोग जाना माना है। धनुष-बाण वाला तथा नटा द्वारा खेल दिखाने और आजीविका चलाने वाला पहलू भी किसी से छुपा नही है। मदिरो मे देवध्वजा इसी पर लहराती है और पानी मे नाव इसी के डाड व पतवार के बल पर तैरती है। पुला, झूला, खपच्चियो, तम्बू, कनात व शामियाने टांगने वाले खम्भो के रूप मे हम दैनिक जीवन मे इसकी सहायता लेते हैं।

कृषि के क्षेत्र मे भी इसका आधार लेना पडता है। गन्ने, केले, पान आदि के पौधों को सहारा देने और कुआ से पानी निकालने के उपकरण बनाने मे भी यह योग देता है। कागमगोडा बनाने में इसका उपयोग होता है और दशहरे म रावण कुम्भकण आदि के पुतले बनाकर जलाने मे भी यह हमारा मनोविनाद करता है। बेडे के रूप मे यह नदियो तथा बदरगाहो में माल चढ़ाने-उतारने के लिए मच बनाने के काम आता है। पहाडा के सीधे सादे लोग इसकी पिचकारी बनाकर होली मे फुहार छोडकर मजा लेते हैं। भारतीय वन अनुसधानशाला, देहरादून मे बफ की सीमाबन्दी करने की स्वचालित मशीन इसी की खपच्चियो के बूते पर बनाई गई हैं। भारत, चीन व जापान मे दीवार बनाते समय सीमट-कक्रीट बिछाने के लिए स्टील के स्थान पर बांस लेकर प्रयोग किए जा रहे हैं। भारत मे एक तिहाई से लेकर आधे तक बांसो का उपयोग कागज और लुगदी बनाने मे किया जाता है।

गहराई मापने के लिए भी बास की सहायता ली जाती है। तभी तो कवि चन्द-बरदाई ने मोहम्मद गौरी की कैद मे पृथ्वीराज चौहान को 'चार बस चौबीस गज, अगुल अष्ट प्रमान। ऐतो पर सुलतान है मत चूक्यो चोहान'—वाली पक्तिया सुनाई थी और पृथ्वीराज ने माप कर गौरी की आंखें तीर चलाकर फोड डाली थी। बास क्रोधी भी बहुत होता है क्योकि दावाग्नि इसी मे छिपी होती है। जब बास आपस मे टकराते हैं तो रगड से अग्नि की चिनगारिया निकलती हैं और बडे-बडे जगल पल-भर मे स्वाहा हो जाते हैं। क्रोध के ही सन्दर्भ म रहीम के निम्नलिखित दोहे मे भी बास का उल्लेख किया गया है

"अमृत ऐसे वचन मे रहिमन रिस की गास।
जैसे मिसिरहु मे मिली निरस बास की फास ॥"

इसकी आतरिक रचना और परिरक्षियो की प्रतिक्रिया देखने के लिए वैज्ञानिक सूक्ष्मदर्शीय, एक्स रे और इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मदर्शीय विधिया से इसकी जाच परख करने मे लगे हैं और आगे देखते जाइए कि इसका उपयोग कहा-कहा किया जाता है।

16

पौधो के शत्रु—पौधे

'पौधो के शत्रु पौधे'—यह सुनकर चौंकने की कोई बात नहीं है। बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है, बड़ा मेढक छोटे मेढक को निगल जाता है, बड़ा आदमी छोटे आदमी का शोषण करता है, कोई नई बात नही। और यह भी सभी जानते हैं कि आदमी आदमी का डाका डालता है, चोरी करता है, लूटता है, सताता है, यहा तक कि जान से भी मार डालता है। यह सब आये दिन होता ही रहता है इस बड़ी दुनिया में।

परफेसी पौधे से लिपटी अमरबेल।
(अमर) रस चूसी तन्तु पौधे के तने की सतह मे प्रवेश कर चुके है।

इसी तरह पौधो में भी अगर ऐसा हो तो कोई आश्चय की बात नही। वे भी तो आखिर जन्तुओ की तरह जीते-जागते जीव हैं। वे जन्तुओ से भला पीछे क्यो रहें?

पौधों का भी अपना समाज होता है और इनके समाज मे भी चोर, लुटेरे, डाकू, गिरहकट, शत्रु, शैतान, खूनी आदि होते हैं। इनके शत्रुओ पर भी वही परिभाषा लागू होती है जो कि हम मनुष्यो पर। शत्रु का यही तो अर्थ है न कि वह किसी को जान से मार दे, किसी पर आक्रमण करके उसे बन्दी या रोगी बना दे, उसका सारा ऐश्वय-वैभव

ले ले, या उसका कुछ छीन ले। कहने का मतलब यह है कि किसी न किसी तरह नुकसान अवश्य पहुचाये। यह नुकसान चाहे बडा हो या छोटा। या माना कि दूसरे को वह नुकसान नही पहुचाना चाहे लेकिन ऐसी हरकत करे जिसे कि दूसरा न चाहता हो या वह उसके लिए परोक्ष मे हानिप्रद हो जाए तो तब भी वह मित्र कहा रहा ? इसलिए वह किसी न किसी रूप मे शत्रु ही तो हुआ।

जैसे मित्र बनने के कई तरीके होते हैं उसी तरह पौधो के शत्रु बनने की भी कई अवस्थाए व प्रकार हैं। अधिकाश पौधे जो कि हमे आखो के सामने चारो ओर प्रकृति मे प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं वे सब 'पुष्पी पौधो' के अतगत हैं, जिनके बिना हमारा और हमारे पशुओ का जीवन असम्भव है। यदि हम इन्हे ही विषय का आधार मानें तो बात बहुत आसान हो जाएगी। हा—तो हमको पालने वाले इन 'पुष्पी पौधो' (फैनेरोगम) पर यदि इन्ही के कुछ सबधी पुष्पी पौधे तथा 'अपुष्पी पौधे' (क्रिप्टोगम) जुल्म ढाते हैं तो वे सब इनके शत्रु ही तो कहलाएगे। इस प्रकार कुछ पुष्पी पौधे, फफूदी, जीवाणु (बैक्टीरिया) समेत कई कवक (फजाई) तथा विषाणु (वाइरस) आदि पौधे ही हमारे चारो ओर के पुष्पी पौधो के शत्रु हैं।

दूब, कटीली झाडिया और परजीवी

शत्रु बन जाना कोई बडी बात नही, ओछी बात जरूर है। शत्रु बहुत छोटा भी हो सकता है और बहुत बडा भी। पर शत्रु शत्रु ही है। वह शरारती भी हो सकता है और चुप्पा भी। या यो भी हो सकता है कि कोई पौधा भले ही चुपचाप अपनी राह चल रहा हो, लेकिन वह इस प्रकार से रहे कि बेचारे छोटे पौधे का रहना मुहाल हो जाए तो वह भी शत्रु ही तो हुआ। अब वह जिन्दा रहे भी, तो क्या उसे जिन्दा कहा जाएगा ? जैसे कि बड़े घने पेड के नीचे उगने वाले पौधे बेचारे कभी भी धूप नही सेंक सकते अर्थात् धूप का प्रकाश नही पा सकते। इससे होता क्या है कि प्रकाश के अभाव मे उनमे पर्ण-हरित (क्लोरोफिल) नही बनता और वे पीले, लम्बे, मरियल, रोगी या पाण्डुरित (इटिओलेटेड) हो जाते हैं और बस इसी तरह अपनी जिन्दगी घसीटते हैं।

उधर औरो को दूसरी ही बात का रोना है। उन्हें अगर धूप का प्रकाश नसीब है तो दूसरी और परेशानिया हैं। उन्हें कटीली झाडिया सिर ऊपर ही नही उठाने देती और चारो ओर से काटे चुभोकर छेडती रहती हैं। इसका फल यह होता है कि लाख कोशिश करने पर व सिर पटकने पर भी वे ऊपर अधिक नही बढ सकते। बस बौने-गट्टे बनकर और कांटे सहकर किसी तरह दिन गिनते रहते हैं।

देखने मे दूब, घास पात या खर-पतवार कितने छोटे लगते हैं पर इनकी पल्टन जब किसी फसल के खेत मे या फूलो के बगीचे मे अनचाहे ही धावा बोल देती हैं तो उस जगह का फिर भगवान् ही मालिक है। ये उन पौधो की सारी खाद खुराक भी चट कर जाते हैं। फिर होता क्या है बजाय कि सजे-सवारे पाल-पोसकर उगाये हुए पौधो की सुन्दरता बढती, उनकी वृद्धि ठीक से होती, वे अच्छे फल फूल देते, उनमे स्वस्थता व

नीरोगता रहती, वे कमजोर और अशक्त हो जाते हैं और जैसा उन्हें होना चाहिए था वैसे नही हो पाते। जरा-सी चौथाई बित्ते की घास बड़े पौधो का जीना हराम कर देती है, लेकिन अपने आप ऐसा नियोजन करती है कि उसका परिवार दिन दूना और रात चौगुना बढता चला जाता है।

ये तो थी दूब-घास की बात जो कि पौधा को जेठ की तरह छूती नही पर मिट्टी मे से उनकी खाद-खुराक पर खूब धावा बोलती है। लेकिन घास से चार सीढ़ी और आगे बढके हैं 'परजीवी पौधे' (पैरासाइट) जो कि अपने-आप तो रत्ती भर भी कमाते धमाते नही, लेकिन दूसरे का माल मजे मे उडाते रहते हैं। इन पर तो वही बात लागू होती है कि बिना बुलाए मेहमान बनकर घर धमक गये और बेचारे तकदीर के मारे 'पोषी' (होस्ट) ने मेहरबानी करके सिधाई मे शरण दे दी तो फिर शराफत से उठकर जाने के बजाय वहीं धरना देकर बैठ गये। एक दफे जम गए तो फिर उठने का नाम नही। पर पोषी तब झुझलाकर इनको खिलाना न भी चाहे और इनसे पीछा छुडाना भी चाहे तो भी नही छुडा सकता क्योकि ये उनके ताले तोडकर व डाका डालकर उनका जमा किया हुआ या कमाया हुआ सारा माल हडपते जाते हैं और डकार तक नही लेते। यह हरकत एक दिन नही दो दिन नही बल्कि जिन्दगी भर चलती रहती है। यहा तक कि इनका पोषक या परपोषी कभी कभी तो समाप्त भी हो जाता है, पर ये कमअक्ल यह भी नही सोचते कि उसकी मौत उनकी अपनी भी मौत है।

इस बात को स्पष्ट करने के लिए कुछेक उदाहरण दे देना बहुत उपयुक्त होगा, नहीं तो बात जमने की नही। हा—तो ऐसे पौधे कहलाते हैं अध-परजीवी और उनसे और चार कदम बढ़कर होते हैं पूण परजीवी। पहली अवस्था अध-परजीवी वाली अवस्था है। इसमे एक पौधा पोषी पौधे मे अपनी जडें जमाकर पानी आदि पदार्थों को तो प्राप्त करता ही है पर साथ ही हरा होने के कारण अपने पणहरित की सहायता से धूप के प्रकाश मे खुद भी भोजन बनाने मे मेहनत करता है। चलो यहा तक ही बात होती तो भी गनीमत थी लेकिन इसके आगे की अवस्था तो सचमुच हद से बाहर हो जाती है। उसमे ये परजीवी हजरत इतने आरामतलब और हरामखोर हो जाते हैं कि अपने-आप कुछ भी नही करते, जरा भी खाना नही बनाते। अपने खाना बनाने वाले पदाथ पण हरित को ही त्याग देते हैं उसे बेच खाते हैं इस ध्येय से कि वह रहेगा तो खाना बनाना ही पडेगा। इसलिए न रहेगा बास न बजेगी बासुरी। लेकिन जिन्दा रहना भी जरूरी है इसलिए पोषी (होस्ट) की कमाई जबरदस्ती छीनकर व डाका डालकर जिन्दगी भर बेदाम बनकर खाते जाते हैं। जब मुफ्त का खाने को मिल रहा हो तो काम किया भी क्यों जाए!

अध-परजीवी पौधो के उदाहरण हैं विस्कम (मिसलटो), लौरेन्थस चन्दन आदि। विस्कम का शिम्बो या सेमो (लेग्यूम), चीड, बाज (ओक), सेब, जूनीपर आदि पर आश्रित रहकर जीवनयापन होता है। ये अध परजीवी पौधे कुछ भोजन तो हरी पत्तियो की सहायता से स्वय बनाते हैं परन्तु शेष भोजन पोषी के तने से चूसकर प्राप्त

करते हैं। इस काम के लिए इनके ऊतक या अश पोषी के ऊतको से सम्पर्क स्थापित किए रहते हैं। इसी तरह स्ट्रीगा की कुछ जातिया, जैसे स्ट्रीगा ल्यूटिया ज्वार की जडो पर अपनी जडें जमा लेती हैं। इन जडो से वे पौधे को जाने वाला लवणो का घोल चूसती हैं। ऐसा करने से पौधा अस्वस्थ हो जाता है और उसमे दाने कम लगते हैं जिससे उपज कम होती है।

पूर्ण परजीवी पौधो का चिरपरिचित व प्रसिद्ध उदाहरण है अमरबेल या आकाशबेल (डोडर या कस्क्यूटा)। इसी सदर्भ मे कवियो ने भी तो कहा है कि 'अमर-बेलि बिन मूल की'—अर्थात अमरबेल बिना जडो के भी भोजन प्राप्त करती है। परन्तु कवि लोग जहा कुछ सही थे वही कुछ गलत भी क्योकि इसकी जडें होती तो हैं पर बहुत ही सूक्ष्म। इसलिए यह कवियो का कसूर भी नही कहा जा सकता क्योकि उन्होने उसे काट-कर सूक्ष्मदर्शी से थोडे ही देखा था। हां—तो इसके तने सूक्ष्म शोषक जडें (हौस्टोरिया) निकलती हैं जो पोषी के शरीर मे गहरे जाकर उसकी दारु नलियो (जाइलम) से लवणा का घोल तथा फ्लोयम नलियो से भोजन चूसती हैं। फिर चूकि हरी तो ये होती नही इसलिए बिना पर्णहरित के खाना भी नही बनाती और पूरी तरह से पोषी पर ही आश्रित रहती हैं। इसी रीति से भूमरेप (ओरोबेंकी) भी तम्बाकू, गोभी, सरसो आदि पौधो की जडो पर अड्डा जमाकर उनकी सारी कमाई चूसकर ऐश करता है। क्रिस्टीसोनिया, बैलेनोफोरा, कार्यालसेला आदि भी पौधो की जड खोदने वाले इसी तरह के परजीवी हैं।

रोगजन या रोगकारी पौधे

ये पौधे परजीवियो से भी कही आगे बढ़कर हैं। ये पोषी पौधे का माल तो खाते-पीते हैं ही, पर नमकहराम बनकर उसके पीछे हाथ धोकर ऐसे पड जाते हैं कि उसका नामोनिशान ही मिट जाता है। अत ऐसे पौधे—जो अन्य पौधो पर आक्रमण करके अड्डा जमा लें और फिर उनका खाना खुराक उडाकर उनमे गडबडिया पैदा करके इस तरह हानि पहुचा दें कि वे रोगी बन जायें—रोगजन या रोगकारी (पैथोजेन) कहलाते हैं। इनसे तो भगवान् ही बचाये। जहा ये लगे, समझो वहा का सफाया। पहले तो सारे का सारा नही तो कोई न कोई अग बिलकुल साफ। पौधो के बाहरी अगो का रोग तो देखने मे नजर आ जाता है पर उसके भीतर जो क्रियात्मक गडबडिया हो जाती हैं वे बाहर से नजर कहा आती हैं। इसलिए इनसे कई बीमारिया घर कर लेती है। जीवाणु (बैक्टीरिया), किट्ट (रस्ट), कड (स्मट), फफूदिया आदि कवक तथा विषाणु (वाइ-रस) आदि रोगकारी पौधे अन्य पौधो मे कई विचित्र प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं।

पौधे मे क्रियात्मक गडबडिया हो जाने से उसमें 'विल्टिंग' अर्थात कुम्हलाने का रोग हो जाता है। ककडी, खीरे, मक्का, गाजर आदि म इसी तरह का विल्टिंग रोग होता है। इनके कारण ही सेब तथा आलू मे 'स्कैब' या दाग धब्बो का रोग हो जाता है। रोगजन की वद्धि अगर बहुत तेजी से होती है तो पौधे मे उभरनें हो जाती हैं और

इस रोग को अतिवृद्धि या 'हाइपरट्रोफी' कहते हैं। ये रोग आमतौर पर अल्फल्फा, आलूबुखारे तथा बन्दगोभी आदि मे होते हैं। रोगजन जब पौधे के अंगों को नष्ट कर देता है तो वहा भूरे रग के धब्बे पड़ जाते हैं और ऐसे धब्बे टमाटर व गुलाब के पत्तों पर आसानी से देखे जा सकते हैं। अगर रोगजन ऐसी हरकत करे कि दूसरे पौधो की कोशिकाओं की दीवार ही गल जाये या नष्ट हो जाए तो सारा अग ही सड़ जाता है और वैज्ञानिक भाषा मे हम कहते हैं कि पौधे मे 'रॉट' रोग हो गया है। आड़ू, सेब, स्ट्रोबेरी, शकरकद आदि में यह रोग बहुतायत से होता है। ऐसे ही सक्रमण से कभी-कभी या तो आलू का रग उड जाता है या वह कुछ अजीबोगरीब रग का हो जाता है। मतलब यह कि वह आम आलू की तरह नही दिखता।

जीवाणु (बक्टीरिया)

जीवाणु मनुष्यो और जानवरों में तो असख्य बीमारिया फैलाते ही हैं पर पौधो को भी ये छोड़ते नही। पौधो मे ये 'ककर' तथा 'ब्लाइट' या अगमारी के रोग फैलाते हैं। कैंकर मे सक्रमण स पौधे के सतह वाले भाग नष्ट कर दिए जाते हैं, जैसे कि सेब, नाशपाती, नीबू आदि मे। ब्लाइट मे मजरियो, किसलयो या नई पत्तियो अथवा कोपलो पर इनका अचानक ऐसा जबरदस्त आक्रमण होता है कि खिलने के पहले वे नष्ट हो जाती हैं जैसे नाशपाती, सेब आदि का 'फायर ब्लाइट'। इनके अतिरिक्त एक जीवाणु ऐसा भी है जिसका काम है आलू को सड़ाना व काला करना।

फफूंदियां

फफूंदियों और कवकों की गिनती की तो कोई हद ही नहीं और यही वे निम्नतर पौधे हैं जो सबसे अधिक रोग फैलाते हैं। जीवाणुओ की तरह ये भी कैंकर रोग फैलाने मे उस्ताद हैं। कुछ कवको के तन्तु या सूत्र पत्तियो तथा फलों की सतह पर इस तरह आक्रमण करते हैं कि लगता है जैसे उन पर सफेद या भूरे पैबन्द से लगे हों। ऐसे रोगो को लोमी फफूंद रोग (डाउनी मिलड्यू) और चूर्णी फफूंद रोग (पाउडरी मिलड्यू) के नाम से पुकारा जाता है। ये स्क्लेरोस्पोरा तथा एरीसाइफी नामक कवकों द्वारा फैलाये जाते हैं। ज्वार, बाजरा, मटर, अगूर, लौंग आदि के पौधों पर ये विशेष रूप से पाये जाते हैं। 'फाइटोफथोरा' आलू की पत्तियो को काला बनाने तथा आलुओं को सड़ाने वाला लेट ब्लाइट' रोग और अरबी का 'ब्लाइट' रोग फैलाता है। इसी तरह 'सिस्टोपस या अलब्यूगो' नाम का कवक भी सरसों कुल के पौधो मूली, गोभी आदि की फसलो को भारी क्षति पहुचाता है।

कभी-कभी तो ये परजीवी कवक ऐसी गड़बडी पैदा कर देते हैं कि पौधे मे पर्ण हरित का निर्माण ही रुक जाता है और पत्तियो का सारा हरापन खतम हो जाता है। इससे वे भोजन बनाने में असमर्थ हो जाती हैं और जब भोजन नही बना पाएगी तो पौधा जियेगा, कसे ?

किट्ट (रस्ट) तथा कड (स्मट)

गेहू तथा तीन काटे वाले पहाडी पौधे किनगोड (बारबेरी) पर अपना जीवन-चक्र पूरा करने वाला कवक या किट्ट (रस्ट) वैज्ञानिक भाषा मे 'पक्सीनिया' कहलाता है और इससे होने वाले रोग को 'किट्ट रोग' कहते हैं। यह गेहू के तने का रोग कृषि-विज्ञान की दृष्टि से बहुत ही खतरनाक है क्योकि इसके सक्रमण से गेहू की फसल को भारी नुकसान पहुचता है। उपज बहुत ही कम हो जाती है और दाना भी बहुत छोटा पड जाता है। एक और खतरनाक कवक है जो कड (स्मट) कहलाता है। असख्य काले बीजाणुओ के कारण यह काले चूर्ण की तरह दिखता है। इसे वनस्पतिविज्ञान की भाषा मे 'अस्टिलागो' कहते हैं। इसकी कई जातिया होती हैं जो गेहू, जौ, जई, बाजरे तथा मक्का आदि की बालो को नष्ट करके उन्हें काले चूर्ण मे बदल देती हैं। इस सक्रमण से खडी फसल सारी की सारी नष्ट हो जाती है। यह 'कड रोग' इतना भयानक होता है कि बीज के अन्दर समाकर एक फसल से दूसरी फसल और एक पीढी से दूसरी पीढी मे भी पहुच जाता है।

इसके अलावा 'पौलीपोरस' आदि कुछ छत्रक पेडो पर उगकर उनकी लकडी तथा सुदरता बिगाड देते हैं और पौधे उनकी इस हरकत से कितने क्रुद्ध होते होगे वह पौधे ही जानते होगे।

विषाणु (वाइरस)

विषाणुओं के बारे मे काफी कुछ तो मालूम हो गया है पर बहुत अधिक नही। ये प्रोटीन के जटिल व सूक्ष्मतम अणु होते हैं। इनको जीवित और अजीवित अपदार्थों के बीच की कडी माना जाता है परतु इनमे जनन जीवित पदार्थों की ही तरह होता है। पौधो मे ये 'मोज़ेक' या पत्तियो मे पर्णहरित के असम परिवर्धन का रोग उत्पन्न कर देते हैं जिससे पौधा ठीक से भोजन नही बना सकता और देखने मे भी कुरूप हो जाता है। कभी कभी तो ये पौधे मे पर्णहरित जरा भी नही पनपने देते और पौधा जीने मे असमर्थ हो जाता है।

शैवाक (लाइकेन्स), ऑर्किड, मौस आदि

शैवाक या लाइकेन्स ऐसे पौधे हैं जो शैवाल (अल्गी) और कवक (फजाई) के सम्मिलित रूप हैं अर्थात् दोनो मिलकर एक पौधे के रूप मे सहजीवन बिताते हैं। शैवाल हरा होने के कारण धूप के प्रकाश मे खाना बनाता है और कवक जनन करता है इसी-लिए इनका नाम शैवाक रखा गया है। ये बाज आदि कई पौधो पर उगकर उनको बाहर से ढककर उनका सौन्दर्य बिगाड देते हैं। इससे पौधे क्या जगल-के जगल अजीब स रग के हो जाते हैं। इसी तरह ऑर्किड तथा मौस भी पेडो के तनो तथा शाखाओ पर उगकर उन्हें कुरूप बना देते हैं।

17

बिना भूमि की खेती

भूमि मे तो खेती होती ही है, कोई खास बात नही, बगैर भूमि के खेती हो तो कुछ बात भी है। वैज्ञानिक लोग भी जरूरत हो या न हो, वैसे होती कैसे नहीं, नए नए प्रयोग करने मे लगे ही रहते हैं। उन्हें चैन तभी मिलता है जब नई कारगुजारी कर दिखलाए और आम लोगो के लिए अपने आविष्कारो का फायदा मुहैया कराए।

विज्ञान की कई शाखाए उपशाखाए हैं। कृषि सबधी एक शाखा है 'हाइड्रोपोनिक्स' (वाटर-कल्चर) जिसे हिन्दी मे 'जल सवधन' कहते हैं। भूमि मे तो पौधो का सवधन होता ही है पर भूमि के अभाव मे पानी मे पौधो का उगाना ही जल-सवधन कहलाता है। इस तरह बिना भूमि के जडें जमाने के लिए ककरी-बजरी, रेत, राख आदि मे, खनिज तत्वो वाले जल विलयन में, पौधो को इच्छित रूप से उगाना ही हाइड्रोकल्चर, हाइड्रोपोनिक्स, जल-सवधन या बिना भूमि की खेती कहलाती है। यह विधि मुख्य कृषि के रूप मे तो नही लेकिन सहायक या सपूरक कृषि के रूप मे अपनाई जा सकती है।

परम्परा से हटकर यह एक क्रातिकारी कदम है लेकिन विदेशो मे तो पौधा घरो या 'ग्रीन हाउसों' मे बडे मजे मे फल व सब्जियो को उगाने के लिए इस विधि का इस्तेमाल किया जा रहा है। भारत म भी इस विधि का इस्तेमाल धडल्ले से किया जाना चाहिए ताकि शौक का शौक पूरा हो और जरूरतें भी। अब इस शाखा से सबधित तकनीकें, साहित्य व पुस्तकें उपलब्ध हैं जिनकी आराम से मदद ली जा सकती है।

कुछ लोग इस विधि को हॉबी या शौक के रूप मे लेते हैं और ग्रीन हाउसो के पौधे उगाने में इसका खूब प्रयोग करते हैं। पर यह कहना ही पडेगा कि व्यापारिक स्तर पर इसका अधिक उपयोग नही है क्योकि इसमे अधिक परिश्रम और काय की जरूरत होती है। लेकिन दूसरे महायुद्ध मे फौजो द्वारा जवाना के लिए भूगा द्वीप (कोरल आइलंड) में सब्जियां उगाने के लिए इस तकनीक का इस्तेमाल किया गया था, जहा पर कि बहुत कम भूमि थी या भूमि थी ही नहीं। यही नही एशिया मे भी इस विधि का प्रयोग वहा पर किया गया जहा कि भूमि में कृमिया (वम) और अन्य मानव-परजीवियो (पैरासाइट) की भरमार थी। इस डर से यह विधि सचमुच बहुत जरूरी थी।

पुराना इतिहास

यह तकनीक सबधन यानी फसल उगाने की नई तकनीक है, लेकिन पौधो के क्रियाविज्ञानी (फिजियोलौजिस्ट) कुछ इसी तरह की तकनीकें लगभग सौ साल पहले से इस्तेमाल करते आ रहे हैं, यह देखने के लिए कि पौधो के लिए कौन से खनिज तत्त्व आवश्यक हैं।

इसके लिए पौधे अच्छी तरह से धुली विशुद्ध स्फटिक या क्वाट्ज रेत मे या केवल घोलो या विलयनो मे ही उगाए जाते हैं। इनसे सबद्ध परीक्षणो के लिए विलयन (घोल) मे सभी तत्त्व डाले जाते हैं, सिवाय उस तत्त्व के जिसकी कमी का परीक्षण किया जाना है। लेकिन ऐसे विलयनो मे अन्य किसी भी प्रकार का सदूषण या मिलावट नही होनी चाहिए। इस तरह अगर किसी तत्त्व की कमी से पौधा ठीक से नही उगता तो पता चल जाता है कि यह अमुक तत्त्व की कमी से हुआ है और इसलिए वह जरूरी तत्त्व है। ऐसे मे इष्टतम वृद्धि के लिए कौन से तत्त्व मुख्य हैं और कौन से गौण हैं, उनका पता चल जाता है। लेकिन अलग अलग जाति के पौधो मे इसकी मात्रा व अनुपात अलग-अलग हो सकता है।

इस विधि से यह भी पता चलता है कि भूमि से पौधो को केवल पानी, खनिज तत्त्व और जडें जमाने के लिए ही स्थान मिलता है और पौधो की अच्छी वृद्धि के लिए जैविक पदार्थ की अधिक मात्रा जरूरी नही है। लेकिन हा, यह कहना ही पडेगा कि इस विधि द्वारा पैदा किये गये पौधे वास्तव मे अच्छी व उवर सामान्य भूमि मे उगाये गए पौधो से उत्तम नही होते हैं।

वैसे फिर दोहरा दें कि यह विधि बिल्कुल नई नही है। क्रमश ज्ञात सूत्रो से पता चलता है कि सन् 1690 वाले दशक मे प्रयोगशाला वाले प्रयोग के रूप मे एक अग्रेज ने पानी मे पौधो को उगाने का प्रयत्न किया था। इसी तरह सन् 1800 वाले दशक मे जमन अनुसधानकर्ताओ ने इस विधि द्वारा पोषक विलयनो के कुछ सूत्र विकसित किए थे।

लेकिन 1940 वाले दशक मे ही यह विधि अनुसधान प्रयोगशाला से ऊपर उठकर व्यापारिक उपयोग मे आई। सन 1936 मे कैलीफोर्निया के एक क्रियाविज्ञानी डॉ० डब्ल्यू० एफ० गैरिक ने इस विधि से सबधित कुछ निर्देशो की जानकारी लोगो को दी। तब से दुनिया के कई देशो मे इससे सबधित अनुसधान परियोजनाए तथा व्यापारिक उद्यम काफी आगे बढ चुके हैं। इनमे वे क्षेत्र भी शामिल हैं जहा कि पानी की आपूर्ति कम होती है और सामान्य खेती की दृष्टि से तापमान बहुत विषम प्रकार का होता है।

वर्तमान समय में प्रगति

एरीजोना मे बडे ग्रीन हाउस 'जादुई उद्यान' (मैजिक गाडन) कहलाते हैं। पौधो को पानी मे घुले अकार्बनिक पोषक पदार्थों वाला पोषण प्राप्त होता रहता है और जिसकी आपूर्ति खाई या नाली मे लम्बाईवार लगे प्लास्टिक के पाइपो द्वारा

होती है।

इस विधि मे पौधे भूखे या प्यासे हैं इसका भी पता चल जाता है क्योंकि इसमें इलेक्ट्रोनिक सवेदन-युक्तिया जो लगी होती हैं। ये सवेदक (सेंसर) सदेशा को इस तरह भेजते हैं कि वे स्वत ही जल और पोषक तत्र को उत्प्रेरित कर देते हैं। इस तत्र को जब यह पता लगता है कि पौधो को पर्याप्त पोषक प्राप्त हो गया है तो इसकी आपूर्ति स्वत ही बन्द हो जाती है। प्रकृति की मर्जी पर या चास पर कुछ भी नही छोड़ा जाता। सम्पूर्ण तत्र मे तापमान, नमी और वायु परिसचरण को सावधानीपूर्वक नियत्रित किया जाता है। आधी, ओला, पाले, सूखे, खर पतवार अथवा कीटो को तो प्रविष्ट ही नही होने दिया जाता। इस रीति से अधिकाशतया टमाटर, खीरा, घास, सलाद, तरबूज, फलो आदि का उत्पादन किया जा रहा है। इससे फसलो की पैदावार भी बहुत अच्छी रही है।

कुछ पहलुओ से इस प्रकार की खेती की तुलना हम सामान्य भूमि वाली खेती से भी कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, इस रीति से प्रति वर्ष दो वृद्धि चक्रो मे टमाटर के एक परिपक्व पौधे से औसतन 12 किलोग्राम फल प्राप्त होते हैं तो उधर सामान्य प्रकार से भूमि में उगाए गए पौधे से औसतन 9 किलोग्राम। ये टमाटर स्वादिष्ट भी उतने ही होते हैं।

जल सवर्धन वाले ये ग्रीन हाउस प्राय 8×39 मीटर आकार के होते हैं। इनका ढाचा स्टील का होता है और ऊपर से ये प्रबलित प्लास्टिक फिल्म से ढके होते हैं। इस तरह पौधे को मौसम की विषमता व प्रतिकूलता से क्षति नही पहुचती और अधिक से अधिक प्रकाश अन्दर जा सकता है कि पौधो की हरी पत्तिया भोजन बना सकें। पोषण और पानी देने का स्वत सचालन करने वाला तत्र पोषको और पानी दोनो का सचार करता रहता है। वातानुकूलन और ताप देने वाले यत्र दिन मे तापमान 29 डिग्री सेंटीग्रेट और रात म 18 डिग्री बनाए रखते हैं।

फूलो, फलो, सब्जियो, चारे की घास आदि के लिए अलग-अलग आकार के छोटे छोटे एकक होते हैं और इस तरह मानव तथा पशुधन की दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति बडे मजे मे हो जाती है।

अमरीका मे इस प्रकार की खेती काफी जोर पकड़ रही है और कई राज्यों मे यानी पश्चिम वाले कैलीफोर्निया से लेकर उत्तर के मिनीसोटा और दक्षिण के फ्लोरिडा तक इसका प्रचलन हो गया है। इधर नेवादा में भी स्क्वाश और खीरे उगाए जाते हैं तो उधर कैलीफोर्निया मे स्ट्रोबेरी पर प्रयोग चल रहे हैं। कई विश्वविद्यालयो में इससे सबधित गहन अनुसधान चल रहे हैं और व्यापारिक उपयोग की सुविधाओ वाले प्रशिक्षण से लोगो को इस तकनीक की व्यापारिक जानकारी दी जाती है।

दुनिया के अन्य देशों मे भी इस तरह के अनुसधान हो रहे हैं और अनुसधान ही नही खेती में भी बाकायदा उनका इस्तेमाल हो रहा है। इटली, कुवैत, लेबनोन, मैक्सिको, आबुधाबी में भी इस विधि का खूब प्रयोग हो रहा है। मैक्सिको मे प्यूर्टो,

पेनास्को और आबुधाबी के सदियात आइलैंड के जल-संवर्धन फार्मों मे उस समुद्री पानी का इस्तेमाल होता है जिससे कि लवण निकाल लिया जाता है।

यद्यपि इस विधि की भी अपनी सीमाए हैं और मशीनो की असफलता अथवा पोषकों के असतुलन से सारी फसल का अचानक नाश हो सकता है लेकिन इस नई, रोचक और लीक से हटी हुई अपारम्परिक विधि का अपना एक उत्साह है, जिसे होबी के रूप मे या रेतीले व भूमिहीन स्थलो मे तो इस्तेमाल किया ही जा सकता है।

18

पौधो का कृत्रिम उत्पादन

जैसा कि सभी जानते हैं कृत्रिम शब्द का अथ है जो प्राकृतिक न हो यानी प्रकृति के द्वारा न हो, बल्कि उससे अलग किसी दूसरी नकली विधि से उत्पन्न, प्रस्तुत या रूपान्तरित हो। प्रकृति के अलावा जो दूसरा कर्ता बच रहता है, वह है चमत्कारी बुद्धिवाला मनुष्य। दूसरे शब्दा मे यह भी कह सकते हैं कि प्रकृति द्वारा न होकर जो कुछ मनुष्य के बुद्धि-कौशल और परिश्रम से कार्यान्वित किया जाता है वह कृत्रिम है।

हर जीवधारी की यह विशेषता है कि वह अपनी जाति बढ़ाने के लिए पुनरुत्पादन या जनन करता है अर्थात अपने ही अनुरूप अन्य छोटे और वृद्धि कर सकने वाले जीवो के उत्पादन की क्षमता रखता है। लेकिन इस क्रिया को सम्पन्न बनाने मे उसे योग देती है रहस्यमयी प्रकृति। इसलिए यह उत्पादन या जनन जिसे कि हम नित्य प्रति अपने जीवन मे देखते हैं प्राकृतिक हुआ। परन्तु इसके विपरीत मनुष्य प्रकृति के काय मे दखल देकर अपनी सतुष्टि के लिए अब स्वय भी अपनी इच्छानुसार पौधो का उत्पादन करने लगा है। मनुष्य द्वारा सम्पन्न होने वाली 'पादप-उत्पादन' की इस विधि को ही पौधा के कृत्रिम उत्पादन के नाम से पुकारा जाता है। कृत्रिम उत्पादन की कई रीतिया, कई प्रकार व कई कारण हैं, जिन पर कि आये दिन निरन्तर प्रयोग चल रहे हैं। मनुष्य ने इस विधि को इसलिए अपनाया कि वह स्वय पौधो को छाटकर, उन पर इच्छानुसार नियन्त्रण रखकर उनमे व उनकी अगली पीढ़ियो मे परिवतन और उचित सुधार कर सके।

कृत्रिम उत्पादन पौधा के वर्धी (वेजीटेटिव) तथा पुष्पी (लगिक) दोनो भागा से सम्पन्न होता है। वर्धी भागो अर्थात् जड, तने, शाखा, कलियो, आखा, गाठो, पत्तियो, टुकडो आदि का मिट्टी या किसी पौधे म रोपड करके नया पौधा उत्पन्न करने को ही 'कृत्रिम वर्धी उत्पादन' कहते हैं। इसी तरह इच्छानुसार किसी मनचाहे नर फूल का पराग केसर किसी मनचाहे स्त्री फूल के स्त्रीकेसर पर गिराकर नये पौधे उत्पन्न करने की विधि को 'कृत्रिम लगिक उत्पादन' कहते हैं।

इसकी आवश्यकता क्या पडी? यह तो सवप्रसिद्ध है कि 'आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है'। मनुष्य को आवश्यकता पडी और उसने जरूरत पूरी करने क

लिए व अपनी उत्सुकता शान्त करने के लिए प्रयोग करने आरम्भ कर दिए और अपने परिश्रम के कारण इसमे सन्देह नही कि वह सफल हुआ और लगातार सफल होता जा रहा है। उसे आवश्यकता पडी कि मनपसन्द पौधे उगाये जाए, उसे आवश्यकता पडी कि इच्छित समय पर बेमौसम पौधे उगाये जाए, उसे आवश्यकता पडी कि फसल के आम समय से पहले ही असमय फल प्राप्त हो, उसे चाह हुई कि एक पौधे की शुद्धता व गुण दूसरे पौधे या सन्तान मे भी वैसे के वैसे ही बने रहे, उसे आवश्यकता पडी कि रोग-अवरोधी, रोगमुक्त व स्वस्थ पौधे उत्पन्न हो, उसका कलाकार जागा कि सौन्दय के लिए नए नए विभिन्न प्रकार के भाति भाति के फूलो वाले पौधे उगाये जाए और पेट की समस्या के लिए उसे आवश्यकता पडी कि अधिक से अधिक फल व उपज वाले पौधे उत्पन्न हो। इसीलिए इन्ही सब बातो को ध्यान मे रखते हुए उसने अपने प्रयत्न शुरू कर दिए।

वर्धी उत्पादन—प्राचीन और अर्वाचीन प्रयोग

वर्धी उत्पादन कोई नया प्रयोग नही है। यह हमारे आदि पूवजो के समय से चला आ रहा है। हा, यह जरूर है कि विज्ञान के युग मे वह अब नये नये प्रकार से किया जा रहा है और उसमे कई सुधार भी कर दिये गए हैं। किसी पौधे पर उसी जाति के दूसरे पौधे की कलम लगाना एक बहुत पुरानी और मामूली बात है। सेब, नाशपाती, गुलाब आदि पर कलमे लगाने की रीति बहुत पुरानी है और दूधी, नागफनी, गुलाब या अगूर की टहनी काटकर उसे मिट्टी मे रोपकर नया पौधा उत्पन्न करने की विधि भी नई नही। इनकी तकनीकें अवश्य अब नई हैं। इन्ही नई तकनीको से उत्पन्न कैक्टस व युफोबिया की नई-नई जातियो से घरो को सजाना आजकल आधुनिकता का एक विशेष प्रतीक बन गया है।

कलम या पबन्द लगाना (ग्रेफ्टिंग)

इस विधि मे एक पौधे के किसी भाग को काटकर उसी जाति के दूसरे पौधे मे इस तरह लगा दिया जाता है कि उसको बराबर पोषण भी मिलता रहे। इसमे काटकर लगाए गए भाग को कलम (सिओन) और जिस पौधे पर लगाते हैं उसे स्कघ (स्टौक) कहते हैं। इस रीति से नाशपाती या सेब पर या निकट सबधी पौधे पर आसानी से अच्छे नाशपाती या सेब की कलम लगाई जाती है। कलम के अच्छी तरह से बढ़ने के बाद स्कघ की अन्य टहनियो या भागो को काट देते हैं और तब वह कलम एक नए पौधे के रूप मे परिवर्धित हो जाती है। वैसे तो अब कलम कई प्रकार से लगाई जाती है और उसम बहुत कुछ सुधार भी हो गए हैं परन्तु सामान्य सिद्धान्त सबम बिल्कुल एक ही है।

पहले हम सुनते या पढ़ते थे कि एक जानवर ऐसा जिसका सिर आदमी का और धड घोडे का। लेकिन पौधा मे तो यह बात वनस्पति वैज्ञानिको ने करके ही दिखा दी है क्योंकि उन्होने कलम लगाकर कई ऐसे विचित्र पौधे तैयार करके दिखा दिये जिनमें

की कलम दूसरी जाति के पौधे की थी और लगाया गया वह भिन्न जाति के दूसरे पौधे पर। उदाहरण के लिए, उन्होने क्या किया कि एक आलू (पोटैटो) के पौधे पर टमाटर (टोमैटो) की कलम लगाई और आश्चय की बात कि उनका यह प्रयोग बिल्कुल सफल
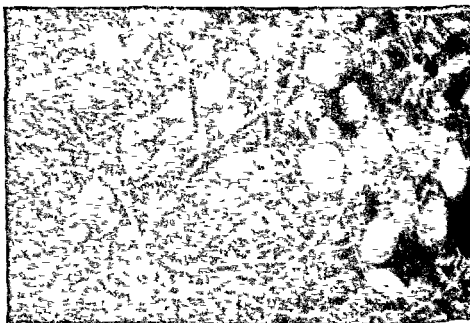
टमाटर तथा आलू की कोशिकाओं को मिलाकर 'पोमटो' का सृजन

रहा। उस पौधे मे आलू भी लगे और टमाटर भी। इस विचित्र पौधे का नाम उन्होने दोनो के कुछ अक्षरो को मिलाकर रखा 'पोमैटो' (पोटैटो+टोमैटो)।

इस तरह कलम लगाने की ही एक दूसरी विधि को भेंट कलम *लगाना* (इन आर्चिग) कहते हैं। इसमे एक बडे पेड की टहनी तथा गमले के पौधे के तने को छीलकर व एक साथ जोडकर चारो ओर से मिटटी, गोबर, रुई आदि से लपेटकर बाध देते हैं। जब दोनो के ऊतक वृद्धि करके परस्पर मिल जाते हैं तो बडे पेड की टहनी को नीचे से काटकर गमले को अलग कर देते हैं और इस तरह कम समय मे ही नया पौधा तयार हो जाता है।

चश्मा चढ़ाना (बडिंग)

इसमे स्कध (स्टोक) के तने मे कली वाले स्थान पर एक-डेढ इच लम्बी काट दे दी जाती है और मनचाहे अच्छे पौधे से उसी आकार की कली या चश्मा लेकर ठीक उस कटे स्थान पर फिट कर दिया जाता है। कली लगाने के बाद उस स्थान को बांध दिया जाता है कि कली या चश्मा स्कध (स्टोक) के ऊतक से बिल्कुल मिल जाए।

कली के परिवधन करने पर बधन खोल दिया जाता है और स्कध की शेष टहनिया भी काट दी जाती हैं। फिर यही नई कली परिवर्धित होकर नया बडा पौधा बना देती है। इस विधि का प्रयोग गुलाब मे काफी किया जाता है और बाग बगीचो से शौक रखने वाले इसी विधि का फायदा उठाकर एक ही गुलाब के पौधे मे कई गुलाबो की कलिया बिठाकर लाल, पीले, सफेद, गुलाबी रग के फूल खिला लेते हैं। देखने वाले हैरत मे पड जाते हैं कि यह कैसा विचित्र गुलाब का पौधा है, लेकिन बात यह है कि बात कुछ भी नही। एक ही पौधे मे विभिन्न रगो के फूलो की बात आ गई है तो चीनी प्रिमरोज या प्रिमुला साइनेसिस का उदाहरण दे देना भी उचित होगा। इसकी एक प्रजाति 20 डिग्री सेंटीग्रेड पर तो लाल फूल देती है परन्तु पौधो को जब 30 डिग्री सेंटीग्रेड या इससे अधिक गरम किया जाता है तो वह सफेद फूल उत्पन्न करने लगता है। और यही नही, एक तापमान से दूसरे तापमान पर ले जाते-ले आते उस पर दोनो रग के फूल देखे जा सकते हैं।

दाब कलम लगाना (लेयरिंग)

किसी पौधे की टहनी या तने का भाग मिट्टी मे दबा दिया जाता है और जब उसमें जड़ें निकल आती हैं तो तने या शाखा को मातृ पौधे से काटकर अलग कर देते हैं। इस तरह बडी सरलता स एक स्वतन्त्र नया पौधा बन जाता है और इसमे वही शुद्धता तथा वही गुण बने रहते हैं।

ठीक ऐसे ही गूटी लगाने व कलम की विधिया भी हैं जिनमे कली के नीचे या तने मे इस तरह से काट दी जाती है कि उसके नीचे से नई जड़ें उत्पन्न हो जाए। जब जड़ें निकल आती हैं तो उसे काटकर अलग कर लेते हैं और इस तरह बिल्कुल नया पौधा तैयार हो जाता है। इसी तरह गन्ने, प्याज, आलू, घुइया, अदरक, हल्दी आदि की आख या कली वाले भाग को काटकर जमीन मे दबा देने से भी नये पौधे उत्पन्न हो जाते हैं।

वर्धी जनन से लाभ यह है कि इस रीति से नया पौधा शीघ्र ही तैयार किया जा सकता है, जो शीघ्र ही फल देने लगता है। इसके साथ ही उसमे मातृ पौधे की *शुद्धता व सभी गुण भी बराबर वैसे के वैसे बने रहत हैं। उदाहरण के लिए, मीठे सुन्दर* सेब की कलम लगाकर उससे बने दूसरे पौधे मे भी बिल्कुल वही सुन्दर मिठास होगी।

पुष्पी भागो द्वारा कृत्रिम जनन (कृत्रिम लगिक जनन)

आजकल तो यह विधि बहुत उन्नत हो गई है और इसको कायापरिवतन या चमत्कार वाली विधि कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। इसमे मनुष्य द्वारा स्वस्थ व मनपसन्द भिन्न भिन्न लक्षणा वाले पौधो का इच्छानुसार परागण करके मनपसन्द गुणो वाली नई-नई स्वस्थ व उत्तम जातियो के उत्पादन के लिए सकरण (हाइब्रिडाइजेशन) किया जाता है। असमान पैतृक लक्षणो वाले भिन्न भिन्न जाति के दो पौधो या एक ही जाति के दो भिन्न भिन्न पौधो मे सयोग या पर निषेचन कराने की क्रिया को ही सकरण

कहते हैं। वैसे मनुष्य द्वारा प्राचीन काल म भी पौधो म परागण व सकरण किया जाता था क्योकि प्राचीन काल के भिति चित्रा से ज्ञात होता है कि लोग उस समय भी खजूर आदि के पेडो मे कृत्रिम परागण किया करते थे। आजकल तो यह क्रिया सामान्य सी हो गई है। हमारे यहा भी सकरण तथा वरण द्वारा फसलो व सुधार व अधिक उपज के लिए अनुसधान काय तेजी से हो रहे हैं। कृत्रिम परागण की यह विधि इसीलिए अपनाई गई है क्योकि इससे कई लाभ हैं। इससे इच्छित प्रकार के पौधे उत्पन्न किये जा सकते हैं और साथ ही नई नई जातिया का उद्भव भी होता है। सुदर व नये-नये विचित्र प्रकार के आकषक पौधे उगाकर घरा उद्यानो की शोभा बढ़ाई जा सकती है और सौदय प्रियता व गुण की सतुष्टि की जा सकती है। इस प्रकार उत्पन्न होने वाले पौधे स्वस्थ, नीरोग, ओजयुक्त, रोग अवरोधी, तुषार अवरोधी, शुष्कता अवरोधी तथा म्लान्ता अवरोधी होते हैं। फलत स्वस्थ व नीरोग पौधो के कारण उपज अधिक होना भी स्वाभाविक है जो कि आज की भुखमरी की समस्या का सबसे बडा समाधान है। इनके अतिरिक्त इस विधि स पौधे मौसम बेमौसम भी उगाये जाते हैं और फसल के समय से पहले ही परिपक्व भी किये जा सकते है। वातावरण म परिवतन करके पौधो या फसलों को शीघ्र परिपक्व करने की इस चमत्कारी विधि को वसन्तीकरण (स्प्रिगिफिकेशन, जेरोवाइजशन या वर्नेलाइजेशन) कहते है। सोवियत रूस मे तो यह विधि व्यवहार म बहुत अधिक लाई जा रही ह। इसी विधि की कृपा है कि साल म चार पाच फसलें उगाई जाती हे और बारहा महीने बेमौसम भी मनपसन्द चीजें खाने को प्राप्त हो जाती है।

इसी सिद्धात को आधार मानकर मद्रास मे अब आमों की फसल बेमौसम पर (अगस्त स माच) भी उत्पन्न की जा रही है। इसी तरह सकरीकरण (हाइब्रिडाइजेशन) के प्रयोग स और उत्परिवतन (म्यूटेशन) से अर्थात् परागण व निषेचन के समय परागकणो, अण्डाशय तथा निषेचित अण्ड मे विकिरण (रेडिएशन), तापमान तथा रासायनिक पदार्थों आदि की सहायता से इच्छानुसार परिवतन करके बदली हुई या उत्परिवर्तित जातिया भी उत्पन्न की गई हैं। इसी सदम म जापान म बीजहीन फलो के पौधे उत्पन्न करने वाले प्रयोगो की सफलता का स्मरण कराना भी आवश्यक होगा। इन आधुनिक उपाया स पौधे या फसल के किसी भी लक्षण म कृत्रिम रूप से उत्परिवतन किया जा सकता ह। फिर जो लक्षण अधिक लाभकारी सिद्ध होता है उसको छाटकर नई किस्म क रूप म उगाया जा सकता है और बिल्कुल इसी आधार पर कई फसला जसे गेहू, धान, मूगफली, चने आदि की सुधरी तथा उन्नत जातियां उत्पन्न की गई हैं। गेहू की सीकुर रहित जाति म परिवतन करके उससे सीकुर वाली स्वस्थ व उत्तम जाति उत्पन्न की गई।

मक्का मे कृत्रिम परागण व निषेचन

पर निषेचित फसला मे सबसे अधिक अनुसधान काय मक्का पर ही किया गया

है। इसीलिए यह अन्य प्रकार की फसलो के लिए नमूने के रूप मे ली जाती रही है। इच्छानुसार पर परागण तथा पर निषेचन करने की इस कृत्रिम विधि मे मक्का की लम्बी व बाहर निकली हुई वर्तिका (स्टाइल) तथा वर्तिकाग्र (स्टिगमा) को प्लास्टिक या किसी कपडे से ढक दिया जाता है और कुछ इच्छित पौधो के ऊपरी सिरे पर के पुकेसरो को छोडकर बाकी सब पौधा के पुकेसरो को काट दिया जाता है। समय समय पर यह देख लिया जाता है कि पौधे परिपक्व हो गए हैं या नही। तब यह जानकर कि पुकेसर परिपक्व हो गए हैं और वर्तिकाग्र पराग के लिए ग्रहणशील हो गया है, परागण की क्रिया आरम्भ कर दी जाती है। परागकणो को स्वय लेकर या नली आदि द्वारा वर्तिकाग्र पर स्थानातरित कर दिया जाता है और निषेचन होने दिया जाता है। इस प्रकार से स्वस्थ पराग व स्वस्थ अण्डाशय वाले इच्छित पौधो मे निषेचन से भुट्टे मे दानो की पक्तिया, दानो का आकार, मण्ड प्रतिशत और रोग अवरोधकता बढ जाती है। फलत उपज की वृद्धि भी स्वाभाविक है और यही मनुष्य का सबसे मुख्य और एकमात्र ध्येय है कि अधिक स अधिक अन्न उत्पादन हो और वह चैन व शान्ति से उदरपूर्ति कर सके।

19

उत्परिवर्तन कृषि जगत् मे क्रान्ति

प्रत्येक जीव का आरम्भ एक कोशिका से होता है जो दो जनन कोशिकाओ यानी मातृ व पितृ अर्थात स्त्री व नर युग्मका के परस्पर मिलने से बनती है। यह प्रारम्भिक कोशिका या शरीर की इकाई सवप्रथम दो मे विभाजित होती है, फिर चार, आठ, सोलह, बत्तीस, चौंसठ, एक सौ अट्ठाईस कोशिकाओ मे और फिर इस तरह क्रमश असख्य कोशिकाओ मे विभाजित होकर वृद्धि करते और बढते हुए चिर परिचित बडे जीव मे साकार हो जाती है। इस तरह कोशिका शरीर की इकाई है और सारी चेतन अचेतन क्रियाए व प्रतिक्रियाए यानी पाचन, अवशोषण, वृद्धि, परिवधन, श्वसन, उत्तेजना, जनन, मत्यु आदि सभी प्रक्रियाए कोशिकाओ मे ही होती हैं। यही जीवन की कुजी है और इसी मे जीवा को चेतना प्रदान करने वाला पदाथ या जीवद्रव्य (प्रोटोप्लाज्म) रहता है। कोशिकाओ के आकार प्रकार म बडी विविधता होती है और एक प्रकार की कोशिकाए अपने विशिष्ट काय की विशेषज्ञ होती हैं।

हाल म अतरिक्ष, चाद और अ य ग्रहा सबधी भौतिक विज्ञान की अभूतपूव सफलताओ ने सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है लेकिन इधर जीवविज्ञान और कृषिविज्ञान सबधी प्रगति भी कम अचरजपूण नही रही है। हो सकता है कि जीव विज्ञान सबधी उपलब्धिया लोगो की निगाह मे कम आ पाई हो कि तु कृषिविज्ञान सबधी उपलब्धिया क परिणाम यानी अ न की अधिक उपज वाली नई जातिया किसाना तक की निगाह म आ गई हैं और वे धडल्ले स इन नई जातियो के बीजो का प्रयोग कर रहे हैं।

आधारभूत और अधिक रोचक अनुसधान आनुवशिकता यानी पैतृक परम्परा से सबधित क्षेत्र म हुए हैं। आनुवशिकता अथवा पैतक पदाथ के स्वभाव और प्रकृति को जानकर उसके गुणा को स्पष्ट रूप से समझा गया है। कुछ आधुनिक अनुसधाना ने आनुवशिकता को नियन्त्रित करने की दिशा मे मनचाही सभावनाओ की ओर इशारा कर दिया है। अधिकतर इन खोजा म जीववैज्ञानिको ने अपना काय कोशिकीय स्तर पर किया है यानी शरीर की इकाई का अध्ययन आणविक स्तर पर किया है। इस प्रकार जीवविज्ञान की एक पथक और नई शाखा अस्तित्व म आई है, जिसे कि आणविक जीव विज्ञान' के नाम से पुकारा गया है।

कोशिकाओ को बारीकी से देखने के लिए सूक्ष्मदर्शी व इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी की मदद लेनी पडती है क्योकि कोरी आख से वह दिखलाई नही पडती है। कोशिका एक स्वचालित जीवरासायनिक कायशाला है। इसका जीवद्रव्य या पदाथ कोशिकाद्रव्य कहलाता है जो जीवन रस से सराबोर रहता है। कोशिका के बीच मे अपेक्षतया घना व गाढा पदार्थ होता है जिसे केन्द्रक या न्यूक्लियस कहते हैं। यह केन्द्रक ही कोशिका के क्रियाकलापो का नियत्रक होता है। इसी मे जीवन का सार और सारा रहस्य छिपा रहता है।

केन्द्रक का ताना-बाना गुणसूत्र और जीन

केन्द्रक या न्यूक्लियस मे धागे जैसी आकृतिया होती हैं जो आनुवशिक या पैतक गुणो से सबधित होती हैं। आकृति मे धागे जैसी और गुणो के वाहक होने के कारण ही इन आकृतियो को गुणसूत्र या क्रोमोसोम कहते हैं। कोशिकाओ की गतिविधियो का सचालन करने के अतिरिक्त ये सम्पूण जीवन प्रक्रियाओ के नियत्रण का महत्त्वपूण काय करते हैं। ये गुणसूत्र ही एक पीढी से दूसरी पीढी मे आनुवशिक निर्देशो व गुणो को ले जाते हैं।

प्रत्येक निषेचित अडाणु अर्थात निषेचित स्त्री जनन-कोशिका के गुणसूत्रो मे जीवन का सन्देश निहित होता है और इन्ही के आधार पर वह अण्डाणु या कोशिका विशिष्ट रूप से आदमी या कुकुरमुत्ता या पीपल मे परिवर्धित होती है और अपने गुण बनाए रखती है। प्राणी व पौधो के गुणसूत्रो की सख्या भिन्न भिन्न होती है किन्तु एक जीव जाति के गुणसूत्रो की सख्या बिल्कुल निश्चित होती है और इसीलिए गेहू गेहू होता है और आम आम। उदाहरण के लिए मानव के गुणसूत्रो की सख्या 46 होती है और ये गुणसूत्र जोडो मे होते हैं अर्थात 23 जोडो मे।

इन करतबी धागो या गुणसूत्रो मे ही जीवसजन के सारे निर्देश अकित होते हैं। इन्ही के माध्यम से जीवन के निर्देश लिखे या दिए जाते हैं। सबसे सनसनीखेज उपलब्धि यही है कि हम इन निर्देशों को देख सकते हैं और इनमे हेर-फेर कर सकते हैं क्योकि अब ये गूढ न रहकर स्थूल हो गए हैं। वैज्ञानिक अब इस गूढ सकेत लिपि को बूझने लगे हैं और मनचाहा परिवतन कर सकते हैं।

गुणसूत्रो के सूक्ष्मतर अध्ययन से पता चलता है कि उनमे आनुवशिकता या पैतृक परम्परा से सबधित अन्य सूक्ष्म इकाइया भी होती हैं जिन्हें 'जीन' कहते हैं। ये जीन गुणसूत्रो मे एक कतार मे सजे रहते हैं। फफूदियो, जीवाणुओ, विषाणुओ, फलमक्खियो आदि के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ये सूक्ष्म जीन भी अन्य सूक्ष्मतर कणिकाओं के बने होते हैं। जीनो के द्वारा ही आनुवशिक गुणो का निर्धारण होता है। जीवरासायनिक कारिन्दो अर्थात एजाइमो के माध्यम से जीन शरीर की सम्पूण क्रियाओ पर प्रभाव डालते हैं।

डी० एन० ए० और पैतृक गुणों की इबारत

गुणसूत्रो का रासायनिक अध्ययन करने पर पता चलता है कि उनका प्रमुख

घटक एक मालानुमा लम्बा अणु है। इस आधार अणु का नाम है—डी० एन० ए० अर्थात डी ऑक्सीराइबो यूक्लीक एसिड। यही आनुवंशिकता का असली घटक या वाहक है और इसी मे जीवनिर्माण के समस्त निर्देश अंकित होते हैं। यह डी० एन० ए० छोटे चार परमाणुओ की एक लंबी शृंखला है, जो आपस मे चढ़ी हुई दो लड़ियो के रूप में होती है। परमाणुओ के इन चार छोटे समूहो के नाम एडिनीन, थाइमीन, साइटोसीन और ग्वानीन हैं। डी० एन० ए० के इन्ही समूहो के अनुक्रम मे पैतृक गुणो की ही सारी इबारत लिखी होती है।

वैज्ञानिको का विश्वास है कि एक आनुवंशिक वाक्य की इबारत के लिए सैकडो यानी करीब एक हजार डी० एन० ए० अक्षरो की आवश्यकता होती है और इनसे मिल कर कही एक आनुवंशिक इकाई या जीन बनता है। इस तरह दूसरे प्रकार के अनुक्रम से दूसरा जीन बनता है। गुणसूत्रों के 'अध्याय' मे जीन 'वाक्य' के रूप मे हैं। महत्त्वपूर्ण जीनो का अनुक्रम मालूम पडने पर विभिन्न लक्षणो के जीनो व उनके परिणामा में मन चाहे परिवर्तन किए जा सकते हैं।

विशेष प्रकार के जीनो द्वारा ही विशिष्ट प्रकार के प्रोटीन बनते हैं। डी० एन० ए० के अलावा आर० एन० ए० या राइबो यूक्लीक एसिड, राइबोसोम आदि घटक है जो अमीनो अम्ल और प्रोटीन निर्माण मे महत्त्वपूर्ण योग देते हैं।

जीनो की गलतियां या परिवर्तन यानी उत्परिवर्तन

साधारणतया तो यही होता है कि एक प्रकार के जीव अपने जैसे ही जीवों को जन्म देते हैं किन्तु कभी कभी असतत रूप से नए प्रकार के जीव यानी मौलिक जीवों से भिन्न जीव उत्पन्न हो जाते हैं। प्रकृति में विकास प्रक्रम मे ऐसा होता रहता है। सामान्यतया जीन पीढ़ी दर पीढ़ी नकल करते जाते हैं लेकिन कभी-कभार ये गलती कर बैठते हैं और बदल जाते हैं। ये क्या बदलते हैं, इनका प्रभाव ही बदल जाता है। जीनो के इस परिवर्तन को ही 'उत्परिवर्तन' या म्यूटेशन कहते हैं। इन सब बातो के अध्ययन के उपरांत ही 1901 मे ह्यूगो डि व्रीज द्वारा एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया जिसे उत्परिवर्तन सिद्धान्त कहा गया। आकस्मिक और अपूर्वानुमेय उत्परिवर्तनो के परिणाम स्वरूप ही जीवो की नई जातिया उत्पन्न होती हैं और ऐसी नयी जातिया पूर्व जातियो से भिन्न होती हैं।

जीन के बदलने का अर्थ है उसके द्वारा मर्यादा का तोडा जाना। उदाहरणार्थ, काला रंग उत्पन्न करनेवाला जीन उत्परिवर्तन के फलस्वरूप भूरा रंग उत्पन्न करने वाला या किसी भी रंग को न उत्पन्न करने वाला हो सकता है। बदला हुआ जीन पूर्व जीन की ही तरह स्थायी बन जाता है। फिर वह नए रूप मे उत्पादन करता चला जाता है। कभी-कभार गुणसूत्रो के टूटने और टूटे अंशो के नए प्रकार से जुड जाने से भी परिवर्तन हो जाते हैं। दुर्बलता, बन्ध्यता मृत्यु वाले दोषी जीनों के कारण जीव लुप्त हो जाते हैं और ओजयुक्त शक्तिशाली जीनों के कारण परिरक्षित रहते हैं। इनकी बदौलत

ही भूविज्ञानीय युगो के बीतते हुए जीव विकास हुआ है।

पौधो मे उत्परिवतन के सामान्य उदाहरण हैं—कटे फटे या खाचेदार पत्तियो या पखुडियो, दोहरे फूलो, बदले रग फूलो वाले पौधो, बौने, दोषी, लाल पत्ती, रोमहीन आदि किस्म के वृक्षो का अचानक उत्पन्न होना। यह विश्वास किया जाता है कि हमारे द्वारा उगाए गए अधिकाश पौधे इसी प्रकार अस्तित्व मे आए हैं।

विकिरण आदि गुणसूत्रो व जीनो तक पहुचते हैं तो उनमे अवश्य ही उत्परिवतन पैदा करते हैं। एक्स किरणो, गामा किरणों, न्यूट्रोनो, रेडियो एक्टिव उत्पादो, कुछ रसायनो आदि के विकिरण से उत्परिवतन को तेज किया जा सकता है।

अन्न वाले पौधो मे कृत्रिम रूप से जीव रासायनिक छेडछाड या विकिरण आदि के विविध प्रयत्नो से मनचाही और अच्छी उपजवाली किस्मे तैयार की जा सकती है, की जा रही हैं और की गई हैं। इस तरह भविष्य मे कायापलट की अनेक सभावनाए हैं।

एच० जे० मुलर नामक वैज्ञानिक ने पहले पहल यह काय किया था। उसी ने सवप्रथम एक्स किरणो के विकिरण द्वारा जीन परिवतन की तरकीब खोज निकाली थी। वैसे मुलर से पहले मौगन ने ये प्रयोग शुरू किए थे किन्तु जीन परिवतन के उद्देश्य से नही।

वैज्ञानिको द्वारा जीनो के परिवतनो का यह कमाल ड्रोसोफिला मक्खी से शुरू होकर अब मानव तक मे बहुत कुछ करतब दिखाएगा। इसी आधार पर विकिरण द्वारा गेहू के लाल जीन को शबती रग के जीन मे परिवर्तित कर शबती रग का गेहू उत्पन्न किया गया। ऐसे अनेक प्रयोगो से रग बदलते अन्न, फल व तरकारिया देखने को मिलेंगी। गामा-किरणो के विकिरण से गेहू की अनेक किस्मो में हेरफेर किया गया है। ऐसे ही हेरफेर से लाल रग वाली मिच को नारगी रग मे रग दिया गया है। ट्राबे के भाभा परमाणु केन्द्र में बडे दानोवाली मूगफली विकसित की गई है। आलू मे भी काफी परिवतन कर नई किस्मे उत्पन्न की गई हैं।

हरित क्रांति

हमारा देश एक विलक्षण क्राति स गुजर रहा है। हमारा भारत उत्परिवतन व सकरण आदि की नई तकनीका से उत्पन्न की गई अन्न की नई जातिया, अधिक उपज वाले बीजो, रासायनिक उवरको, अत्यधिक यत्रीकरण व सिंचाई की प्रणालियो का उपयोग करते हुए खाद्य उत्पादन मे आत्म निभर हो रहा है। गेहू, चावल, ज्वार, बाजरा, अलसी, मूगफली, सरसो, रिजका आदि अधिक उपजवाली किस्मा के सफल विकास से ही यह सब कुछ सभव हो पाया है। भारत का किसान अब अन्न का उत्पादन पन्द्रह से बीस प्रतिशत तक ही नही बल्कि सत्तर से अस्सी प्रतिशत या इससे भी अधिक मात्रा तक बढा सकता है।

बजर और अनुत्पादक भूमि को भी उपयोग मे लाया जा रहा है। सरकार और

किसान मिलकर ज्यों ज्यों संगठित होकर काम कर रहे हैं, त्यों त्यों भूमि 'हरित क्रांति' से मुस्करा रही है। अधिक उपज, संभालने, भंडारगृहों में सुरक्षित रखने, एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने और वितरण क्षमता में वृद्धि के पहलू से कई राज्यों ने बड़े महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम बनाए हैं।

पहले जहां नाइट्रोजन उर्वरक का एक किलोग्राम अन्न के 10 अतिरिक्त किलो ग्राम उत्पन्न करता था, वहां अब वही मात्रा अधिक उपजवाले बीजों के 20 25 किलो ग्राम या इससे अधिक पैदा करती है। नई तकनीक के अनुसार पानी की उतनी ही मात्रा कम से कम दो-तीन गुना अधिक अन्न पैदा करती है। मिट्टी और पानी के उचित वैज्ञानिक प्रबंध द्वारा कृषिविज्ञानियों और किसानों ने उत्पादन की वे सफलताएं दिख लाई है जो कि कुछ वर्षों पहले करीब-करीब असम्भव समझी जाती थी।

अधिक महत्त्व वाले अन्नों में गेहूं और धान की नई बौनी किस्में हैं। अधिक उपज वाला धान भारत में सबसे पहले ताइवान से आया था। इसके बाद फिलिपीन अंतर्राष्ट्रीय संस्था द्वारा विकसित नई किस्म आई। बौना गेहूं रॉकफेलर फाउंडेशन ने मैक्सिको में विकसित किया था और हमारे यहां उसे फोर्ड फाउंडेशन ने पहुंचाया। इसकी डंडी 18 इंच लम्बी तथा दृढ़ होती है और अधिक उपज के वजन से झुकती नहीं।

मैक्सिको जो कि वर्षों तक अपने उपयोग के लिए गेहूं का आधा भाग आयात करता था, 1944 में रॉकफेलर फाउंडेशन द्वारा संचालित गेहूं अनुसंधान कार्यक्रम के माध्यम से 1956 में अन्न की दृष्टि से आत्मनिर्भर बन गया और 1964 में उसने पांच लाख टन अन्न का निर्यात किया। फिलिपीन के लास बनोस में रॉकफेलर और फोर्ड फाउंडेशनों द्वारा प्रवर्तित संयुक्त अनुसंधान से धान की नई किस्में, आई० आर० 5 और आई० आर० 8, विकसित की गई। इनसे प्रति एकड़ उपज 8 5 टन बढ़ी जो कि पुरानी किस्मों की औसत उपज से पन्द्रह गुना अधिक है। इसके फलस्वरूप करीब तीन वर्ष की अल्प अवधि में ही फिलिपीन चावल की कमी के देश से बदलकर अतिरिक्त चावल वाला देश बन गया।

कृषिविज्ञानियों ने अमरीकी सहायता से ग्वाटेमाला के अन्न की सुधरी हुई किस्मों को इण्डोनेशिया और थाइलैंड के अनुकूल बना दिया। इनसे थाइलैंड में क्रांति कारी कृषि परिणाम सामने आए। निर्यात का यह स्तर दुनिया की चौथी श्रेणी का है। अनुसंधान के इन प्रयासों के परिणामों का प्रसार जब अन्न की घोर कमी वाले क्षेत्रों में किया गया तो अन्न की बहुत कमी वाले प्रदेशों में, जहां दो साल पहले लगातार अकाल का भय बना रहता था, 'हरित क्रांति' हो गई।

रोगसह न पसरने वाली, बड़े दानों, अधिक उपज, मौसमसह तथा उत्तम गुणों वाली अन्न की किस्मों से कृषि जगत् में क्रांति आ गई है। भारत में कृषि के क्षेत्र में काफी समय तक स्थिरता रही किन्तु अब ऐसी बात नहीं है। नई अधिक पैदावार वाली किस्मों के विकास से कृषि जगत् में हलचल मच गई है।

पौधो पर जीन परिवर्तन द्वारा मनचाहे पौधे उत्पन्न किए जा सकते हैं। इसी रीति से गेहू की तीन जीनी बौनी किस्म उत्पन्न की गई है, जिसके लिए भारतीय किसान दीवाने रहते हैं। नई किस्म उत्पन्न करने के क्षेत्र मे भारतीय कृषि अनुसधान सस्थान, नई दिल्ली, उत्तरप्रदेश कृषि विश्वविद्यालय, पतनगर, और कृषि विश्व-विद्यालय, लुधियाना, पजाब मे प्रशसनीय काय हो रहा है। यह उल्लेख करना भी युक्तिसगत होगा कि गेहू की नई बौनी किस्मो के जनक डॉ० नारमन बोरलोग को 1970 का शाति नोबल पुरस्कार दिया गया था। अधिक उपज वाले बौने गेहुओ को विश्व के विभिन्न देशो मे भेजकर इस वैज्ञानिक ने गेहू की क्राति मे भारी योग दिया।

20

शैवालो का दोहन

अधिक आबादी के इस युग मे भोजन यानी अन्न की कमी होना स्वाभाविक है। भूमि की कृषि सबधी कुछ सीमाए हैं। इसलिए वैज्ञानिको का ध्यान भूमि से हटकर जल राशि की ओर गया कि इसका उपयोग किया जाए और सचमुच ही इस दिशा मे किए गए प्रयत्न कारगर सिद्ध हुए हैं। इससे भोजन ही नही अन्य और पहलुओ से भी हमारा काम बना है।

एलेरिया (खाद्य शैवाल)

खेती की परपरा बहुत पुरानी है और अन्न देने वाले पौधों की विधि का सूत्रपात हमारे आदि पुरखो ने किया था, लेकिन आज के अधुनातन विज्ञान के युग में भोजन के लिए नई तकनीको से शैवाल सरीखे नन्हे पौधो की खेती करना भी आवश्यक हो गया है कि भोजन की दिन ब दिन की मांग को मजे मे पूरा किया जा सके, और भोजन ही क्यो, और भी अनेक फायदे उठाए जा सकें।
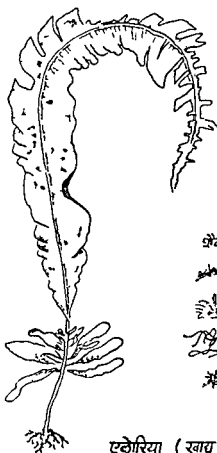
शैवालो को आम भाषा मे सेवार या काही कहा जाता है और अग्रेजी मे 'ऐल्गी'। ये 'थलोफाइटा' या निम्न कोटि के आदि पौधे हैं। ये अधिकाशत जलीय होते हैं और इनमे पर्णहरित (क्लोरोफिल) तथा अन्य

प्रकाश सश्लेषी (भोजन बनाने वाले) रजक पदार्थ होते हैं। ये एककोशिक अथवा बहुकोशीय ततुओ या रेशो के रूप मे तालाबो, नदियो व समुद्रो की सतह पर पाए जाते हैं। लगता है जैसे ऊपर से इनकी चटाई बिछी हो। ये निम्न कोटि के पौधे आज बडे काम के सिद्ध हो रहे हैं।

पिछले कुछ दशको से शैवालो पर व्यावहारिक पहलुओ से हुए वैज्ञानिक अनुसधानो से इनका महत्त्व बहुत बढ गया है और स्पष्ट हो गया है कि भोजन, चारे, खाद, औषधियो, ईंधन, मल उद्धारक आदि के रूप मे ये बहुत अधिक उपयोगी हैं। इसीलिए नई नई वैज्ञानिक तकनीको और विधियो से बडे पैमाने पर इनकी खेती करके इच्छानुसार इनका दोहन किया जा रहा है।

अपेक्षा एक वैचारिक क्रांति की

लेकिन अधिक आबादी और भोजन की कमी के वतमान युग मे इन शैवालो को विविध प्रकार के नए खाद्य पदार्थों और व्यजनो के रूप मे अपनाने के पहले हमे वैचारिक क्राति लानी होगी। जिन क्षुद्र पौधो को हम तालाब, नदी या समुद्र के ऊपर के बेकार का कूडा पदाथ समझते हैं, उन्हें अपने आहार मे महत्त्वपूण स्थान देने के पहले हमे अपने मन को तैयार करना होगा। तभी हमारे वैज्ञानिको की खोजों और तकनीको की साथकता होगी।

पश्चिमी जमनी के, पिएसेन विश्वविद्यालय के डा० वाल्तर फेल्दाइम ने हाल मे विचार विमर्श के दौरान भारतीय वैज्ञानिको को बताया कि अन्य देशो की भाति भारत को भी भोजन के रूप मे शैवालो को स्वीकार कर लेना चाहिए। उन्होने दोहराया कि इनके बडे पैमाने वाली खेती के लिए भारत एक आदश देश है क्योकि इन्हें उगाने के लिए धूप, कार्बन डाइ-ऑक्साइड, खाद और पानी की जिस अधिक मात्रा की जरूरत होती है वह भारत में बहुतायत से पायी जाती है।

इसी प्रसग मे उन्होने बात आगे बढाई कि अलवणजलीय या सादे पानी वाला शैवाल सबसे पहले पश्चिमी जमनी के वैज्ञानिको द्वारा लगभग 30 साल पहले खोजा गया था। उस समय वह उष्णकटिबधीय और उपोष्णकटिबधी देशो मे उगाया जाता था क्योकि योरोप की अपेक्षा वहां सूर्य का प्रकाश अधिक उपलब्ध था। गम देशो मे तो शैवालो की फसल रोज ही तैयार की जा सकती है।

उन्होने यह विचार भी प्रकट किया कि भारत जल्दी ही शैवालो को भोज्य पदार्थों तथा मसालो आदि के रूप मे स्वीकार कर लेगा क्योकि भारतीय गृहिणिया मसालो का इस्तेमाल काफी करती हैं इसलिए भारतीय रसोईघरो मे शीघ्र ही एक नए मसाले का इस्तेमाल शुरू हो जाएगा। भले ही यह बेस्वाद होगा लेकिन इसमे प्रोटीन मास की तुलना मे 50 60 प्रतिशत अधिक और गेहू की तुलना मे पाच गुना अधिक होगा। इसका रग हरा होगा क्योकि यह अलवणजलीय शैवालो से बनाया जाएगा। थाइलंड मे स्कूली बच्चे अब गहरे हरे रग के शैवालीय स्वाद वाले नूडल बडे मजे में खाते हैं और उनमे

इनके स्वाद के प्रति रुचि जगाने मे करीब दो महीने का समय लगा। भारतीयो को भी गेहू चावल तक ही सीमित न रहकर नए भोज्य पदार्थ अपनाकर अपना आहार सतुलित रखना श्रेयस्कर होगा।

पुराना इतिहास

वैसे समुद्री यानी लवणजलीय (खारे पानी वाले) और अलवणजलीय दोना प्रकार के शैवालो का उपयोग मानव बहुत पहले से करता चला आ रहा है। ये उपयोग थे मुख्य रूप से पशु चारे खाद और विभिन्न खनिज पदार्थों के स्रोत के रूप मे। आठवी सदी ई० पू० मे भी चीनी और जापानी लोग आत की गडबडिया या रोगा के उपचार मे समुद्री शैवालो (सी वीड) तथा अन्य शैवालो का उपयोग करते थे। जलोदर, मासिक धर्म सबधी परेशानियो, पेट व आत की गडबडियो, फोडा और यहा तक कि कैसर तक के उपचार मे भी समुद्री शैवाला का उपयोग होता रहा है। हा, यह जरूर है कि इन सूत्रो के आधार पर समुद्री शैवाला से नई नई औषधियो की खोज हाल ही के प्रयत्न हैं।

शैवाल और नए अनुसधान

खेती व अन्य पहलुओ मे महत्त्वपूर्ण होने के कारण नीले-हरे शैवालो ने भारतीय कृषि अनुसधान सस्थान, नई दिल्ली सहित कई प्रयोगकारी सस्थाओ का ध्यान आकर्षित किया है। डॉ० जी० एस० वेंकटरामन अपने दल के साथ एक दशक मे अधिक समय से इनसे सबधित खोज काय कर रहे हैं और इनके द्वारा की गई खोजो के परिणाम निस्सदेह आशाजनक हैं।

केन्द्रीय नमक एव समुद्री रासायनिक अनुसधान सस्थान, भावनगर (गुजरात) मे समुद्री शैवालो पर प्रोटीन की मात्रा सबधी अनुसधान चल रहे हैं। बढती आबादी और अतरिक्ष-यात्रियो के भोजन की समस्या के समाधान मे निकट भविष्य मे निश्चित रूप से शैवालो का ही योग रहेगा।

भोजन के रूप मे समुद्री शैवालो का महत्त्व इनमे खनिज लवणा और विटा मिनो की उपस्थिति के कारण है और वह भी अधिक मात्रा मे। विभिन्न शैवालो मे विटामिन सी० बी०, ए०, थाइमीन, राइबोफ्लेविन आदि पाए जाते हैं। शवालो से दाल वाली फसलो से अधिक प्रोटीन प्राप्त होते हैं। दुधारू पशुओ के चारे मे समुद्री शैवालो के इस्तेमाल से दूध का उत्पादन बढ जाता है। मुर्गियो के चारे मे समुद्री शैवाल मिला देने से वे अडे भी अधिक देती हैं और करोटीन तथा आयोडीन की मात्रा मे भी बढोतरी हो जाती है।

हाल के अनुसधानो से पता चला है कि क्लोरेला सरीखे कुछ एककोशिक हरे शैवालो से मानव व पशुओ के भोजन के लिए प्रोटीन प्राप्त किए जा सकते हैं। भोजन के अलावा अतरिक्ष-यात्रा सबधी अभियानो मे ऑक्सीजन के मुख्य स्रोत के रूप मे क्लो रेला का इस्तेमाल किया जा रहा है क्योकि यह प्रकाश सश्लेषण के दौरान कार्बन डाइ

ऑक्साइड को लेकर ऑक्सीजन बाहर छोडती है (वैसे सभी हरे पौधे यह क्रिया करते हैं पर क्लोरेला इस दृष्टि से बहुत अधिक सुविधाजनक है)। इनकी एक जाति मे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, लिपिड आदि अनेक पोषक तत्त्व होते हैं और इसीलिए यह एक प्रिय शैवाल सिद्ध हो रहा है।

पारस्परिक फसलो के विपरीत ऐसे पौधा की खेती पूरे साल की जा सकती है। इनमे प्रोटीन व वसा अधिक और अपाच्य वज्य पदाथ कम होते हैं। शैवाला की कुछ जातिया प्रकाश सश्लेषण और नाइट्रोजन स्थरीकरण (यौगिकीकरण) बडी अच्छी तरह करती हैं। ऐसे शैवालो की बडे पैमाने पर खेती करने और धान के खेतो पर उनक अनुप्रयोग से धान की उपज मे काफी अधिक वृद्धि देखी गई है। नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करने वाली जातिया भूमि की उपज क्षमता को बढा देती हैं। इनके प्रयोग से ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाया जा सकता है और धान व ईख की अच्छी फसलें पैदा की जा सकती हैं।

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध वैज्ञानिक स्वर्गीय प्रोफेसर आर० एन० सिंह ने इस क्षेत्र म बडे महत्त्वपूण और व्यावहारिक मौलिक अनुसधान किए हैं। उन्होने सिद्ध किया कि नीले हरे शैवाल नाइट्रोजन का यौगिकीकरण प्रचुर मात्रा में करते हैं और धान के खेता मे इनसे धान की पैदावार 114 प्रतिशत बढ जाती है।

भारत का तटरेखीय क्षेत्र बहुत बडा है और यहा ये बहुतायत से पाए भी जाते हैं। इसलिए यहा इनकी खेती बहुत लाभकारी रहेगी। इन क्षेत्रो म सपूरक उद्योगो का विकास भी किया जा सकगा। भारत म पशुओ की आबादी दुनिया की पशु आबादी का एक चौथाई है। अत इनके चारे की समस्या के समाधान के लिए शैवालो का उपयोग किया जाना देश के हक मे ही होगा।

हाल ही मे शैवालो की खेता का एक महत्त्वपूण पहलू उजागर हुआ है और वह है प्रकाश सश्लेषी सूक्ष्म शैवाला द्वारा वाहित मल का उद्धार। अपने देश म वाहित मल के नियत्रण की समस्या बडी गभीर समस्या है और खाद क इस सक्षम स्रोत की बहुत बडी मात्रा यू ही बेकार चली जाती है। इस वाहित मल म शवालो को उगाकर वाहित मल के पानी का पुनरुद्धार किया जा सकता है। शैवालीय कदम या कीच का उपयोग खाद के रूप मे तथा कुक्कुट व सूअरा के लिए प्रोटीन के सस्त स्रोत के रूप मे भी किया जा सकता है। द्रष्टव्य है कि शैवालो को अकाबनिक घोलो और बेकार जाने वाल पानी म बडे पमाने पर उगाने की कई विधिया का विकास कर लिया गया है।

आज के युग मे वाहित मल और उद्योगो के अपशिष्ट के नियत्रण की बहुत बडी समस्या है। चूकि इनम जैविक पदाथ बहुत अधिक मात्रा मे होता है, इसलिए इनके क्षय होने पर ही इनसे दुगन्ध आती है। अत समस्या है इस जविक पदाथ को स्थायी उत्पादो मे अपचित करने की। प्रकृति मे जैविक पदाथ को तोडने का काम वायुजीवी जीवाणु (बैक्टीरिया) करते है, जिन्हे घुली ऑक्सीजन की बहुत आवश्यकता होती है। वाहित मल म चूकि आक्सीजन की कमी होती है इसीलिए इसम यह दुगध होती है। सामान्य रूप स

किए जाने वाले वाहित मल के उद्धार म बहुत अधिक खर्चा आता है। आधुनिक खोजो स पता चला है कि यदि एककोशिक शैवाला को जीवाणुओ म सहजीवन म वाहित मल व जविक अपशिष्ट के खुले तालो मे उगाया जाय तो बहुत लाभ हो सकता है।

शैवाला की प्रकाश सश्लेषण क्रियाशीलता स बहुत अधिक ऑक्सीजन मुक्त होगी और जविक पदार्थ की तोड फोड म जीवाणु उसका अच्छा उपयोग कर पाएगे। इसक परिणामस्वरूप अमोनिया, काबन डाइ-ऑक्साइड, सल्फेट, नाइट्रेट और अन्य उत्पाद भी मुक्त हो सकेंगे और फिर शैवाल अपनी वृद्धि के लिए इनका सदुपयोग भी कर लेंगे। इससे सचमुच खर्चे मे काफी कमी होगी।

वाहित मल वाले एस तालो मे क्लैमाइडोमोनास, क्लोरेला, सन्डेस्मस और यूग्लेना सरीसे शवाला को उगाया जा सकता है। क्लोरेला को उगान से केवल वाहित मल का ही उद्धार नही होगा बल्कि सस्त प्रोटीना की प्राप्ति भी होगी। अमरीका मे तो इस विधि का बडे जोर शोर स अपनाया गया है।

दुनिया म शायद जापान ही एक ऐसा देश है जहा करीब बीस अलग-अलग प्रकार के शैवाल उगाए व खाए जात हैं। मानव भोजन के लिए समुद्री शवाला की खेती जापान सरीखे कुछ दशो म एक बड़े कृषि उद्यम के रूप मे विकसित कर ली गई है। भारत म भी इसकी बडी सभावनाए हैं। इनम सबसे लोकप्रिय शवाल है लाल शैवाल पोरफिरा टेनेरा। जापान के उत्तरी भागा म लैमिनरिया (कोम्बु) का नियमित कषण किया जाता है। भारत मे भी उवरका और कुटीर उद्योग उत्पादा के रूप मे इन शैवाला के नियमित और सुव्यवस्थित दोहन की काफी गुजाइश है।

अनेक दशो म पोरफिरा, लमिनेरिया, सॅरगेसम, अल्वा, एलेरिया आदि की जातिया खाने के काम आती हैं। लाउरोन्सिया पिन्नेटिफिडा नामक शैवाल मसाले के रूप म इस्तेमाल किया जाता है।

भारत के शवाल सबधी अनुसधान केन्द्र

नीले-हरे शैवालो की कुछ किस्म जैव उवरको क अच्छे स्रोत हैं और धान की खेती मे ये तीस प्रतिशत तक रासायनिक नाइट्रोजन का स्थान ले सकते हैं। तमिलनाडु के अनेक कन्द्रा तथा भारत के अन्य भागो म इन परिणामो को भली भाति सुस्थापित किया जा चुका है और यह विश्व-स्तर का अनुभव भी है।

भारतीय कृषि अनुसधान सस्थान, नई दिल्ली शैवालो की अखिल भारतीय समन्वित योजना का मुख्य कन्द्र है। सस्थान ने भारतीय भूमि के आधार पर शैवाल सवध बक की स्थापना करके लाभकारी नीले हरे तथा अन्य विभेदो (स्ट्रेन) को भारी सख्या मे विकसित किया है। यहा से शैवाल आरभक सवर्धों को 400 ग्राम क पकटो मे प्राप्त किया जा सकता है। इन सवर्धों को कृत्रिम रूप से बनाए गए जलाशयो या गाव के प्राकृतिक तालाबो अथवा जलाशयो मे उगाया जा सकता है। फिर फसल के रूप मे प्राप्त किए गए शैवालो को धूप मे सुखाकर चिप्पियो या चूरे के रूप मे बोतल,

टिन अथवा पोलीथीन थैलियों म रखा जा सकता है।

तेलगाना मे धान के खेतो मे एजोला नामक नीले हरे शैवाल के सबध से अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं। यह खर पतवार के रूप म बहुतायत से उगता है जिसे दक्षिणी पठार क अधिकांश भाग म खूब उगाया जा सकता है। इसे उत्तरी वियतनाम मे धान की खेती म खूब इस्तेमाल किया जाता है। अतर्राष्ट्रीय धान अनुसधान सस्थान के शिष्टमडल ने बताया था कि चीन म इसे छोटे तालाबो मे उगाकर फिर धान क खेतो म प्रविष्ट किया जाता है।

एजोला म 3 प्रतिशत नाइट्रोजन होती है और इसका प्रयोग 10 15 टन प्रति हैक्टेयर की दर स किया जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि इसे हरी खाद के रूप में उगाया और इस्तेमाल किया जाना चाहिए। इसे हैदराबाद म खूब उगाया जा रहा है और तमिलनाडु म तथा पोथमपद शासन मे इसका परीक्षण चल रहा है। रासायनिक उर्वरको क सपूरक पदार्थों के रूप मे भी शवालो का योग लाभकारी है। मध्यप्रदेश तथा धान उगाने वाले अन्य राज्यो मे भी ये परीक्षण चल रहे हैं।

केन्द्रीय खाद्य टक्नोलोजी अनुसधान सस्थान, मैसूर हरे शवाल सन्डेस्मस को उगा रहा है। इसक नमूनो को राष्ट्रीय पोषण सस्थान, हैदराबाद म परखा जा रहा है जिससे पता चलता है कि अनिवाय अमीनो अम्ल और अन्य अवयव अधिक सख्या मे होते हैं। वातावरणी अध्ययन वाले औरोविले केन्द्र, पाडिचेरी म क्लोरेला का सवधन किया जा रहा है। इस पशुओ के मूत्र म उवरीकृत किया जाता है। गायो को खिलाने पर दूध क उत्पादन में दो लिटर प्रतिदिन की वृद्धि देखी गई है। अतिरिक्तकार्बन-डाइ-ऑक्साइड और कार्बन की आपूर्ति स शैवाल की वृद्धि दर बढ़ जाती है।

भारतीय पशु अनुसधान केन्द्र, आइजटनगर मे भी परीक्षण चल रहे हैं। जैव गैस सयत्र के कदम (स्लरी) से शैवाल के तालाब को उवरीकृत किया जाता है। शैवाल को पशुओ तथा मछलियो क चारे क रूप म इस्तेमाल किया जाता है। इसी तरह के प्रयोग राष्ट्रीय पर्यावरणी इजीनियरी अनुसधान सस्थान, नागपुर मे भी चल रहे हैं।

समुद्री शवालो के दोहन की भी बहुत सभावनाए हैं। केन्द्रीय नमक तथा समुद्री रसायन अनुसधान सस्थान, भावनगर न सैरगैसम नामक भूरे शवाल को लेकर जैव गैस क उत्पादन सबधी परीक्षण किए हैं। इस प्रसग मे भारतीय पशु अनुसधान, आइजटनगर को कुछ परीक्षण इसलिए करने हैं कि पशु चारे क लिए सैरगैसम मे 30-35 प्रतिशत तक प्रोटीन अन्न होता है लेकिन साथ ही कुछ सखिया (आर्सेनिक) भी।

राष्ट्रीय पोषण सस्थान, हैदराबाद में स्टैरामोर्फा नामक समुद्री शैवाल सबधी उपयोगिता को मानव भोजन की दृष्टि से जाचा परखा जा रहा है। पश्चिमी समुद्र तट की अपेक्षा पूर्वी समुद्री तट शवाल उगाने के लिए अधिक अनुकूल क्षेत्र है। उडीसा की चिल्का झील भी समुद्री शैवालो को उगाने का एक उत्कृष्ट क्षेत्र है और इनम क्षेत्र विशेष क अपने अनूठे प्रकार क परिस्थितिविज्ञान मे कोई बाधा भी नहीं पहुचेगी।

प्राणी

21

कीट : जितने छोटे उतने खोटे

सृष्टि के इन नन्हे प्राणियो से हमारा परिचय बचपन से ही हो जाता है जबकि बच्चे भौंरो व तितलियो को फूलो पर मडराते हुए देखते हैं और उनके पीछे दौडते हैं। वातावरण मे गूजती हुई विशेष ध्वनि के आधार पर हम यह भी कह सकते हैं कि कही
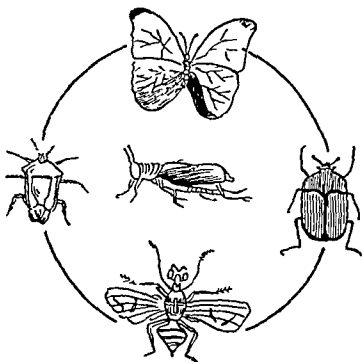
विभिन्न आकार-प्रकार के कीट

मधुमक्खी, मच्छर या बर उड रहे हैं। पढते समय रात को लैम्प या रोशनी के इर्द गिर्द चक्कर काटते हुए तथा मरे हुए पतगो से कोई अपरिचित नही। या तो पतगे भी कीट

ही हैं, परन्तु चूकि ये मनचले, आवारा डोलने वाले और रात्रिचर होते हैं इसलिए इन्हें पतगो या परवानों के विशेष नाम से पुकारा जाने लगा। ये तितलिया या भौंरो की तरह बाहरी टीम टाम पर नही रीझते और रग बिरगे चमचमाते आकर्षक फूलो की ओर इनकी नीयत नही डोलती, लेकिन सीधे सादे मदहोश करने वाली मीठी खुशबू वाले फूलो के पीछे ये जरूर दीवाने बन जाते हैं। रोशनी या शमा की ओर जाना और जान पर खेल जाना इनके लिए मामूली बात है। इनकी आखो पर जितनी तेजी स प्रकाश की किरणें पडती हैं उतनी ही तेजी स इनकी अनुचेष्टा होती है। इसके फलस्वरूप इनकी पेशिया भी उसी तेजी स उत्प्रेरित होती हैं और अपने को रोकने मे असमर्थ होकर ये शमा की ओर ललककर पहुच जाते हैं।

इनमे से कुछ हमारे मित्र होते हैं और कुछ शत्रु। मित्र तो वे, जो हम लाभ पहुचाते हैं और शत्रु वे जो रोगकारी के रूप में या अन्य किसी रूप मे हमे, हमारी फसलो, पौधो, जानवरो, मवेशियो आदि को हानि पहुचाते हैं। लाभदायक कीडो मे मुख्य हैं—शहद की मक्खी, रेशम का कीडा, लाख का कीडा, तितली, भौंरे, फूलो म परागण करने वाले कीट पतगे व हानिकारक कीडो को नष्ट करने वाले कीट। वैज्ञानिक व औद्योगिक उन्नति के द्वारा कृत्रिम रूप से हम रगीन, नाइलोन, ड्रेलोन, टेरिलीन, इन्नोन आदि कैसे ही वस्त्र क्या न बना लें लेकिन यह कहना ही पडेगा कि इन सबमे रेशम की सी बात कहा ? उधर उपयोगी कीडो से अधिक भरमार हानिकारक कीडो की है, जिनम टिड्डी, टिड्डे, मक्खी, मच्छर, खटमल, जू पिस्सू, भृ ग (बीटल), फुगे, बेधक, इल्लियो, मत्कुण (बग), चीटियो, दीमक, बर, ततैया आदि की हरकतो से सभी अच्छी तरह परिचित हैं।

कीडे अधिकाशत आकार मे छोटे ही होते हैं पर बडे कीडो की भी कमी नही। हमारे अपने देश के ऐटलस नामक पतगे के पखो का फैलाव 12 इच के लगभग होता है। आकार म ये सुई के छेद स निकलने वाले सूक्ष्म भृ गो (बीटल) स लेकर विशाल 15 इच लम्बे 'वाकिंग स्टिक' नामक कीट के आकार तक के होते हैं। प्राचीन काल के जीवाश्मो (फासिलो) अर्थात पृथ्वी, चट्टान आदि मे प्रागैतिहासिक काल के कीटो के सुरक्षित अशो या चिह्नो का अध्ययन करने पर तो ज्ञात होता है कि उस समय ऐसी विशालकाय मक्खी या 'ड्रेगन फ्लाई' होती थी, जिनका एक पख ही करीब ढाई फुट के फैलाव का होता था। जीवाश्मो से यह भी ज्ञात होता है कि मनुष्य के आने के पहले पृथ्वी पर करीब 20,00 00 000 वर्ष पहले प्राणियो के प्रतिनिधियो के रूप मे ये कीट या कीडे ही विराजमान थे। इनका उद्भव किस प्रकार हुआ इस बारे मे निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इनका विकास सम्भवतया केकडे की तरह के पूर्वजो से हुआ है, जो कि पानी से बाहर निकलकर जमीन पर आकर सास लेने वाले जन्तु बन गये।

मोटे तौर पर हम कह सकते है कि प्राणि जातियो मे सत्तर प्रतिशत करीब कीडे ही हैं। ये पृथ्वी, हवा, भूमि, अलवणी या खारे जल आदि सभी प्रकार के वातावरण मे बडे मजे मे जीवन बिता लेते हैं। मनुष्यो, जानवरो व पौधो के शरीर मे भी ये बाहरी

व आन्तरिक परजीवी रहकर चैन की वशी बजाते हैं और मुफ्त का माल उडाते हैं। ऊचाई-नीचाई, ठडी गरमी व नमी शुष्कता आदि का इन पर कोई प्रभाव नही पडता। ऊचे पहाडो से लेकर पृथ्वी तल मे नीचे अतल गहराई मे और ठडे बरफीले ध्रुवीय प्रदेशो से लेकर रेगिस्तानो तक इनका साम्राज्य है। 20,000 फुट से ऊचे पहाडो और पृथ्वी तल से 18,000 फुट नीचे गहराई मे भी ये अविचलित होकर जीवन-यापन करते हैं। हिमालय, आल्प्स, ऐंडीज आदि पवता पर पवतारोहियो ने कीडो को सक्रिय अवस्था मे देखा है और आश्चय की बात तो यह है कि कुछ तो गम सोतो की मिट्टी मे धूनी रमाये रहते है जहा कि पानी करीब करीब उबलता रहता है। और इतना ही नही, अन्य कुछ ऐसे सहिष्णु और सन्त भी हैं जो ठडे बरफीले पहाडो की दरारो मे रह लेते हैं जहा का तापमान हिमाक के निकट रहता है। 1832 मे अटलाटिक महासागर की यात्रा के दौरान दक्षिणी अमेरिका से 540 मील दूर सेंट पॉल द्वीप का निरीक्षण करने पर चाल्स डारविन ने अपनी डायरी मे इस प्रकार लिखा था—'यहा द्वीप मे एक क्षुद्र शैवाक (लाइकेन) का पौधा तक नही उगता है लेकिन कई प्रकार क कीडे मकोडे जरूर नजर आते हैं।'

वैसे लोग कई छोटे मोटे प्राणियो को भी कीटो के नाम से पुकारते हैं परन्तु सभी छोटे जन्तु कीट नही होते। इनकी अपनी कुछ विशेषताए है, जिनके आधार पर हम कह सकते हैं कि अमुक जन्तु कीडा है। इनकी सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि प्रौढ अवस्था मे इनमे गिनती की केवल तीन जोडी अर्थात छ टागें होती हैं। साथ ही शरीर कई छोटे छोटे खण्डा म विभाजित होता है और तीन सुस्पष्ट भागो—सिर, वक्ष व उदर मे विभाजित होता है। अग्रेजी मे कीट का पर्याय है 'इनसेक्ट' जो 'इनसाइज्ड' शब्द के आधार पर बना है और जिसका अथ है 'स्पष्ट भागो म बटा हुआ'। अपनी इस छ टागो वाली विशेषता के कारण ही लेटिन मे इनका नाम 'हेक्सापोड' पडा। इनकी दूसरी प्रमुख विशेषता है वक्ष मे सामान्यतया दो जोडी पखो की उपस्थिति। अकशेरुकियो अर्थात बिना रीढ वाले जन्तुओ मे केवल ये ही ऐसे जन्तु हैं जो कि उड भी सकते हैं और पक्षियो के साथ आकाश के अधिपति कहलाने का श्रेय प्राप्त करते है।

कीडो की बातें सचमुच अनोखी हैं। ये सास लेते हैं पर इनमे फेफडो का नाम नही। ये सुनते हैं पर तुर्रा यह कि इनके कान नदारद। ये सूघते हैं पर गजब यह कि इनके नाक नही। इनका दिल होता तो है, पर हमारी तरह का नही। कहने का मतलब यह कि पैदा होने से लेकर मरन तक ये आश्चय मे डाल देने वाली विलक्षणताओ के रहस्यमय प्राणी है क्योकि इनके चलने, उडने, रहने और देखने तक की क्रियायें अपने मे एक अजूबा हैं।

कीडो के जीवन का प्रारम्भ कई प्रकार से होता है। इनके जीवन चक्र मे दो, तीन या चार विभिन्न प्रकार की अवस्थाए होती हैं। मधुमक्खी, बर, भृग, तितली, पतगे, मक्खी, मच्छर आदि कीटो मे पूण परिवतन या पूण कायान्तरण होता है। इनकी जीवन-अवधि मे अडे, डिम्भक या लार्वा, प्यूपा और प्रौढ की क्रमश चार अलग-अलग

अवस्थाए होती हैं। किंतु इसके विपरीत कुछ कीट ऐसे होते हैं जो बीच की एक या अधिक अवस्थाओ को लाध जाते हैं। ऐसे कीटों को अपूर्ण परिवर्तन अथवा अपूर्ण कायान्तरण वाले कीट कहते हैं। झींगुर, टिड्डे, तिलचट्टे आदि ऐस ही कीटो के अन्त गत हैं। इनके शिशु या अमक देखने मे प्रौढ़ स बिलकुल मिलते-जुलते हैं परन्तु आकार मे छोटे व पखहीन होते हैं। उधर पूर्ण कायान्तरण वाले कीटो की शिशु अवस्थाए प्रौढ़ व एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न होती हैं। कुछ कीट अडे स नही फूटते बल्कि सीधे नन्हे कीट के रूप मे जन्म लेते हैं, जैसे कि मध्य ग्रीष्म के ऐफिड या लाही। कुछ ऐफिड तो सचमुच इतने विचित्र होते हैं कि बिना निषेचन हुए ही क्वांरी माता से जनम जाते हैं, जो प्रकृति की एक आश्चयजनक घटना है।

खाने के मामले में भी कीडो में बडी विभिन्नताए हैं। आम घरेलू तिलचट्टे या कॉकरोच तो सीमट व कक्रीट के अलावा सभी कुछ खा जाते हैं क्योंकि इनक जबडे बडे कडे होते हैं, लेकिन कुछ इतने कोमल होते हैं कि बस पराग-कणो का ही आहार करत हैं। कुछ सडते गलते जानवरो को, कुछ लकडी को ही अपना भोजन बनाते हैं। ऐफिड अपने पैने मुखागो से पौधो का सारा रस लस्सी की तरह पी जाते हैं। ड्रेगन फ्लाई हवा मे उडते ही झपट्टा मारकर अय कीडो को चट कर जाती हैं। कुछ शाकाहारी होने के कारण केवल पत्तियो को ही चुगते हैं। कुछ की प्रौढ़ व शिशु अवस्थाओ मे जमीन आसमान का अन्तर होता है क्योंकि प्रौढ बर बेचारे तो फूलो के मकरन्द का ही शोक करके अघा जाते हैं परन्तु शिशु बरों का यह हाल है कि बिना गोश्त खाये इन बिगडे नवाबो का जायका पूरा ही नही होता। इसी तरह तितलियो की इल्लिया तो अपने कडे जबडों से पत्तियो आदि का सत्यानाश कर डालती हैं लेकिन तितलिया कुडलित शुण्ड से बस रस ही चूस सकती हैं। कही मिया-बीवी म ही नही पटती, क्योंकि मच्छर तो मक रन्द पीकर ही तृप्त रहता है पर मच्छरी का यह हाल है कि इसकी प्यास तब तक नहीं बुझती जब तक कि वह हमारा खून नही चूस लेती।

इनमे भी शिकारी, बहेलिये, किसान, सेठ, मेहतर व मिस्त्री आदि होते हैं। अपने विशेष वातावरण के कारण ही इन्होने ये अनुकूलतायें प्राप्त की हैं। रौबर फ्लाइ अपने चुस्त पखो की सहायता से छोटे उडने वाले कीटा पर बाज की तरह झपट्टा मारती है और फिर आराम से बैठकर जायका लेती है।

शिकारी कीटो मे सबसे मनोरजक कीट शिकारी मेन्टिस है जिसे अंग्रेजी मे 'प्रेइग मेन्टिस' कहते हैं। अंग्रेजी मे 'प्रेइग' शब्द दो प्रकार से लिखा जाता है जिसका अर्थ होता है—शिकार करने वाला और प्रार्थना करने वाला। इस पर ये दोनो ही बातें लागू होती हैं। हरे रग का होने के कारण हरी पत्तियों व घास के बीच अपने को छिपाये और बगर हिले-डुले यह चुपचाप पडा रहता है। इसकी अगली टागें आगे की ओर इस प्रकार रखी रहती हैं कि मानो यह भगवान की पूजा कर रहा हो। ऐसे म यदि कोई कीडा भूले भटके उधर आ निकलता है तो यह तुरन्त बिजली की चुस्ती से अपनी कडी चिमटी नुमा टागो से उसे जकड लेता है और जबडो क हवाले कर देता है। कैरिओन नाम की

बीटल की घ्राणशक्ति इतनी तेज होती है कि मीलो दूर से यह मरे हुए जानवरों की गध सूघ लेती है और सारी गदगी साफ कर डालती है। ग्राइलोटैल्पा या छछुदरी झीगुर जमीन खोदकर मिट्टी के अदर रहता है और ऐसी अनुकूलता के लिए उसका सिर नुकीला तथा खोदने के लिए फावडेनुमा सरचनाए होती हैं। चीटियो की कुछ जातिया जमीन के नीचे अपने घरो मे खाद बनाने के लिए वनस्पति पदार्थों को ले जाती हैं और फिर इस खाद पर एक प्रकार की फफूदी या कवक उगाती हैं। ये फफूदियो के ढेर 'कवक-उद्यान' के नाम से पुकारे जाते हैं। इनसे ये फिर अपना भोजन तैयार करती हैं। ये *अनाज आदि भोज्य पदार्थों को ब्लैकमार्केट करने वालो की तरह जमीन के नीचे अपने* गोदामो मे भी जमा करती हैं।

कीटो का व्यवहार और आचरण सस्कारचालित होता है। इनका जीवनकाल इतना कम होता है कि इस छोटी अवधि मे इतना समय कहा कि ये बेचारे कुछ सीख सकें। गुबरैले की नव रानी या कागज बनाने वाले बर्रे के उदाहरण से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। ये बिना प्रशिक्षित हुए ही कोशिकाओ का निर्माण करते हैं, बडे करीने से अडे देते हैं और नन्हे शिशुओ के पालन-पोषण का ध्यान रखते हैं। इसी तरह मधुमक्खियो मे श्रमिक नाम के व्यष्टि इजीनियर भी होते हैं। यह इनके जबडो और दिमाग की खूबी है कि ये साचे मे सा ढला हुआ षटकोणीय कोशिकाओ के छत्ते का निर्माण कर लेते हैं। इनमे आत्मरक्षा के लिए भी बडे उपाय होते हैं। शत्रु से बचना और उसे झासा देने के लिए इनके पास कई तरकीबें होती हैं। ततैयो व मधुमक्खियो के उदर मे स्थित सूई की आकृति का डक अपने बचाव के लिए ही होता है। चीटियो मे फौरमिक अम्ल होता है और इसी कारण इनके काटने पर कटा हुआ अग सूज जाता है।

पानी की बीटलो की आख मे प्राकृतिक ऐनक होती है। इनकी आख द्विफोक-सीय चश्मे की तरह होती है क्योकि यह दो भागो मे बटी होती है। ऊपरी भाग हवा मे देखने के लिए और निचला भाग पानी मे देखने के लिए होता है। अपने बचाव के लिए कुछ कीडे जैसे—लेडी बड बीटल, मोनाक तितलिया, एम्बुश बग, रौबर फ्लाई आदि दुश्मन को देखकर या तो आक्रमण कर बैठते हैं या मुर्दे का-सा अभिनय करते हैं। लैस-विंग या फीतानुमा पखो वाली मक्खिया एक बडी बुरी गध वाला तरल निकालती हैं कि दुश्मन को भागना ही पडता है। इसी तरह कुछ बीटल बडी तेजी से गैस बाहर छोडती हैं कि चारो ओर तीव्र दुर्गंध फैल जाती है। शत्रु से बचने के लिए इनमे यह गुण भी होता है कि ये वातावरण के ही रग के हो जाते हैं। इससे वहा उनकी पहचान ही नही हो पाती। कीडो के ये रग कुछ वर्णको या रगो व शल्को आदि पर निर्भर करते हैं जो कि भोजन के अनुसार प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए, कई इल्लियो का हरा रग उनके द्वारा खाई गई हरी पत्तियो के पणहरित या क्लोरोफिल से प्राप्त होता है।

कीडे जब थक जाते हैं तो रात मे या अधेरे मे हमारी तरह सो भी जाते हैं परतु आखें खुली रखकर। कुछ रौबर फ्लाई रात मे पैरो के नखरो के बल लटककर और बर्रे अपने जबडो को पौधो के तनो मे घुसाकर पैर ढीले करके सो जाते हैं। तितलिया व

ड्रेगन फ्लाई रात को घनी वनस्पतियो के बीच शरण ढूढती हैं। कुछ खुले मे पौधा की छाल पर चिपककर और कुछ फूलो के अन्दर प्रवेश कर खुमार म रात बिता देत हैं। लेकिन परवाने बेचैनी मे रात भर सोते नही। कुछ कीडे ऐसे भी हैं जो रोशनी से दूर भागते हैं और अधेरी दुनिया मे ही रहना अधिक पसन्द करते हैं, जसे तिलचटटे व दीमक।

कीटो की आखें दो प्रकार की होती हैं जिन्हें साधारण और सयुक्त नेत्र कहत हैं। साधारण नेत्र केवल अधेरे मे व प्रकाश के बोध के लिए और सयुक्त नेत्र देखने के लिए होते हैं। इनके एक नेत्र मे हजारो लेन्स और छोटी छोटी इकाइयां होतीं हैं और प्रत्येक इकाई नेत्रक कहलाती है। प्रत्येक सूक्ष्म नेत्रक दिखने वाली वस्तु के भिन्न-भिन्न भागो का बिम्व बनाता है और अतत सब नेत्रको के बिम्वो से मिलकर वस्तु का सम्पूर्ण बिम्ब बनाता है। हमारी तरह नही कि एक आख से ही पूरी आकृति एकदम दिख जाए। कीट सूघने का काय सिर की श्रृगिकाओ या सीगियो द्वारा करते हैं। ये सख्या में दो होती हैं और लम्बे सींगो की तरह निकली होती हैं। रेशम के कीडो म नर कीटो की श्रृगिकायें इतनी गजब की होती हैं कि मादा कीटो की गध को मीलों दूर से अनुभव कर लेती हैं।

हमारी तरह ये सुनते व ध्वनि का बोध करते हैं, परन्तु इनके ये ध्वनिग्राही अग उच्च प्राणिया के कानो से बिल्कुल भिन्न होते हैं। टिड्डे व टिड्डिया मे ये अग उदर के पाश्व मे, झीगुर मे अगली टांगो के जोड वाले स्थान पर तथा कुछ तितलियो मे पखो के आधार पर स्थित होते हैं। इनके अतिरिक्त शरीर के रोम भी ध्वनि-कपन ग्रहण करने में सहायक होते हैं। इनमे ध्वनि उत्पादन मुह से नही होता बल्कि टांग, पख व पेशियो मे विशेष सरचनाओ की परस्पर रगड से होता है। झीगुर की झंकार एक पख की दूसरे पख से रगड के कारण और टिड्डियो की चटचटाने की आवाज पिछले पखो और अगले पखो के रगडने से होती है। कभी-कभी दो-दो प्रकार की हल्की और तेज ध्वनियां भी होती हैं, जैसे कि मच्छर मे। तेज ध्वनि पखो की रगड और हल्की सुरीली ध्वनि श्वास नलिकाओ के मुख पर स्थित तनी झिल्लियों की कपन के कारण होती है। कीटो की स्वाद इन्द्रिया कुछ मुख मे और कुछ स्पशक जैसे अन्य उपागों म पाई जाती हैं। भोजन के स्वाद का भी इन्हें सूक्ष्म ज्ञान होता है। तितलिया नमक व चीनी के स्वाद का अनुभव हमारी अपेक्षा 200 गुना अधिक बारीकी से कर सकती हैं।

श्वसन की क्रिया कीटो मे बहुशाखित श्वास-नलिकाओ द्वारा होती है। बाहरी सतह पर स्थित बारीक श्वासरन्ध्रो द्वारा वायु इन श्वास-नलिकाओ मे अन्दर खीची जाता है। रुधिर शिराओ व धमनियो से होकर नही बहता बल्कि खुले स्थानो से होकर बहता है। रुधिर हमारी तरह लाल रग का नही बल्कि रगहीन या ठीक से कहें तो हल्का हरा या पीला सा होता है।

एक कीट दूसरे कीट को सकेतो द्वारा अपनी बात समझाता है। कुछ नर कीट मादाओ को अपनी ध्वनि द्वारा आकर्षित करते हैं क्योंकि जिसका सगीत सुरीला होता है

उसकी तरफ ही मादा खिंची चली जाती है। मादा झींगुर अथवा मादा टिड्डे को यदि टेलीफोन के रिसीवर के नजदीक रख दिया जाए और दूर ट्रांसमीटर से नर द्वारा ध्वनि उत्पन्न कराई जाए तो नर की ध्वनि सुनते ही मादा एकदम नर की ध्वनि की ओर ललक पड़ेगी। रात के अन्धकार मे जुगनू एक-दूसरे को अपने उदर व ज्योतिक भाग के ठंडे प्रकाश से और चींटिया अपनी शृंगिकाओ को अजीबो गरीब तरह से हिला-जुलाकर इशारे करती हैं। इसी तरह अन्य कीटो की भी अपनी-अपनी छद्म भाषाए होती हैं, जिन्हें कि तार बाबुओ की तरह वे ही समझ सकते हैं।

कुछ कीटो की स्मरण शक्ति बहुत ही तेज होती है। मधुमक्खियां, शिकारी बर और चीटिया स्मरण शक्ति म अपना सानी नही रखती। चीटियो पर भूलभुलैया वाले प्रयोग करके देखा गया है कि ये घूम फिरकर फिर अपने ही स्थान पर पहुच जाती हैं किन्तु मक्खियो की स्मरण शक्ति बहुत कमजोर होती है क्योकि एक बार खतरे की जगह से निकलकर ये फिर वही मडराती हुई देखी गई हैं।

इनके जीवन की अवधि विभिन्न जातियो मे भिन्न भिन्न होती है। प्रौढ मे 'पनाई' की जीवन अवधि तो केवल कुछ घटे या अधिक से अधिक केवल एक दिन की होती है और इसीलिए इसे 'दिवस जीवी' कहते हैं। सिकेडा नामक कीट का जीवन इतिहास 17 वर्ष से भी अधिक समय मे जा के पूरा होता है। कुछ जाडा मे रावण के भाई कुम्भकर्ण बन जाते हैं। जाडो मे ये चुपचाप बगैर हिले डुले शीत निष्क्रियता म चले जाते हैं और कुछ भी खाते-पीते नही। बस, पहले के जमा भोजन पर ही आश्रित रहते हैं। इस बात को समझाने के लिए सबसे अच्छा उदाहरण है चिर-परिचित खटमलो का, जो दीवारो, दरारो, चारपाई के पायो व छेदो मे मरियल से पतले कागज बनकर चुपचाप पडे रहते हैं लेकिन गर्मी आने पर खून चूसने के लिए भूखे भेडियो की तरह टूट पडते हैं। कुछ कीडे जाडे के बुरे मौसम को झेलने के लिए अपनी शिशु अवस्थाओ को मिट्टी, पत्तियो व रेशमी कोयो मे सुरक्षित रखकर बिताते हैं।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी उच्चतर कीट हैं जो मनुष्य की तरह समुदाय या समाज बनाकर रहते हैं। ऐसे कीटो को सामाजिक कीटो का नाम दिया गया है। इनके परिवार मे कई विभिन्न प्रकार के व्यष्टि या सदस्य होते हैं। एक ही परिवार मे अलग-अलग जाति के और अलग-अलग आकार के व्यष्टियो के कारण ये कीट बहुरूपता और श्रम विभाजन का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। प्रत्येक सदस्य के कधो पर एक विशिष्ट कार्य की जिम्मेदारी होती है जिसे वह बडी लगन से पूरा करता है। ऐसे कीटो के उदाहरण हैं—दीमक, मधुमक्खी व चींटी। इन कॉलोनी बनाकर रहने वाले कीटो मे राजा व रानी नामक जनन करने वाले सदस्य और सैनिक व श्रमिक नामक सहायक सदस्य होते हैं। एक कॉलोनी मे एक राजा, एक रानी और असख्य सैनिक व श्रमिक होते हैं। सैनिक और श्रमिक वध्य होते हैं। असली कार्यकर्ता श्रमिक ही होते हैं जो परिवार के भरण-पोषण आदि का सारा काम करते हैं। सैनिक नाम के व्यष्टि जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है परिवार व राजा रानी की रक्षा करते हैं। आकार मे ये श्रमिको से बडे होते हैं।

अण्डो से भरी रहने के कारण रानी बडी व मोटी होती है। परिवार मे कुछ ऐसी मादायें भी विशेष रूप से पाली जाती हैं कि जिन्हें मौके पर शाही भोजन देकर रानी बनाया जा सके। ये यद्यपि क्षुद्र कीट हैं किन्तु मिलकर एकता की भावना से रहते हैं और एक-दूसरे के लिए मरने मिटने को तैयार रहते हैं। पूरे परिवार के हित के लिए यदि एक दो का अहित भी करना पड़े तो ये चूकते नही। सच, इनसे हमें बहुत कुछ सीखना है।

22
नींद की बीमारी

हमारी ये दुनिया बडी विचित्र है और ये विचित्रता है इसमे पाए जाने वाले विचित्र प्राणियो व उनकी हरकतो के कारण। जितने प्राणी उतनी विचित्रताए। अनेक प्राणी तो अनेक रोग। आदमी कहा तक बचे इन खतरनाक प्राणियो से। बडे प्राणी तो बडे मिया और छोटे प्राणी सुभानअल्ला। जतु जितने ही छोटे, करतब उनके उतने ही खोटे। मक्खी, मच्छर की बिरादरी की ही एक मक्खी होती है जिसे 'सी-सी मक्खी' (या मेट्सी फ्लाई) कहते हैं। यह मक्खी एक रोग का कारण है जिसे 'निद्रालु रोग' या नीद की बीमारी (स्लीपिंग सिकनेस) कहते हैं। आकार मे यह मक्खी घरेलू मक्खी से बडी होती है और बडी खतरनाक भी।
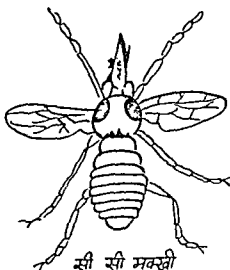
सी-सी मक्खी अधेरे महाद्वीप अफ्रीका में बहुतायत से होती है। अफ्रीका के अधेरे महाद्वीप होने के कई कारण हैं। एक तो, यहा बहुत घने जगल हैं और पौधे सटे-सटे तथा पत्तिया छितराये हुए उगते हैं कि चारो ओर घटाटोप अधेरा छाया रहता है। क्या मजाल कि रोशनी की एक भी किरण अन्दर झाक ले। दूसरे, दलदल, नम मिट्टी और पत्तियो

आदि के सडने गलने के कारण यहा तीखी व जहरीली गैस भरी रहती है जिसके कारण सारा वातावरण जहरीला बना रहता है। तीसरे, अधेरा कहलाये जाने का कारण यह भी है कि विषम परिस्थितिया की वजह से कुछ भाग पूरी तरह से खोजे नही गए हैं क्योकि वहा मानव प्रवेश भी नही कर पाया है।

नम, दलदली तथा सडते गधाते पदार्थों वाली यह अधेरी भूमि जहरीले व रोग फैलाने वाले घातक जतुओ की शरणस्थली है। इनके कारण यहा रोगा का प्रकोप रहता है।

यह सी सी मक्खी मध्य अफ्रीका के अधिकाश भाग को ग्रस्त किए हुए है। इसमे मानव ही नही बल्कि यहा के पशु भी ग्रस्त हैं। जब यह मक्खी काटती है तो रोगी परेशान होकर सुस्त और निर्जीव सा हो जाता है और ऊघते हुए केवल सोते रहने की इच्छा करता है। शरीर मे खून के बहाव के साथ साथ अतत जब मक्खी का विष मस्तिष्क या रीढ रज्जु के तरल पदाथ तक पहुचता है तो उस विषम उत्तेजना के कारण रोगी अपनी चेतना खो बैठता है। और *आखिरकार हाय! यह निद्रालु रोग उसे हमेशा की नीद मे* सुलाकर उसकी जान ही ले डालता है। तभी रोगी को इस रोग से मुक्ति मिल पाती है।

रोग के अय लक्षण है—कपकपी वाला बुखार, दुबलता, खून की कमी, मानसिक उद्विग्नता, पीडा व बेचैनी, नाडी का तेज चलना, लसीका ग्रथियों (लिम्फ ग्लैड) की सूजन आदि। रोग की बिल्कुल शुरू की अवस्था मे ही यानी जब तक विष मस्तिष्क व रीढ-रज्जु तक नही पहुचता तभी यदि उपचार हो जाए तो रोगी का जीवन बचाया जा सकता है *वरना तो रोग असाध्य और घातक बन जाता है। विश्व स्वास्थ्य सगठन* की सूचना के अनुसार प्रति वष 7,000 लोग इसकी लपेट म आते हैं और इनम स करीब 350 मौत के मुह म चले जाते हैं।

लेकिन इस रोग मे दोष केवल सी सी मक्खी का नही है। इसमे एक और सूक्ष्म जतु का भी हाथ है, जो इस मक्खी के शरीर मे पनपता है। यह सूक्ष्म जतु या रोगकारी परजीवी (पैरासाइट) मक्खी क खून में ही बसेरा करता है। इस रोगकारी जतु का *नाम है 'ट्रिपेनोसोम' और इसके कारण इस रोग को 'ट्रिपेनोसोमिएसिस' भी कहते हैं।* ये जतु प्राणियो के 'प्रोटोजोआ' (आदि जतु) समूह मे आते हैं जिनका प्रतिनिधित्व जतु 'अमीबा' है।

ट्रिपेनोसोम आकार में नोकीले, घुघराले, पत्ती जैसे, बहुत छोटे और एक कोशीय होते हैं जो केवल सूक्ष्मदर्शी या खुर्दबीन से ही देखे जा सकते हैं। इनमे अगले सिरे पर एक डोरी-जैसी रचना होती है जिसके आधार से एक झिल्ली निकलती है और जो *पिछले सिरे तक फैली होती है। इस डोरी और झिल्ली की गति से ही इनका चलना* फिरना होता है। इनमे मुह या मलद्वार की तरह का कोई छेद नही होता, शरीर की सतह से ही तरल भोजन सोखा जाता है और सास लेने तथा मल मूत्र त्यागने की क्रियाए भी शरीर की सतह से ही होती हैं।

ये ट्रिपेनोसोम सी सी मक्खी के अलावा अय कीटो, पौधो तथा कुछ रीढ वाले

प्राणियो के शरीर मे भी पाये जाते हैं। लेकिन अपने इन पोषको को ये कोई नुक्सान नही पहुचाते। पोषको पर इनके जहर का कोई असर नही पडता।

अफ्रीका के ऐसे क्षेत्रो मे लगभग हर शिकार वाले जानवर के खून मे ये ट्रिपेनोसोम पाये जाते हैं। इन पशुओ के शरीर म पलकर ही ये मक्खियो द्वारा इधर-उधर ले जाए जाते हैं। जब कोई सी सी मक्खी हिरन सरीखे जगली पशु या किसी रोगी मनुष्य का खून चूसती है तो खून के साथ ये ट्रिपेनोसोम भी उसकी आत मे चले जाते हैं। मक्खी की आंत म पहुचने पर इनमे कई परिवतन होते हैं। आत म पहुचने के तीन चार हफ्ते बाद ये उसकी लार ग्रथिया मे पहुच जाते हैं, जहा उनम और भी कई बदलाव तथा बढोतरी होती है। इस अवस्था म जब मक्खी किसी नीरोग मनुष्य को काटती है तो उस जगह जलन होने लगती है और वहा पर चटन के बराबर गहरे लाल रग का चक्त्ता बन जाता है। इस तरह डक मारते ही ढेर सारे ट्रिपेनोसोम लार के साथ मनुष्य के खून मे पहुच जाते हैं। सी-सी मक्खी के ठडे खून म कुछ अवस्थाए बिताने के बाद मनुष्य के गम खून मे ये बडी तेजी से सख्या मे बढते जाते हैं और खून के बहाव मे इधर उधर बहते चले जाते हैं।

कभी कभी तो मक्खी के काटने के बाद कई हफ्ता क्या कई महीनो तक बुखार नही आता, जब तक कि ये सैकडो की सख्या मे पैदा नही हो जाते और जहर उत्पन्न नही करते। लेकिन फिर बुखार का प्रकोप होने पर रोग के कई लक्षण प्रकट होने लगते हैं और रोगी यातना से बुरी तरह छटपटाने लगता है।

उपाय मक्खी के साथ सफाया जगलो का

ब्रिटिश समाचार-पत्र 'ऑब्जर्वर' के अनुसार सयुक्त राष्ट्र सघ मे खाद्य एव कृषि सगठन के अतगत जो सी सी मक्खी के उन्मूलन का कायक्रम है, उससे जगलो के अस्तित्व को भी खतरा है। यह कायक्रम भी छोटा मोटा नही, बहुत बडी लागत वाला कायक्रम है। अभी तक योरोप और सयुक्त राष्ट्र अमरीका मे पर्यावरणी कारणो से डी० डी० टी० सरीखे तेज कीटनाशी और पीडकनाशी रसायनो के प्रयोग पर प्रतिबन्ध है लेकिन इस कायक्रम से सम्बद्ध फैक्टरियो मे फिर से जान आ जाएगी और वे फिर उपयोग के लिए रसायन उगलने लगेंगी।

इन रसायनो के अन्धाधुन्ध प्रयोग से सी सी मक्खी और उसके अन्दर के रोगकारी ट्रिपेनोसोमो को मारा जाएगा और गोश्त प्रदान करने वाले पशुओ के उत्पादन पर अधिक ध्यान दिया जाएगा ताकि गोश्त बहुतायत से मुहैया किया जा सके। य बात दूसरी है कि यह गोश्त अफ्रीका के निवासियो को उपलब्ध न होकर ससाधित करके जहाजो द्वारा पश्चिमी देशो को भेजा जाएगा। वैसे जरूरत तो अफ्रीकावासियो को है क्योकि उनके आहार म प्रोटीन की बहुत कमी होती है और इस दृष्टि से वे कुपोषण से पीडित रहते हैं। पर यह जरूर है कि वहा की पैसे की कमी तो पूरी हो जाएगी।

एसे कायक्रम के अतगत जगल की भूमि नष्ट होकर चरागाहो मे बदल जाएगी।

लेकिन इससे क्या होगा कि भूमि के टूटने-बहने की सभावना रहेगी और मानसूनी वर्षा पर भी कुप्रभाव पडेगा। इस तरह के प्रयासों और जगलो का सफाया करने से पारिस्थितिक और पर्यावरणी असतुलन की अवस्था से जलवायु सबधी कुप्रभाव भी सामने आएगे। इस प्रकार यह ऐसी अवस्था है जिसमे विवेक के आधार पर और सोच विचार कर ही कदम उठाने होंगे।

23
सर्प

सप या साप शब्द ऐसा है कि उच्चारण करते या सुनते ही लोग एकदम चौंकने लगते हैं। वास्तव में देखा जाए तो प्रत्येक प्राणी भयानक भी है और सीधा भी। साप साधारणतया चूहों, मेढकों, केचुआ, दीमकों आदि को खाने के लिए निकलता है और अपने काय या राह में बाधा पहुचने तथा भूख व कामपीडित होने पर रोष प्रकट करता है। सप यदि बिना छेड़े ही डसता है तो इतिहास प्रसिद्ध हैदरअली को वह सोते समय

साँप
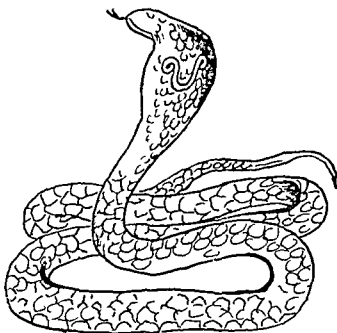
डस लेता किन्तु उल्टे वह उसके सिर पर धूप मे फन से छाया किए रहा और कहते हैं कि इस चमत्कार से आगे चलकर वह चक्रवर्ती राजा हुआ। साप हमारा मित्र है—जब वह फसलो आदि का हानि पहुचाने वाले चूहो का भक्षण करता है और शत्रु—जब वह

हम व हमारे जानवरो पर घातक प्रहार करता है। किन्तु सभी साप विषैले नही होते। कुछ जातिया जैसे कि वामन आदि तो घास पात तथा सडी गली चीजो पर ही जीवित रहती हैं।

वर्गीकरण के अनुसार कशेरुकियो या रीढ वाले प्राणियो मे सर्पों का वर्ग 'रेप्टीलिया' कहलाया क्योकि ये रेंगकर चलने वाले प्राणी हैं, और रेप्टीलिया शब्द लैटिन के 'रेप्टम' शब्द के आधार पर ही बना है, जिसका अर्थ है 'रेंगना'। इसी प्रकार सापो का विभाग 'ओफीडिया' कहलाया क्योकि ग्रीक भाषा मे 'ओफिस' का अर्थ है साप।

धर्मग्रन्थो मे सर्प

हिन्दुओ मे सर्प सबधी त्योहार को नागपचमी कहते हैं। इस दिन मध्याह्न मे नागपूजा होती है। इस सदर्भ मे सापों को दूध पिलाने और पूजा करने से एक कृषक का या द्वारा माता पिता तथा दोनो भाइयो की प्राणरक्षा हुई थी। बेबीलोनिया, यूनान, जापान, अफ्रीका, मिश्र, अमरीका आदि मे भी वरप्राप्ति के लिए इनकी पूजा होती थी। एलेक्जेन्ड्रिया के गिरजाघरो मे तो जिन्दा साप रखा रहता था। हमारे देवो से सर्प का चोली दामन का साथ है। शकर भगवान् का तो अलकार ही सर्प है। विष्णु भगवान क्षीर सागर मे शेषशैया पर ही शयन करते हैं और उनके शीश पर शेषनाग के फन की ही शीतल छाया विराजमान रहती है। यह भी किम्वदन्ती है कि शेषनाग पृथ्वी को भी धारण किए हुए हैं। भगवान श्रीकृष्ण के जन्म के समय सावन के घटाटोप अधेरे की जबदस्त झडी मे साप ने ही अतिवृष्टि से उनकी रक्षा की थी। शमीक ऋषि के बेटे शृगी ने अपने पिता के गले मे मृतक साप देखकर ही राजा परीक्षित को शाप दिया था और इस प्रकार जनमेजय का नागयज्ञ प्रसिद्ध हुआ। तब सर्पों का सर्वनाश होते देख आस्तिक को वह बन्द करवा देना पडा था, जिससे इन्द्रासन के नीचे तक्षक जीवित बचा रह गया था। नागयज्ञ चाहे हुआ हो या न हुआ हो पर आज भी तेलिया, तेलग अथवा तक्षक या टिपलोप्स (वैज्ञानिक नाम) नाम का छोटा साप पाया जाता है, जो करीब चार-छ इच लम्बा होता है। धर्मग्रन्थो के अनुसार सर्प और गरुड का अपनी माताओं कद्रू और विनता से चला आया पुराना वैर भी सर्वविदित है। इसे अगर हम पुरानी कथाओ का बैर न भी मानें तो भी इनकी आपसी दुश्मनी का प्रमाण तो हमे अक्सर मिल ही जाया करता है, क्योकि गरुड तथा अन्य पक्षी जैसे चील, मोर आदि भी साप के कट्टर शत्रु हैं।

विषैले और निर्विष साप

अधिक विषैले तथा भयानक साप कोबरा, क्रैत, वाइपर हैं। शेष धामन (टायस), वामन, अजगर आदि विषहीन होते हैं जिन्हे हाथ मे लेकर कुछ लोग नाग पचमी के दिन हिन्दू स्त्रिया से दूध पिलाने के बहाने पैसे ठगते हैं। 'किंग कोबरा', जो कि बहुत विषैला होता है, वैज्ञानिक भाषा मे 'नाजा हाना' कहलाता है। इसके शरीर की लम्बाई चौदह फुट तक होती है। मिश्र का 'नाजा हाजा' साप हमेशा फन ऊपर

उठाये रखता है कि मानो खुदा की इबादत करता रहता हो और इसी आधार पर उसकी जाति का नाम 'हाजी' पडा । भारत के कोबरा या नाग को 'नाजा नाजा' कहते हैं ।

'क्रैत या बगैरस' भी बहुत विषैला सांप होता है । इसकी कई जातियां होती हैं जिनसे मनुष्य तथा पशु बहुत भयभीत रहते हैं । 'वाइपर' मे 'रमेल का वाइपर' (वाइपर रसलाइ) या दबोइया विषैला होने के साथ ही बडी तरकीब वाला चुस्त सांप है । इसकी गर्दन अंग्रेजी मे लिखे 'एस' (S) की दशा मे रहती है जिसे दूर से ही रस्सी की भांति फेंककर वह एक झटके मे डस लेता है । इसकी लबाई साढे पांच फुट के इद गिद होती है । 'लेकेसिस', फूरसा (एक्सि करीनेटा), ऐनसिस्ट्रोडोन आदि भी विषैले सांपो की श्रेणी मे आते हैं । चटकीले भडकीले रंग वाले सांप प्राय विषैले होते हैं ।

सर्पों की विशेषताए

सांप की लम्बी छरहरी, मुलायम तथा फिसलनदार देह की बनावट चट्टानो, लम्बी घास, दीवारो के छिद्रो तथा बिलो मे घुसने छिपने के अनुकूल है । शरीर के बाहर शल्कों का आवरण पत्थरो, चट्टानो व कांटो म रेंगते समय शरीर की क्षति होने से बचाता है । कशेरुकदण्ड 200 300 कशेरुका या मुंदरीनुमा हड्डियां का बना होता है । इनकी सन्धियां गेंद और प्याले के आकार वाली होती हैं और इसी कारण शरीर मे अधिक लचक रहती है । इनके निचले जबडे की बनावट इस प्रकार होती है कि यह 'क्वाड्रेट' नामक हड्डी के द्वारा करोटि से नीचे लटकता रहता है । इसलिए ये आकार मे बडे जानवरो को भी निगल सकते हैं । विषैले सांपो के ऊपरी जबडे मे सामान्यतया एक जोडी विष ग्रन्थि होती है और ये ग्रन्थियां नहरो द्वारा विषदंता (फग्स) म खुलती हैं । जब सांप किसी जानवर को दांत काटता है तो पेशियो के दबाव से विष ग्रन्थियां दबती हैं और नहरो के द्वारा विष निकलता हुआ घाव तक पहुच जाता है । भिन्न भिन्न सांपो के दांतों के निशान भी भिन्न भिन्न होते हैं ।

सांप के शरीर मे अग्रबाहु तथा पश्चबाहु दोनो नही होती हैं किन्तु उनके चिह्न अवश्य होते हैं । अफ्रीका की कुछ अजगर जातियो मे तो ये अवशेष पजे के रूप में विद्यमान हैं । परन्तु बाहुओ के अभाव मे भी सप बहुत तीव्र गति से चलत हैं । सतानोत्पादन की दृष्टि से सांपो के दो प्रकार है क्योंकि कुछ सांप अण्डे देते हैं और कुछ सीधे बच्चे जनते हैं । इनमे *बाह्य कण नही होते और हमारी तरह बाहर की आवाज एकदम नही* सुन सकते । सांप को चक्षुश्रवा भी कहा गया है जिसका अथ है कि वह आख से देखकर ही टोह पा लेता है और सुनने की कमी पूरी कर लेता है, लेकिन आन्तरिक कण तो इनम होता ही है । जमीन मे जो कम्पन होते हैं वे ध्वनि कम्पन इनकी त्वचा द्वारा ग्रहण किए जाते हैं और तब सचालन की रीति स आन्तरिक कण को पहुचाये जाने पर अन्तत श्रवण तन्त्रिकाओ द्वारा मस्तिष्क को भेज दिए जाते हैं ।

सर्प विष

सांप का विष कुछ नही बस कुछ विशेष कार्बनिक यौगिको का सम्मिश्रण होता

है जिसे हमारे शरीर का रक्त सहन नहीं कर सकता । इसके फलस्वरूप रक्त-नलिकाओं की दीवारें नष्ट हो जाती हैं और शरीर पर घातक प्रभाव पड़ता है । भिन्न भिन्न सापो का विष भी भिन्न भिन्न होता है और इनका प्रभाव भी । कोबरा और क्रैत का विष मुख्यतया मस्तिष्क और सुषुम्ना पर घात करता है जिससे मस्तिष्क के श्वसन सबधी भागो के पक्षाघात स मृत्यु हो जाती है । वाइपर के विष का प्रभाव हृदय तथा रक्त पर होता है और लगातार रक्तस्राव व रक्त के विषमय हो जाने से प्राणी की मृत्यु हो जाती है ।

सांपो से सम्बन्धित बातें

सर्पों से सबधित कई विचित्र बातें हैं । अमेरिका आदि देशो मे फैशनेबल स्त्रिया गरमियो मे 'इलीशिया' नामक साप को, जो करीब एक गज लम्बा होता है, अपने गले मे मफलर की भाति लपेटे रहती हैं। यह रगीन होने के कारण खूबसूरत तो लगता ही है, पर इससे उन्हें गले म शीतलता तथा मीठी गुदगुदी का मजा भी मिलता है । क्रोटेलस (रैटल स्नक) अपनी पूछ के पिछले हिस्से (रैटल) से चटचट की-सी ध्वनि उत्पन्न करता है और इसीलिए कुछ विदशी इसे जार मे अलाम व मनोविनोद के लिए बन्द करके रखते हैं । इनके मास का भी सेवन किया जाता है। न्यूजीलैण्ड ही एकमात्र ऐसा देश है जहा साप बिल्कुल होते ही नही, और मेडगेस्कर मे एक भी विषैला साप नही पाया जाता । इनमे पलकें नही होतीं और बिलो मे घुसते समय आखो म मिट्टी न भर जाए इसलिए आखो पर बाहर स पारदर्शी झिल्ली चढी रहती है जो कि उनक जीवन विशेष का एक अनुकूलता है।

पुरानी कथाओ स ज्ञात होता है कि साप की रस्सी बनाकर समुद्र मथा गया था । कुछ लोगा मे यह विश्वास भी प्रचलित है कि साप की केंचुली मिलने पर और उस घर मे रखने पर भाग्यलक्ष्मी घर म रहती हैं । बिल्ली की तरह सांप का रास्ता काटना भी अपशकुन का प्रतीक माना गया है । गढ़वाल नामक पहाडी प्रदेश म तो यहा तक मानते हैं कि हल चलाते समय यदि साप दीख गया तो इस अपशकुन की शुद्धि के लिए चण्डी पाठ तथा उस बैल की जोडी का दान करना पडता है । सर्प असमतापी प्राणी है । हमारे शरीर की भाति उसके शरीर का तापमान निश्चित नही रहता बल्कि वातावरण के अनुसार बदलता रहता है । इसीलिए साप जाडो मे बाहर नही दिखलाई पडते और बिलो के अन्दर सिकुडे हुए कुण्डली बनाये रहते हैं। यह अवस्था उनकी शीत निष्क्रियता (विन्टर स्लीप) कहलाती है । इस समय कुछ खाना पीना तो दूर रहा ये हिलते-डुलते तक नही और केवल जमा की हुई चरबी पर ही जीवित रहते हैं।

सांपों की उपयोगिता

साप के चम से जूते, चप्पल, पस, बैग, वैनिटी बैग, बैल्ट आदि वस्तुए बनाई

जाती है और सर्पविष रक्तस्राव रोकने तथा अन्य रोगों में औषधि रूप में प्रयुक्त होता है। और यही नहीं सांप का मांस, केंचुली, हड्डियां, रक्त, पित्तरस, वसा आदि अन्य पदार्थ विभिन्न रोगों में औषधियों के रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं। अन्य जानवरों की तरह सांप भी पाले जाते हैं और इनके फार्म होते हैं, जहां विविध प्रयोग किए जाते हैं और विष आदि निकालकर औषधियां बनाई जाती हैं।

24

घोडा जगल से अस्तवल तक

जी हा, उसी घोडे की कहानी है जो कि घुडसवारी व घुडचढी का एकमात्र साधन है, तागे-इक्के में जुतता है, अपनी दुलत्ती के लिए प्रसिद्ध है और शतरज म सवा नही बल्कि पूरी ढाई चाल चलता है। ऐसा भला कौन होगा जिसने इस जीव को न देखा हो? दौडने मे तो खैर यह अपना कोई सानी नही रखता लेकिन शक्ति मे भी यह बेजोड है। तभी तो वैज्ञानिको ने शक्ति की इकाई का नामकरण अश्व शक्ति या हास-पावर इसी के नाम पर किया है। गजब की बात देखिए कि इसे यह बल प्राप्त होता है केवल हरी घास से। प्रकृति का चमत्कार देखिए कि इतना फुर्तीला व शक्तिवान जीव मासाहारी नही बल्कि शाकाहारी है।

पुराने जमाने मे जबकि आधुनिक युग के ये विध्वसी परमाणु बम, हाइड्रोजन बम, प्रक्षेपास्त्र सरीखे परमाणु अस्त्र न थे उस समय केवल बाहुबल अर्थात पैदल, हाथी, ऊट और घोडे की चतुरगिणी सना स ही लडाइया लडी जाती थी। हाथी-ऊट तो सख्या मे कम ही होते थे, बस भरमार रहती थी तो केवल घोडो की क्योकि ये सामरिक चालो मे अन्य प्राणिया की अपेक्षा चुस्त, चालाक व सिद्धहस्त जो होते हैं। स्वामी की स्वामि भक्ति मे भी ये अद्वितीय होते हैं कि मरते मरते उसकी रक्षा करने के लिए ऐसे करतब दिखलाते हैं कि शत्रु को मुह की खानी पडती है। ये बातें इतिहास की कथा-कहानिया हमे अच्छी तरह से बतला देती हैं। उदाहरण के लिए, झासी की रानी के प्रिय घोडे और महाराणा प्रताप के चेतक को भला कोई इतिहास पढ़ने वाला भूल सकता है?

आधुनिक युग मे भी घोडे के हवा से बात करने वाले गुण के कारण मनुष्य ने इसका शोषण किया है क्योकि रस के मैदान म इसे दौडाकर खेल करना व जुआ चलाना भी मनोरजन की एक लत है। टमटम, फिटन व बग्घी राजसी ठाट-बाट के साधन हैं, यह भी सभी जानते हैं। परतु इसके तेज दौडने का कारण यह है कि एक ता इसकी टागो मे एक ही खुर होता है और दूसरे यह कभी भी लेटकर नही सोता बल्कि तीन टागें जमीन पर टिकाये और एक टाग ऊपर आसमान की ओर उठाये खडे खडे ही नीद लेता है। यह एक विचित्र बात जरूर है लेकिन इसका वैज्ञानिक पहलू यह है कि इस तरह टागो की मास पेशिया शिथिल नही पडती और सक्रिय बनी रहती हैं।

बाहरी आकृति के अनुसार अगर इसकी परिभाषा करना चाहें तो साधारण शब्दो मे यही कह सकते हैं कि यह चार भुजाओ का हड्डियो वाला या कशेरुकी प्राणी है, जिसकी झब्बेदार पूछ और टागो मे एक खुर होता है और सीग नही होते। गर्दन पर एक ओर कायदे से सजी और झूलती झालर इसकी सुदरता मे सोने मे सुहागे का काम करती है। प्राणियो के वर्गीकरण के अनुसार भी इसका दरजा कम ऊचा नही है क्योकि यह भी मनुष्य के वग अर्थात् स्तनधारी प्राणियो (मैम्मेलिया) के अतगत और खुरधारी होने क कारण खुरीय प्राणियो की श्रेणी अर्थात् अग्यु लेटा गण मे रखा गया है। घोडे के गण (ऑडर) का नाम 'अग्युलेटा' ग्रीक के 'अग्विस' शब्द के आधार पर पडा है जिसका अथ है खुर या खुरीय अगुली। इन प्राणियो मे प्रत्यक अगुली की कठोर सरचना ही खुर कहलाती है, जो कि अय प्राणिया म नखर व नाखून से साम्य रखती है। अग्युलेटा गण मे चूकि हिप्पोपोटेमस, भेड, बकरी, गाय, मस आदि भी आते हैं और घोडा चूकि इनसे भी भिन्नता रखता है इसलिए इसे विषम पादागुलि खुरीय प्राणियो के अलग विभाग 'पेरिसोडेक्टाइला' मे रखा गया है। घोडे के अय बधु व निकट सबंधी हैं टपीर, गडा, ज़ेबरा और गधा। घोडो म भी मनुष्य की ही तरह अपन बछडो को स्तन से दूध पिलाने का गुण है और इनका प्रसव-काल मनुष्य से बस दो ही महीने

घोडे का विकास

अधिक है यानी ग्यारह महीने का होता है।

यदि हम इसके प्राचीन स्वरूप का अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि इसका स्वरूप आज जैसा कतई नहीं था और बिलकुल ही भिन्न था। इसके आज के और उस पुराने स्वरूप के कद, आकृति, पैर की अंगुलियां व दांतों आदि के विन्यास में जमीन-आसमान का अन्तर है। यह हम इस आधार पर कह सकते हैं कि अन्य स्तनधारियों की अपेक्षा इसके जीवाश्म (फॉसिल) अधिक उपलब्ध हैं और इनसे हमें स्पष्ट प्रमाण मिल जाते हैं। आज के स्वभाव और स्वरूप से इसका पुराना स्वभाव और स्वरूप इतना भिन्न था कि हमारे आदि पूर्वजों को यह अजीब सा लगा क्योंकि यह जंगली तो था ही लेकिन साथ ही छोटे आकार का भी था। इस विषय में बतलाने लायक विशेष बात यह है कि हमारे पाषाण-युग के पूर्वज भोजन के लिए इसका शिकार किया करते थे, जबकि आज हम इसके मित्र हैं और यह हमारा मित्र। प्राचीन अभिलेखों से यह भी पता चलता है कि ईसा से करीब तीन सहस्राब्दि पूर्व से इसको पालतू बनाया जाने लगा था।

घोड़े के निकट संबंधी प्राणी समुदाय की ऐसी प्रवृत्ति रही कि पैर की अंगुलियां या पादांगुलियां शनैः शनैः घटती चली गईं। पहले पांच से चार या तीन और अन्ततः हालत यहां तक पहुंची कि घोड़ा में एक ही रह गई। यह दिखाने के लिए कि इस प्रकार का घटाव किस प्रकार होता चला गया हम यदि मेज पर उस आदि प्राणी की तरह पूरा हाथ रखकर प्रयोग करें तो बात बिलकुल स्पष्ट रूप से समझ में आ जाएगी। ऐसा करने के लिए हम कलाई को धीरे धीरे मेज के ऊपर उठाते चले जाएंगे और हथेली को खुर वाले आदि प्राणी की भांति टिकाये रखेंगे कि मानो वह पैर की अंगुलियों या पादांगुलियों के बल पर चल रहा हो। ऐसा करने से एकदम ऐसी स्थिति आ जाती है कि अंगूठा ऊपर उठता है और मेज को नहीं छूता। अब यदि यह ऊपर उठने वाली उंगली नष्ट भी होती जाये या ह्रासित होती जाये तो हमारा हाथ प्रारंभिक घोड़े या आजकल के टपीर के अगले पैरों की तरह चार अंगुलियों की अवस्था को द्योतित करेगा। हाथ को तनिक और ऊपर उठाने पर छोटी अंगुली या कनिष्ठिका भी मेज को नहीं छुयेगी। इस प्रकार यह तीन अंगुली वाली अवस्था अधिकांश जीवाश्म घोड़ों की विशेषता को द्योतित करेगी जो कि अब वर्तमान समय में गधों में पाई जाती है। इसी तरह हाथ सीधे ऊपर उठाते जाने पर अन्त में ऐसी अवस्था आती है जबकि केवल बीच की अंगुली ही मेज को छूती है और जो आज के घोड़े की विशेषता है। इसे हम अपनी आंखों से आज के घोड़े का निरीक्षण करने पर प्रत्यक्ष देख सकते हैं। इस प्रकार संक्षेप में हाथ के प्रयोग की सहायता से पांच पादांगुलियों वाले घोड़े से आज के एक पादांगुलियों वाले घोड़े के विकास की कहानी स्पष्ट रूप से समझ में आ जाती है। घोड़े में इस एकमात्र सुपरिवर्द्धित पादांगुलि का विद्यमान होना ही उसके तेज दौड़ने का राज है।

घोड़े के जीवाश्म पश्चिमी संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की चट्टानों में पाए गए हैं जहां कि इसकी पीढ़ियां काफी लम्बे समय तक चलती रहीं जब तक कि पृथ्वी की आयु के अनुसार अत्यन्त नूतन कल्प (प्लाइस्टोसीन इपाक) में इनका लोप नहीं हो गया।

बाद मे अभिनव काल मे तो घोडे, गधे व जेबरा केवल योरुप, एशिया और अफ्रीका मे ही पाए गए हैं। लगता है दोनो अमेरिका के जगली घोडो का उदभव भी बाद मे उन घोडो से ही हुआ जो कि आदि अनुसधानकर्त्ताओ और निवासियो की निगाह म नही आये। फिर यह भी पता चलता है कि अमेरिकी आदि घोडे के पूवजा का उदभव भी कही और हुआ और जिन्होने उत्तरी अमेरिका की ओर बाद मे प्रवास किया क्योकि उनके पूर्वजो के जीवाश्म तो मिलते नही, केवल उनके ही जीवाश्म प्राप्त होते हैं।

ऐसे आधारा पर घोडे के मूल उदभव का सदिग्ध स्थान मध्य एशिया ही माना जाता है यद्यपि आरभिक घोडे 'इओहिप्पस' के पूवजो के जीवाश्म यहा नही पाए जा सके हैं। उत्तरी अमेरिका मे काफी समय तक खुशहाल जीवन बिताने के बाद कुछ ने दक्षिणी अमेरिका की ओर भी प्रवास किया। लेकिन ये भी उत्तरी भाग की ही तरह अत्यन्त नूतन (प्लाइस्टोसीन) कल्प मे विलुप्त हो गए। इनके इस लोप का कारण भी एक रहस्य ही है। लेकिन इसकी एक सभावना यह है कि अमेरिका के इन घोडो का सवनाश शायद किसी भयानक रोगकारी परजीवी ने किया।

जीवाश्मा के आधार पर आधुनिक घोडे का विकास जिन प्राणियो से हुआ उनका क्रम 'इओहिप्पस' और 'हाइरैकोथीरियम' (घोडे के आदि पूवजो का वैज्ञानिक नाम) से आरम्भ होता है। प्राप्त प्रमाणो के आधार पर अमेरिका का इओहिप्पस और योरोप का हाइरैकोथीरियम ही घोडे के आदि पूवजो का प्रतिनिधित्व करते हैं। इओहिप्पस का उदय आदि नूतन कल्प (इओसीन इपोक) म हुआ और आश्चय की बात यह है कि घोडे के इस नन्हे आदि पूवज का आकार बस एक लोमडी के बराबर था, जिसकी गदन और बाहु अपेक्षतया छोटी थी। इसके पैर भी छोटे थे और अगले पैरो मे अन्य दो अगुलियो के (अगूठे और छोटी अगुली के) चपतीनुमा अवशेष भी थे। इसी तरह अगले पैरो मे भी पाचवी अगुली नही थी और उसके बदले उसका ह्रास दिखाने वाला प्रतीक या उसका अवशेष। इससे सिद्ध होता है कि इओहिप्पस के पहले भी अवश्य कोई और अवस्था रही होगी जिसमे कि पैरो मे पाच पाच अगुलिया रही हागी और इओहिप्पस उस पूव अवस्था के बाद की कडी है, लेकिन उस पूव अवस्था का कोई भी जीवाश्म उपलब्ध नही है। इओहिप्पस मे अगले और पिछले पैरो की तीसरी अगुली सबसे बडी थी और दूसरी व चौथी छोटी तथा करीब करीब बराबर थी।

इसके बाद की अवस्था थी 'मीसोहिप्पस' की, और इसका उद्भव अल्प-नूतन कल्प (ओलिगोसीन इपॉक) मे हुआ। आकार मे यह एक भेड के बराबर था। इसमे पाचवी अगुली बिल्कुल ही छोटी हो गई थी जिससे कि सब पैर तीन अगुली वाले लगते थे परन्तु तीसरी अगुली अन्य शेष दो से अपेक्षतया काफी बडी थी।

मीसोहिप्पस के बाद की कुछ अन्य अवस्थाओ के बाद दूसरी मुख्य अवस्था—जिसमें कि काफी परिवतन हो गया था—आई 'प्रोटोहिप्पस' की, जो कि पूव अतिनूतन कल्प (प्लायोसीन इपॉक) मे प्रकट हुआ। इसम पैरो की दूसरी और चौथी अगुलिया अनुपयोग नियम के अनुसार अब इतनी छोटी हो गई थी कि वे जमीन पर भी नही पहुच

सकती थी और केवल तीसरी अगुली ही क्रियाशील थी। दांतो मे भी अब परिवर्तन हो गया था और वे पहले की तरह न रहकर आधुनिक घोडे की तरह होने लग गये थे। इस तरह बीच की कुछ अन्य अवस्थाओ के बाद होते-करते उत्तर अति नूतन काल्प (प्लायोसीन इपॉक) में सच्चे घोडे या 'इकुअस' का जन्म भी हो गया। पैरो मे दूसरी और चौथी अगुलियो की पोरियां—जो कि अब व्यर्थ ही थी—नष्ट हो गई और जो क्रियाशील थी वे उपयोग नियम के अनुसार सुस्पष्ट और सुदृढ़ हो गई। अब चारों पैरो में केवल तीसरी अगुली ही विद्यमान थी और दूसरी व चौथी अगुलिया केवल चपतीनुमा अवशेष के रूप में रह गई। दातो मे भी अधिक सुस्पष्टता आती गई जो घास के चरने तथा पैरो की तरह मैदानी वातावरण के अनुकूल हो गए।

इस तरह हम देखते हैं कि घोडे के विकास क्रम मे सक्षेप में जो मुख्य परिवर्तन हुए थो ये हैं—पार्श्व पादागुलिया तो अनुपयोग नियम के अनुसार धीरे धीरे समाप्त होती गई लेकिन बीच की क्रियाशील अगुली उपयोग नियम के अनुसार सुपरिवर्धित होती गई। इसी कारण पैरो की हड्डियो का समेकन होता चला गया जिससे अगले पैरो की बहि प्रकोष्ठिका (रेडियस) और अन्त प्रकोष्ठिका (अलना) तथा पिछले पैरो की प्रजघिका (टिबिया) और बहिर्जंघिका (फिबुला) नाम की हड्डिया परस्पर मिलकर एक हो गई। साथ ही दाता मे परिवर्तन होता गया। चरने के लिए कृन्तक (इनसाइजर) और पीसने-चबाने के लिए चवणक (मोलर) बन गए। और यही नही मस्तिष्क तथा समूचे शरीर के आकार मे भी शनैः शनैः परिवर्धन होता गया। इसी तरह शरीर की, विशेषतया गर्दन और पीठ की आकृति व अनुपात मे भी परिवर्तन होता चला गया। अब घोडे की प्रवृत्ति ऊबड-खाबड, पहाडी व पठारी इलाको को छोडकर मदानी इलाको की ओर हो गई, जो कि स्वाभाविक भी था क्याकि एक अगुली वाले पैरो से (जसे कि ऊची एडी वाले सैडल से ऊची-नीची व ऊबड खाबड सतह पर चलना कठिन ही था। आज के घोडे की अगली टांगो मे केवल एक ही सुपरिवर्धित अगुली होती है किन्तु साथ ही दो हड्डियो के चपतीनुमा अवशेष भी, जो अब उन दो पार्श्व अगुलियो के अवशेष मात्र रहकर उस पुराने स्वरूप की बरबस याद दिला देती हैं। यदि हम इन दो अतिरिक्त अगुलियो को भी आज के आधुनिक घोडे मे देखना चाहें तो घोडे के भ्रूण की अगली और पिछली टागो मे देख सकते हैं। बीच की सुपरिवर्धित अगुली ही कठोर खुर बनकर इसे तेज दौडने के अनुकूल बनाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि घोडे को अपने विकास के लिए कितने दौरो से गुजरना पडा है। तभी वह मनुष्य के शत्रु से मित्र, लोमडी के छोटे आकार से आज के बडे आकार का, धीमे दौडने वाले प्राणी से तेज दौडने वाला और जगल मे भटकने वाले चौपाये से अस्तबल मे बधने वाला चौपाया बन सका।

25

सिंह जगल का लुप्तप्राय नायक

कथाओ, पचतत्र, हितोपदेश तथा जगल के रगमच का नायक सिंह हमारा चिर परिचित प्राणी है। प्राचीन समय से ही चुस्त, चतुर तथा निडर सिंह को वनराज कहा गया है और महाशक्ति का प्रतीक माना गया है। रोबीली आकृति, शान्त व गम्भीर प्रकृति, राजसी गति और सिंह गजना के कारण इसकी तुलना सष्टि की किसी भी चीज से नही की जा सकती और सिंह बस सिंह ही है।
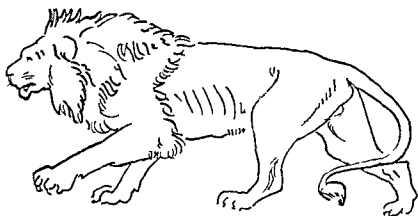
जगल का नायक सिंह

सिंह अफ्रीका और एशिया मे पाया जाता है और एशिया मे दक्षिणी भाग यानी भारत मे। अफ्रीका मे यह खुले व चट्टानी भागो मे बहुतायत से मिलता है। सिंह पहले पश्चिमी और उत्तरी भारत के काफी बडे क्षेत्र तक, नवदा के उत्तर तक, पाए जाते थे लेकिन अब उल्लेखनीय यह है कि ये अब केवल गुजरात मे काठियावाड प्रायद्वीप क गिर क्षेत्र तक बस इनी गिनी सख्या मे ही सीमित रह गए हैं। शिकारियो की हवस, जगलो का सफाया होना, आबादी बढने, कृषि प्रसार आदि के कारण सिंहो की सख्या मे इतनी कमी हो गई है कि इस प्राकृतिक सम्पदा को विलुप्त होने से बचाना और अन्य स्थानो पर पुन स्थापित करना बहुत अनिवाय हो गया।

सिंह को केसरी और बबर शेर भी कहते हैं। सिंह शब्द हिंदी मे सस्कृत से और बबर शेर शब्द फारसी से आकर प्रचलित हो गया है। इसके गले मे अयाल (केसर) की

प्राकृतिक माला होती है, जिसमे वह एकदम पहचाना जा सकता है। अंग्रेजी मे इसे 'लॉयन' और लैटिन मे 'ली ओ' कहते हैं। लैटिन व मध्यकालीन अंग्रेजी के ली ओ व 'ली ओन' से ही आधुनिक अंग्रेजी का 'लॉयन' शब्द बना है। इसका प्राणिवैज्ञानिक नाम **'फेलिस ली ओ'** है जिसमे 'फेलिस' वश का और 'ली ओ' जाति का नाम है। लटिन मे फेलिस का अर्थ बिल्ली होता है, इसीलिए फेलिस बिल्लियो का वश है। अत सभी छोटी बडी बिल्लिया इसी वश मे आती हैं।

सिंह भी एक बडा बिलौटा या महाविडाल है और सिंह की मौसी के रूप मे बिल्ली बहुत पहले से प्रसिद्ध है ही। प्राणिविज्ञान की भाषा में सिंह के कुल को 'फेलिडी' और आम भाषा मे बिल्ली कुल कहा जाता है। प्राणि वर्गीकरण के अनुसार सिंह को कशेरुकियो यानी हड्डी वाले प्राणिया के स्तनियो वाले वर्ग 'मैमेलिया' और 'कार्नीवोरा' यानी मासाहारियो वाले समूह मे रखा गया है।

कुल का सिंहावलोकन

सिंह, बाघ, चीता, तेंदुआ आदि 'बिल्ली कुल' के मौसेरे भाई हैं। इस कुल के प्राणी अगुलिचारी यानी अगुलियो से चलने वाले तथा अधिकाशतया मासाहारी होते हैं। इनके दत वि यास और पाचन प्रक्रम से कुछ जटिलता नही होती। इनमे काटने वाले कृन्तको तथा रदनको सहित कची जैसे दात होते हैं। रदनक नामक दात शिकार पकडने और बेधने के लिए तथा कैंची जैसे दात मास को छोटे छोटे निवालो मे काटने के लिए होते हैं कि वे आसानी से निगले जा सकें। इनका आमाशय या पेट भी एक साधारण थैला होता है जो आगे अधिक कक्षा मे विभाजित नहीं होता, आत अपेक्षतया छोटी और शरीर से करीब तिगुनी होती है। शाकाहारी प्राणियो की तरह नही कि बीस गुना लम्बी हो।

शिकार पकडकर समाप्त कर देने का असली काय दांत ही करते हैं। इस कार्य के लिए इनमे रदनक प्रमुख हैं जो अधिक बढे हुए, शक्तिशाली आगे, की ओर गोलाई लिए हुए टेढे और अन्य दातो से काफी अधिक दूरी पर स्थित होते हैं। जबडो के खुलने पर ये रदनक सीधे आगे की ओर बढे हुए निकल आते हैं तथा बन्द होने पर शिकार के मास पर काफी गहर घुस जाते हैं और अन्दर गुथकर शिकार का मजबूती से पकड मे ले लेते हैं। इन मासाहारी प्राणियों के जबडे छोटे होते हैं, जिनमे शक्तिशाली पेशिया होती हैं। गठे हुए और छोटे होने के कारण ये जबडे इतने अधिक शक्तिशाली होते हैं कि इनके बीच मे पडकर बडी-बडी हड्डिया भी चरमराकर टूट जाती हैं।

मास को छोटे छोटे टुकडो मे काटने का आधिक काय सामने वाले कृन्तक और अधिकाश काय चवणक या चबाने वाले दात करते हैं। इन काटे हुए मास के टुकडों को सिंह चबलाते नही। इनके जबडे दाए-बाए व आगे-पीछे नही चलते बल्कि केवल ऊपर नीचे की दिशा मे ही गति करते हैं। चवणक बहुत कम होते हैं क्योंकि इनमें भोजन पीसन का काम नही होता। प्रौढ होने पर ही असली चवणक आते हैं। अन्य गिरने वाले दूध के

दातो की तरह ये गिरते नही। गिरने वाले दांत हैं—कृन्तक, रदनक और अग्रचर्वणक, जो गिर जाते हैं और बदले जाते हैं। अतिम अग्रचवणक दातो के बाद ही स्थायी चवणक या न्हाढ़ें आती हैं।

कुल की विशेषता यह भी है कि इसके प्राणियो मे अपने मुडे व पैने नखरो को अदर समेटे और ढके रखने की क्षमता होती है। दातो की तरह ये भी शिकार पकडने वाले काय के लिए बडे काम के होते हैं। पेशियो के अनोखे प्रबन्ध से नखरो के सिरे जमीन को छूते नही बल्कि उससे दूर रहते हैं और इसी कारण ये प्राणी बिना कुछ आहट किए चुपचाप मुलायम गद्दियो पर मजे से चलते जाते हैं। यदि यह प्रबन्ध न होता तो रोज-रोज के घिसाव से वे कुन्द हो जाते और फिर किस काम के रहते।

सुनने और सूघने की ज्ञानेन्द्रिया इनमे बहुत अधिक विकसित होती हैं। जत्रुक या हसली की हड्डी अल्पवर्धित तथा पेशियो में दबी रहती है। भुजाए अपेक्षतया छोटी किन्तु सुपरिवर्धित पेशियो वाली होती हैं। शरीर लचीला व फुर्तीला और जीभ मे कडी कलिकाए होती हैं, जिनकी सहायता से ये हड्डियो के मास को रेती की तरह से छील सकते हैं। इनकी आखें दिन और रात दोनो समय अच्छी तरह से देखने के अनुकूल होती हैं, लेकिन मद प्रकाश मे देखने के लिए ये विशेष रूप से अनुकूलित होती हैं। रोशनी में पुतलिया सिकुडकर छोटी और अधेरे मे फैलकर बडी हो जाती हैं कि देखने के लिए अधिक से अधिक रोशनी प्राप्त कर सकें।

इनमे कोई भी कुत्ते भेडिया की तरह यूथचारी या समूह मे चलने वाला नही होता। कभी-कभार ही ये साथ साथ अधिक सख्या म देखे जाते हैं। वैसे बच्चे माता पिता के साथ देखे जा सकते हैं।

सिंह की विशेषता

भारत के सिंह और अफ्रीका के सिंह मे थोडा ही अतर है। अफ्रीकी सिंह भारतीय सिंह से कुछ बडा होता है। अफ्रीकी सिंह के सिर तथा कन्धो वाली अयाल के बाद भारतीय सिंह की अपेक्षा अधिक घने और पूछ के सिरे व कुहनिया के जोड पर कम लम्बे बालो के गुच्छे होते हैं। इसके अतिरिक्त अफ्रीकी सिंह का शरीर कम बालो वाला होता है। कुल के अन्य प्राणियो से यह इस बात मे भिन्न है कि इसका शरीर धब्बाहीन और रग म एकसार पिंगल या मटमैला बादामी (भूरापन लिए हुए लाल) तथा इसकी खोपडी अपेक्षाकृत चपटी होती है। केवल नर मे ही काली या भूरी झबरी अयाल होती है, लेकिन गुच्छेदार पूछ नर और मादा दोनो मे पाई जाती है।

आकार मे सामान्यतया यह नाक से लेकर पूछ शुरू होने वाले स्थान तक छह से साढ़े छह फुट क लगभग होता है। पूछ ढाई फुट लम्बी, ऊचाई साढे तीन फुट के करीब और वजन 200 किलोग्राम के लगभग होता है।

हजारो साल पहले का सिंह जब वनो मे रहता था तो उसके बदन पर भी बाघ और चीते की तरह के धब्बे व धारिया हुआ करती थीं, लेकिन जब यह रेगिस्तान की

सीमाओ, झाडी वाले खुले हुए स्थलों तथा मैदानो के निकट रहने लगा तो ये धब्बे शनै शनै लुप्त होते चले गए। आज के प्रौढ सिंह के शरीर का रग रेगिस्तान की रेत तथा पहाडी वातावरण के मटमैले रग से बिलकुल मिल जाता है। अपने वातावरण के प्रति सिंह का यह अनुकूल और अनुहरण वातावरण की नकल ही है जिससे वह अपने-आपको शत्रुओ तथा शिकार वाले प्राणिया की निगाह से बचा लेते हैं।

शावक या सिंह शिशु पैदा होने पर धब्बेहीन नही होते बल्कि धब्बेदार होते हैं। यह अभिलक्षण प्रदर्शित करता है कि ये तथा सभी महाविडाल धब्बेदार पूवज से ही विकसित हुए हैं। सिंह की खोपडी चपटी होती है, जिसमे बाघ, तेंदुए आदि की तरह सुस्पष्ट गोलाई नही होती। वैसे सिंह की अपेक्षा बाघ अधिक भयानक होता है क्याकि वह धब्बेदार, धारीदार तथा आकार मे भी बडा होता है।

सिंह का शरीर एव गठन बहुत शक्तिशाली होता है, जिस कारण ये अपने शिकार से बडी आसानी से निबट लेते हैं। जबडे और जबडो की पेशिया इतनी मजबूत होती हैं कि ये अपने बराबर वाले शिकार को मुह मे दबाकर बडे आराम से उठाकर ल जा सकते हैं। नख लम्बे व मजबूत होते हैं जिनके कारण शिकार पर इनकी पकड बहुत मजबूत रहती है। पजे भी शक्तिशाली होते हैं और पिछले पैरो की बनावट तथा शरीर के अगले भाग की रचना के कारण य लम्बी और प्रभावशाली उछाल ले सकते हैं।

सिंह मस्ती वाले स्वभाव का प्राणी है लेकिन कुछ-कुछ आलसी भी। यह दिन में आराम और शाम या रात को काम करता है। दिन मे यह चैन से सोया पडा रहता है। गरमियो मे किसी घनी झाडी या अन्य स्थान मे और सरदियो मे खुले मैदानो की सुखद धूप मे। शिकार खेलने के लिए यह सध्या के झुटपुटे मे निकलता है। सामान्यतया यह गाय, भस, भेड बकरी, ऊट, घोडे, हिरन, बारहसिंघा, बनैले सुअर आदि का शिकार करता है। हाथियो पर यह मौके पर ही आक्रमण करता है।

सिंह प्रत्येक ऋतु मे जोडी मे रहते हैं और जितने समय साथ रहते हैं बडे प्यार से रहते हैं। नर को साथी उपलब्ध करने के लिए लडना पडता है और तभी सिंहनी विजेता सिंह को ही पाती है। सिंहो की गर्भ मे रहने की अवधि चार महीने की होती है। सिंहनी द्वारा एक बार मे दो स लेकर छह बच्चे तक दिए जाते हैं, जिनकी आखें आरम्भ से ही खुली होती हैं। जन्म के समय ये छोटी बिल्ली जैसे दीखते हैं। गिर वन सिंह शावक जनवरी और फरवरी के मध्य पैदा होते हैं।

यह तीन से लेकर पाच वष की अवधि मे प्रौढ हो जाता है और सिंहनी ढाई से लेकर तीन वष तक की आयु मे प्रथम शावक उत्पन्न करने वाली। शावक शुरू के पांच छह महीनो तक माता पिता की देखरेख मे रहते हैं, क्योंकि मासाहारी प्राणियो के शावक बिना सहायता व देखरेख के जीवित नहीं रह पाते। इसीलिए इनम मत्यता काफी है और विलोप का भय भी बना हुआ है। सिंहनी अपनी लम्बी या खुरदरी जीभ से बच्चो को चाट-पोछकर साफ रखती है, उनके लिए शिकार करके लाती है और उनका पालन पोषण करती है। सिंहो की आयु औसतन बारह से बीस वष के लगभग होती है।

26

हमारी त्वचा

किताबो की रक्षा के लिए बाहर से जिल्द लगाई जाती है, लेकिन हमारे शरीर की रक्षा के लिए पहले से ही प्राकृतिक जिल्द होती है। रक्षा करने वाली यह जिल्द या आवरण है हमारी त्वचा यानी चमडी। इस चमडी की बनावट सभी रीढधारी प्राणियो म लगभग एक सी होती है। त्वचा मे मुख्य रूप से तीन परतें होती हैं—बाहरी त्वचा, भीतरी त्वचा, या मुख्य त्वचा तथा त्वचा के नीचे वाली गद्दीदार भीतरी परत।

बाहरी त्वचा बहुत पतली और ऊपरी परत है जिसमे छोटी कोशिकाए होती हैं। भीतरी त्वचा या मुख्य त्वचा रेशेदार ऊतको (कोशिकाओ का समूह) की बनी होती है, जिसमे कई महत्त्वपूर्ण रचनाए होती हैं जैसे कि रोम-कूप या बाल वाले छोटे गड्ढे, वसा या चर्बी वाली ग्रथिया, पसीने की ग्रथिया, खून की नलिया, तन्त्रिकाओ के सिरे और रोम पुटको से जुडी नन्ही पेशिया। सबसे भीतरी परत मे वसा या चर्बी रहती है और इसीलिए यह गदगदी यानी गद्दीदार होती है।

बाहरी त्वचा मे दो परतें होती हैं और रोजमर्रा के उपयोग मे सारी घिसाई इसी की होती है और सारा दबाव भी इसी पर पडता है। स्थान विशेष के अनुसार इसकी मोटाई अलग अलग होती है, जैसे कि हथेलियो और तलुआ पर यह सबसे ज्यादा मोटी होती है। बाहरी त्वचा के अन्दर वाले भाग मे 'मेलानिन कोशिकाए' होती हैं। इनमें 'मेलानिन' नामक पदार्थ चमडी गोरी या काली कुछ भी बना देता है। मेलानिन अधिक होता है तो चमडी काली और कम होता है तो चमडी गोरी होती है।

त्वचा चूकि हमारी स्पर्श से सबधित ज्ञानेन्द्रिय हैं इसलिए इसमे स्पर्श-कोशिकाओ के समूह होते हैं। ये समस्त कोशिकाए 'तन्त्रिकाओ' यानी प्रत्यक्ष अनुभव करने वाली धागे जैसी रचनाओ द्वारा मस्तिष्क से जुडी होती है। होठो, अगुलियो, हथेलियो आदि की चमडी मे ये स्पर्श कोशिकाए अधिक सख्या मे होती हैं, इसलिए इन अगो द्वारा हम गर्मी, सर्दी, दबाव और छुअन आदि का एकदम पता चल जाता है।

त्वचा मे पसीने की ग्रथिया होती हैं। इनकी नलिया लम्बी तथा लहरियादार और नीचे का ग्रथिमय भाग बहुत अधिक मुडा व घुमावदार होता है। इस भाग मे बारीक रुधिर केशिकाओ का जाल होता है और यह जाल शरीर मे बहने वाले खून में

से पसीना बाहर निकालने मे मदद करता है। कहते हैं हमारे शरीर मे लगभग तीन लाख पसीने की ग्रथिया होती हैं।

बाल वाले अन्य प्राणियो मे भी पसीने की ग्रथिया होती हैं। ये उनके सारे शरीर मे नहीं होती। कुत्ते, बिल्ली, चूहे आदि मे ये केवल पजों की गद्दियो मे मिलती हैं। गाय मे ये ऊपर के होंठ मे और हिरन मे ये पूछ के आधार पर होती हैं।

हमारी चमडी मे जगह जगह बाल होते हैं जिनकी जडें चम (डर्मिस) के निचले हिस्से तक फैली होती हैं। प्रत्येक बाल की जड से सटी हुई तेल ग्रथिया होती हैं जिनसे तेल निकलता है। इस तेल का काम है चमडी और बालो को मुलायम व चिकना बनाए रखना ताकि उन पर पानी का जल्दी असर न पड सके।

पसीने मे क्या होता है ?

पसीने मे पानी, यूरिया, नमक, पोटेशियम क्लोराइड तथा वसाअम्ल (फैटी एसिड) होते हैं। इनमे करीब 98 प्रतिशत पानी और बाकी 2 प्रतिशत ठोस पदार्थ होते हैं। पसीने की ग्रथिया त्वचा मे भीतर स्थित होती हैं और त्वचा की सतह पर खुलती हैं। ये ग्रथिया पसीना तो उत्पन्न करती हैं पर उसको जमा नही रखती हैं। पसीने की ग्रथियो का नियत्रण मस्तिष्क के उस केन्द्र द्वारा होता है जो शरीर के तापमान के नियमन का जिम्मेदार होता है। शरीर के खुद के तापमान की अपेक्षा जब बाहर का तापमान अधिक हो जाता है तो ये ग्रथिया पसीना ज्यादा उत्पन्न करने लगती हैं और त्वचा की सतह से इसे वाष्पित करके या उडाकर शरीर को ठडा रखती है।

त्वचा या चमडी के कार्य

काम के अनुसार अलग-अलग भागों मे चमडी की मोटाई और बनावट भिन्न भिन्न होती है। हथेलियो और तलुओ मे चमडी मोटी और जोडो के इद गिद पतली व ढीली होती है। चमडी के द्वारा ही हमार शरीर और वातावरण के बीच सम्पक बना रहता है।

त्वचा हमारे शरीर का रक्षात्मक आवरण है। यह रोगकारी जीवाणुओं और अन्य हानिकारक पदार्थों को शरीर मे प्रवेश नही करने देती। स्पश, दद, सर्दी और गर्मी को महसूस करने के लिए यह एक ज्ञानेंद्रिय है क्योकि इसमे विभिन्न उद्दीपनो की अनुभूति करने वाली तन्त्रिकाओ (नव) के सिरे बिखरे होते हैं। इसमे स्थित पसीने की ग्रथिया मल विसजन मे मदद देती हैं और शरीर का तापमान एक सा बनाए रखती हैं। त्वचा वाले नाखून, खुर, सीग आदि शरीर की रक्षा मे सहायता पहुचाते हैं।

त्वचा की बाहरी सतह वाले बाल एक तरह से कम्बल बनाए रखते हैं जो शरीर की गरमी को बाहर नही निकलने देते। चर्बी की परत शरीर को पुष्ट बनाकर सुदरता प्रदान करती है तथा शरीर की गर्मी का बाहर नही निकलने देती। गरमियो मे खून की नलियो के फैलाव व अधिक पसीना उत्पन्न करने तथा जाडों मे खून की नलियो के सिकु-

डने व पसीना कम से कम उत्पन्न करने से यह ऊष्मा व तापमान का नियमन करती है। त्वचा अभिव्यक्ति का अंग भी है। लाल पडने, पीले पडने, पसीने पसीने हो जाने पर यह शम, गुस्से, डर आदि मनोभावों को भी प्रकट करती है। गोरी व चिकनी चमडी आकर्षण की चीज है, यह भी सभी जानते हैं।

लेकिन मौसम के अनुसार त्वचा के कुछ सामान्य रोग भी होते हैं, जिनसे बचे रहने के लिए हमे त्वचा की देखभाल अच्छी तरह करनी चाहिए और नहा धोकर तथा साफ रहकर इसे भी स्वच्छ व नीरोग बनाए रखना चाहिए।

27

हड्डियो का ढाचा जीवन का साचा

मनुष्य और प्राणी हाड मास के पुतले हैं। मनुष्य को तो करीब 208 छोटी-बडी हड्डियो का पुतला कहना चाहिए, वैसे मौके पर उसे हम डेढ हड्डी का जानवर भले ही कह लें। हडिडयो के विशिष्ट विन्यास से ही प्राणी विशेष बनता है या कहें कि हडिडया ही प्राणी को निश्चित आकार व स्वरूप प्रदान करती हैं तो अधिक उपयुक्त होगा। जरा कल्पना कीजिए कि हडिडया न होती तो क्या होता ? विकास के फलस्वरूप इतने विक सित उच्चतर प्राणी अस्तित्व मे कहा आ पाते ? बिना हड्डियो के हम लोग घोघे, कुचुमे व स्पज आदि की तरह बस लुज पुज पडे रहते और सीधे खडे भी नहीं हो पाते। आदमी की सारी काया माया, चहल-पहल, धुकर पुकर इस हडिडया की ठठरी और करमो की गठरी के ही कारण तो है।

शायद कुत्ते ने ही हड्डी के दशन को सबस अधिक समझा, परखा और अपनाया है। तभी कुत्ते और हड्डी की कहावत बनी है कि कुत्ते को क्या चाहिए—हड्डी। हड्डी चूस चुकने क बाद उस पर कुछ न रहने के बाद भी कुत्ता उसे चूसे ही जाता है। इस प्रकार हड्डी क माध्यम से अपने लार का स्वाद लेता रहता है और उसे हड्डी का स्वाद समझकर चूस जाता है। सम्भवतया कुत्ते को देखकर ही मनुष्य ने भी हड्डी चूसने की कला सीखी हागी।

प्राणी शरीर का सबस कठोर या कडा भाग हड्डी ही है। वसे दिल भी कठोर या पत्थर हो सकता है परन्तु गूढ रूप म, भौतिक रूप मे नही। ऐस दिल वाले को पत्थर का सनम ही कहा जायेगा। किसी का मान मजन करना हो अथवा किसी के प्रति गहरा आक्रोश या क्रोध प्रकट करना हो तो लोग यही कहते हैं कि 'हडिडया तोड दी जाएगी—हड्डी पसली एक कर दी जाएगी—हडिडया चबा दी जाएगी' आदि-आदि। धर्मग्रंथा मे भी एक अतकथा आती है। जब असुरा को पराजित करना सुरो क लिए कठिन हो गया था तो उन्हे यह सुझाया गया था कि इन्द्र किसी तपस्वी की हड्डियो के वज्र का उपयोग करें तभी राक्षसो का नाश हो सकता है। लेकिन यह हडिडयो का वज्र आता कहां से ? परन्तु इसका भी समाधान था और वह पूरा हुआ महर्षि दधीचि की हडिडयो से। दधीचि ने गाय से देह चटवाकर अपनी हड्डियां देवताओ को सौंप दी और तब बना था इन्द्र का

वज्र जिससे असुरों का संहार किया जा सका था। इस सन्दर्भ में राष्ट्रकवि स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त की कविता की ये पंक्तियां उद्धृत करना युक्तिसंगत होगा

'क्षुधार्थ रतिदेव ने किया करस्थ थाल भी।
तथा दधीचि ने दिया पराथ अस्थिजाल भी।।'

गांवों, विशेषतया गढ़वाल के गांवों में, प्रचलित है कि इन्द्र के इस वज्र की गरज आज भी बादल की कड़क के रूप में सुनाई देती है और तड़ित प्रकोप के रूप में इसका विकराल रूप देखा जा सकता है। वज्र पड़ना, इन्द्रदेव का प्रकोप और उसका उच्चारण तक अपशकुन माना जाता है।

हड्डी का गठन विज्ञान का मनन

अस्थि या हड्डी एक कंकालीय पदार्थ है, जो कठोर कोशिकाओं का समुच्चय होता है। हड्डी का यह कड़ापन कुछ जटिल लवणों के कारण होता है और इनका प्रतिशत 60 के अनुपात में होना है। पुराने लोग भी जानते थे कि हड्डियां लवण या विशेष प्रकार के नमकों से बनती हैं तभी तो लोग ताने देकर कहा करते थे कि, 'हमारा नमक खाकर ही तुम्हारी हड्डियां बनी हैं और हमीं से दगाबाजी।' ये लवण मुख्यतया कैल्शियम कार्बोनेट, कैल्शियम फॉस्फेट आदि होते हैं अर्थात् चूने व फॉस्फोरस के लवण। इनकी कोशिकाओं या इकाई रचनाओं में कुछ विशेष रेशे भी होते हैं जिन्हें 'कोलोजन' तन्तु कहते हैं। हड्डियों में जो तनन-सामर्थ्य होती है वह इन्हीं रेशों के कारण होती है। ये छोटी छोटी कोशिकाएं परस्पर एक दूसरे के सम्पर्क में रहती हैं और यह सम्पर्क बनाया जाता है इधर उधर बिखरी बारीक नलियों द्वारा। इन्हीं नलियों के भीतर खाना पहुंचाने और मल मूत्र बाहर निकालने वाली रक्त-नलिकायें तथा मस्तिष्क को विभिन्न बातों का बोध कराने वाली तन्त्रिकायें भी छितरी होती हैं।

प्राणि शरीर में हड्डी से कम कड़ा अर्थात मुलायम और पारदर्शी पदार्थ भी होता है जिसे उपास्थि या कार्टिलेज कहते हैं। जब बच्चा नन्हा या भ्रूण की अवस्था में होता है तो उसका पूरा कंकाल इसी उपास्थि का बना होता है और धीरे धीरे यह उपास्थि हड्डी में बदलती जाती है। बच्चे के सिर के कंकाल या खोपड़ी के बीच में ऊपरी सतह मुलायम और हाथ से छूने पर पिचकने वाली होती है। लेकिन धीरे धीरे यह भाग हड्डी में बदलता जाता है और सख्त हो जाता है। इसीलिए शिशु के इस भाग को जोर से नहीं दबाते हैं। किन्तु प्रौढ़ावस्था में भी उपास्थि या कार्टिलेज वाले अंग बखूबी देखे जा सकते हैं और सबसे सुपरिचित उपास्थिमय अंग हैं गुरुजी द्वारा मार में पकड़ा या मरोड़ा जाने वाला कान का हिस्सा या कर्णपल्लव और बड़ों द्वारा प्यार में भींचा या पकड़ा जाने वाला नाक का अगला हिस्सा।

इस प्रकार हड्डी कशेरुकियों यानी रीढ़ की हड्डी वाले उच्च प्राणियों की विशेषता है। अकशेरुकियों जैसे स्पंज, केंचुआ, मक्खी, घोंघा आदि बेचारों को हड्डी नसीब ही नहीं। मछलियां, मेढक, छिपकलियां, सांप, पक्षी तथा बन्दर, मानव, गधा

आदि प्राणी ही हड्डी वाले प्राणी अर्थात् कशेरुकी है, क्योकि इनकी रीढ या कशेरुकदड छोटी छोटी मदरीनुमा हड्डियो या कशेरुको का बना होता है। खाल और मासपेशिया के नीचे सारा ढाचा अस्थि-ककाल ही होता है। हृदय, फेफडा, यकृत आदि को बाहर स सुरक्षित रखने वाली हड्डी व पसलिया सचमुच एक काया का पिंजरा बना लेती हैं। इसीलिए इस ककाल को अस्थि पजर भी कहा गया है। इसी काया के पिंजरे मे सास का पछी यानी फेफडो और दिल का पछी लयबद्ध धौकनी व पम्प के रूप मे परम आज्ञाकारी सेवक की तरह दिन-रात बिना रुके निरन्तर धडकता रहता है।

हड्डियो के उपयोग और उद्योग

हड्डिया भौतिक व जीवरासायनिक दृष्टि से तो प्राणियो के लिए उपयोगी हैं ही, पर आज मानव के अधुनातन उद्योगो के लिए भी परम महत्त्व की वस्तुए हैं। सबसे पहले तो हड्डिया प्राणी को सुनिश्चित आकार व स्वरूप प्रदान करती हैं। हड्डियो का ढाचा शरीर के कोमल अगो की रक्षा करता है, जस कि खोपडी व रीढ की हड्डी क्रमश मस्तिष्क व मेरुरज्जु या सुषुम्ना की, और पसलिया हृदय, यकृत, फेफडा आदि की। इन हड्डियो मे ही मासपेशिया जड जमाकर अगो के तबू तान सकती हैं और तभी विभिन्न अग हिल-डुल व प्राणी चल फिर सकते हैं। गगनचुम्बी इमारत बनाने के लिए जसे भीतरी ढाचे या लोहे की छड आदि की उपस्थिति आवश्यक है, उसी तरह बड व ऊचे शरीर के लिए हड्डिया का होना बहुत जरूरी है। अत केवल हड्डी के ढाचे द्वारा ही बडे जानवर जैसे कि हाथी, ह्वेल, गडा, जिराफ, डाइनोसौर आदि प्राणी विशाल शरीर धारण कर सके हैं। यह भी सवविदित है कि कमर की हड्डी यानी रीढ़ की हड्डी टूटने पर आदमी सीधा खडा नही हो सकता। अगर हम बिना हड्डी के जानवरो की सुची और शरीर पर विचार करें तो एकदम पता चल जायेगा कि सचमुच कोई भी अकशेरुकी या हड्डीहीन जानवर ऐसा नही है जो विशालकाय हो। इन सब बाता का निचोड यही है कि बिना हड्डो के बडा शरीर सम्भव नहीं है। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण काय हड्डियो का यह है कि मनुष्य और अन्य स्तनधारी प्राणिओ मे लम्बी हड्डिया क भीतर खोखल स्थान के गूदे या मज्जा म शरीर की महत्त्वपूर्ण लाल रुधिर कणिकायें उत्पन्न होती हैं। हड्डियो के भीतर के इसी गूद या जम रक्त का गोश्त के शौकीन लोग ठोक-बजाकर बाहर निकालकर हड्डी-बोटी का स्वाद लेते हैं। हड्डियो की महत्ता के कारण ही टूटने या सडने गलने पर इनको बदलने के बारे मे सोच विचार किया गया और मानव सचमुच दूसरे आदमी की हड्डी या नकली हड्डी लगान की जुगत मे कामयाब हो गया। आधुनिक विमान ने नकल करक 'सीरोसियम' नामक पदार्थ की बनी हड्डियो का प्रचलन भी शुरू कर दिया।

सास का पछी उडन के बाद यानी मरणोपरान्त भी इनका परोपकार खत्म नहीं होता। अनेक चीजो के शोधन या साफ करने वाली रासायनिक क्रियाओ म हड्डियो की जरूरत होती है। खाद के रूप म हड्डी के चूण का प्रयोग बहुत पहले स होता रहा है

क्याकि उसम फॉसफोरसयुक्त खाद जो होती है। हड्डिया से ही फॉसफोरस प्राप्त किया जाता है जो फॉसफोरिक एसिड, फॉसफोरस ऑक्साइड, कैल्शियम सुपरफास्फेट आदि अनेक उद्योग उपयोगी पदार्थों के निर्माण के लिए आवश्यक है। पहाडा मे गडी व इधर-उधर सडी गली हड्डियो से हवा के झोका से रात म जब फॉसफोरस उडता है तो आग की लपटें उडती और चलती फिरती नजर आती हैं। दूर से भोले ग्रामीण लोग इस मशाल या 'राके' को भूत समझ बैठते हैं। इस प्रकार हड्डियों का यह रासायनिक और जादुई खेल गाव वालो को डराता भी है।

पुराने समय से आये अधविश्वासा व प्रचलित धारणाओ के साथ भी हड्डियो का नाम जुडा हुआ है। कहते हैं छोटे बच्चे क गले मे मछली, बाघ, शेर, जगली सूअर आदि जानवरा के नाखून, दातो व हडिडयो की माला के रूप मे बाधने पर वे बुरी निगाह, भूत प्रेता, चुडैल तथा जादू टोने आदि के भय से बचे रहते हैं। बिजली के खम्भा, पावर हाउस, बिजली के स्थानों, जहर आदि की बोतलो तथा खतरे वाले स्थाना पर हड्डिया को ही खतरे का निशान रखा गया है, क्याकि बीच मे खोपडी की हड्डी और दोना ओर से क्रासरूप म दो हड्डिया खतरे का प्रतीक मानी गई हैं। मनुष्य के मरने क बाद हिदुआ मे कपालक्रिया के पश्चात् ही अन्त्येष्टि कर्म पूरा हुआ माना जाता है। इसम बास के लट्ठे से खोपडी को तोडा जाता है, क्योंकि कहा जाता है कि यही आत्मा निवास करती है और उसे शरीर से मुक्त कर दिया जाता है। कही कही आदिम जातिया द्वारा मृत पति की खोपडी को गले म लटकाए रखने की भी प्रथा है। अस्थिया और भस्मिया गगा म प्रवाहित करने के बाद ही आदमी तर गया माना जाता है।

जीवविज्ञान पढने वाले विद्यार्थियों के लिए ककाल परम महत्त्व की चीज है क्याकि इसी की सहायता से प्राणी के बाहरी व आतरिक स्वरूप का अध्ययन किया जा सकता है। उधर हड्डिया व इनके जीवाश्म या फॉसिल (पथराई अवस्था) हम प्रागैतिहासिक काल के प्राणिया का बोध कराते हैं। सौदर्यबोध की दृष्टि से भी हड्डिया उपयोगी होती हैं। उदाहरण के लिए, हाथी दात के बने महिलाआ के आभूषण इस बात के साक्षी हैं, जिनम चूडिया, नैक्लेस, ब्रोच, कणफूल, क्लिप, बु दे आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त काटने का चाकू, तलवार की मूठ, कलम तथा अय सजावट की वस्तुए भी बनाई जाती हैं। यह सभी जानते हैं कि हाथीदात कितना महगा होता है। तभी तो कहा जाता है कि जिन्दा हाथी लाख का और मर गया तो सवा लाख का।

देशी हड्डिया और विलायती उद्योग

आधुनिक उद्योगो और मानव की खास जरूरत की चीजा के लिए ये हड्डिया कच्चे माल का काम करती हैं और इनके अभाव म वे चीजें बनाई ही नही जा सकतीं। हड्डिया को पूरन-पीसन और फिर रासायनिक क्रियाआ के फलस्वरूप उनसे 'जिलेटिन' नामक एक पदार्थ प्राप्त किया जाता है जो अय उपयोगी पदार्थों के लिए आधार वस्तु है। इस जिलेटिन म से अनेक उपयोगी वस्तुए, जैसे 'मीट पाइ, डब्बाबन्द गोश्त, जेली,

टेबल क्रीम, विशेष आइसक्रीम, चोकलेट, फोटो फिल्म, दवाई के कैप्सूल, छपाई का सामान, बक नोट-पेपर आदि चीजें तैयार की जाती हैं। केवल इसीलिए ब्रिटेन के लिए भारत से हडिडयो का निर्यात होता है और इस प्रकार ये हड्डिया हमारे लिए विदशी मुद्रा कमाती हैं।

ब्रिटेन म वेल्स की एक फम की हड्डी कूटने-पीसने वाली अनेक मिलें भारत और पाकिस्तान मे ह। भारत मे ये मिलें जोधपुर (राजस्थान) और जबलपुर (मध्य प्रदेश) मे स्थित है। हड्डी स प्राप्त होने वाला जिलेटिन नामक पदार्थ बहुमुखी उद्योग की आधार वस्तु है, क्याकि इसी पर ब्रिटेन के अन्य उद्योगो का बडा जाल आधारित है।

245/67

आदमी की पूछ

कलकत्ता के रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान अस्पताल मे कुछ साल पहले पूछ वाले लडके की पदाइश से खलबली मच गई थी। मचनी भी जरूरी थी। प्रकृति की अनहोनी बात जो थी। पछ वाला यह बच्चा वैसे ठीक रहा, पर डॉक्टर लोग इसमे काफी व्यस्त रहे।

अवशेष के रूप मे पूछ

हालाकि ठीक से नही नापी गई तो भी कहा जाता था कि यह लगभग पाच सेंटीमीटर लम्बी थी। जन्म पर बच्चे की लम्बाई 51 सेंटीमीटर और वजन 2 8 किलोग्राम था।

बच्चे की इस अपसामान्यता से परिवार व रिश्तेदार काफी परेशान रहे। मा को तो यह अपसामान्यता बताई ही नही गई। मा का यह दूसरा बच्चा था। बच्चे को ऑपरेशन स ठीक करने के बाद ही घर ले जाया गया। डॉक्टरो को ऑपरेशन से पहले कई परीक्षण करने पडे।

वसे तीन-तीन इच लम्बी पूछ वाले नमूने भी देखे गए हैं। एक मामले म तो पूछ

नौ इंच तक लम्बी बढ़ गई, जबकि बच्चा बारह साल का हो गया था। ऐसे मामले अभी तक पश्चिमी देशों में ही देखने सुनने को मिलते थे, लेकिन यह सिलसिला अब यहां भी शुरू हो गया है। लोक कथाओं में भले ही ऐसे कथानक खूब सुनने को मिलते रहे थे।

इसी मुद्दे के बहाने मानव की विकास-कथा पर एक सरसरी निगाह दौड़ा ली जाए। अपसामान्य रूप से पूंछ का बनना कोई असम्भव बात नहीं है, ऐसी कुरचना हो सकती है। शिशु अवस्था में पूर्वज के अंग व लक्षण मौजूद होते हैं। मेंढकों की उत्पत्ति मछलियों से हुई है। इसका एक प्रमाण यह है कि मेंढक का बच्चा या बेंगची (टैडपोल) मछली की तरह गलफड़े और लम्बी पूंछ वाला होता है लेकिन प्रौढ़ मेंढक में गलफड़े और पूंछ बिलकुल गायब। इसी तरह हर बच्चे में गर्भ में 'भ्रूणीय पूंछ' होती है, जो गर्भधारण के चौथे सप्ताह में उग आती है और पांचवें हफ्ते के अन्त तक पूरी लम्बाई अख्तियार कर लेती है। अधिकांशत यह पूंछ फिर घटते घटते जन्म तक अस्पष्ट हो जाती है और परिवर्धित पुट्ठों के कारण छिप जाती है। इस तरह केवल कभी-कभार ही यह भ्रूणीय पूंछ बढ़कर सुस्पष्ट होती है।

पूंछ और मानव का विकास

यह तो सर्वविदित है कि मानव का विकास पूंछ आदि वाले मानवाभ या उच्चतर कपियों (ऐंथ्रोपोइड एप) से हुआ है। मानव के विकास का एक प्रमाण या कारण यह पूंछ या इसका सूक्ष्म रूप यानी घटा बचा-खुचा अंश अभी भी गवाही देता है कि मानव का विकास एक लम्बे अंतराल के बाद उन पूंछ वाले उच्चतर कपियों से ही हुआ है। अतीत का कोई सक्रिय और महत्त्वपूर्ण अंग बाद में प्राणी में एक अवशेषी या बचे खुचे छोटे अंग के रूप में रह जाता है। पूर्वज में तो इस अंग का कोई न कोई काम होता है पर बाद में यह किसी काम का नहीं रहता।

प्राणियों में इस तरह के अवशेषी अंगों के अनेक उदाहरण हैं। न्यूजीलैण्ड के 'किवी' पक्षी में उसके डैने बहुत अल्पवर्धित अवस्था में होते हैं, इसीलिए वह उड़ नहीं पाता। वे उड़ने के काम के जो नहीं होते। घोड़े के पैरों में पृथक् पतली हड्डी (स्प्लिन्ट बोन), पक्षियों के डैनों में सकेतिका अंगुली, बिलकारी प्राणियों में अक्रिय आंखें, सांप व अजगर में श्रोणि व बाहुओं के अवशेष, स्फीनोडोन नामक छिपकली में मध्य नेत्र (पेराइटल आइ) आदि ऐसे ही अवशेषी अंगों के उदाहरण हैं।

मानव के शरीर में भी कई अवशेषी अंग हैं, जैसे कि—आंख में निमेषक पटल (निक्टिटेटिंग मेम्ब्रेन), आंत के अंत में कृमिरूप परिशेषिका (वर्मीफॉर्म अपेंडिक्स), अनुत्रिक या पूंछ के कशेरुक (कौक्सिक्स) यानी पूंछ वाली छल्लेदार हड्डियां व पूंछ की पेशियां, कान के पल्ले की अक्रिय पेशियां आदि।

कई अवशेषी अंग प्रौढ़ की अपेक्षा भ्रूण में अधिक बढ़े हुए होते हैं। ह्वेल के भ्रूण में बाहुओं के दोनों जोड़े होते हैं लेकिन प्रौढ़ में पिछला जोड़ा गायब हो जाता है। इसी तरह ह्वेल के भ्रूण में बहुत बाल होते हैं जो प्रौढ़ावस्था में लुप्त हो जाते हैं। ये अवशेषी

अग उनको धारण करने वाले प्राणी के किसी काम मे नही होते लेकिन शरीर मे उनका बने रहना यह दशाता है कि वे पुराने पुरखो से वशागत हुए हैं तथा उस समय ये काम के थे, और इन्ही से विकास क्रम पर भी काफी प्रकाश पडता है कि किस रास्ते और किन चरणा से जविक विकास हुआ है।

अवशेषी अग 'अपेंडिक्स' का मानव मे अब कोई काम नही है, बल्कि अब तो इसम भोजन का कोई कण फस जाए और सडता जाय तो जीना हराम हो जाता है और 'अपेन्डीमाइटिस' की इस अवस्था का उपचार है ऑपरेशन स उसे निकाल बाहर फेंकना। कहते हैं पहले घास खाने वाली प्राचीन अवस्था मे यह उसे पचाने का काम करता था।

पुछल्ला

अब फिर पुछल्ले पर आ जाए। मानव के कशेरुक-दड यानी रीढ की हड्डी के निचल सिरे पर अनुत्रिक या कॉक्सिक्स नामक हड्डी होती है, जो हमारी पुरानी लम्बी पूछ का बचा खुचा ठूठ व प्रतीक है। कभी कभार इसमे पेशियो के अवशेषी अश भी पाए जाते हैं और तभी आदमी की पूछ वाला करिश्मा सामने आ जाता है। इन पेशियो से ही दुम हिलाई जाती है। मानव तथा उनके अन्य निकट सबधी प्राणियो मे यह पूछ वाला अवशेषी भाग चार छोटी छल्लेदार हड्डियो (पुच्छ कशेरुक) का बना होता है जो आपस म जुडी होती हैं और अभी भी हमे अपने प्राचीन दुमदार पुरखे का स्मरण करा देती हैं।

29

पोषण और स्वास्थ्य

आज क्या आदम और हौवा के समय से ही सारी कमाई-धमाई इस पेट की पूजा यानी शरीर के पोषण और उपभोग के लिए ही होती आ रही है। जान है तो जहान है, खाना है तभी सारा ताना बाना है। भोजन वह पदार्थ है जिससे शरीर के हर अंग या ऊतक, कोशिका और कण की भूख, प्यास व जरूरतें पूरी होती हैं।

केवल चटपटे और चटकारे वाले भोजन और उसके स्वाद से ही पूरा पोषण नहीं हो सकता जब तक कि उसमे भोजन के सभी परम आवश्यक घटक संतुलित मात्रा
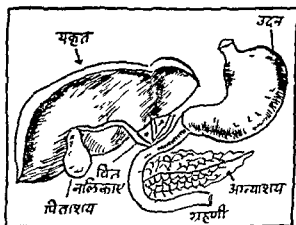
मानव का पाचन तंत्र

मे न हो। भोजन को गले मे उतारना ही काफी नही है बल्कि हर अंग व इकाई अर्थात कोशिका की आवश्यकता और प्रकार के अनुसार उसका खरा उतरना जरूरी है। तभी भोजन की सार्थकता है और तभी पोषण सही मायने मे पूरा हुआ माना जा सकता है।

भोजन द्वारा पोषण के ही बल पर इतनी बडी काया जीवित रहती, चलती फिरती, क्रियाकलाप करती, सोचती विचारती और प्रकृति पर विजय का दम्भ भरती है। भोजन व पोषण के अनुरूप ही शरीर बनता है और उसी के अनुसार मस्तिष्क भी।

जीवन को उजागर करने के लिए व मस्तिष्क को मेधावी बनाने के लिए भोजन मे विशेष घटक या प्रोटीन बहुत आवश्यक हैं। आज के युग मे यह सब अच्छी तरह से जानते हैं कि कुशाग्र बुद्धि और उन्नत मस्तिष्क वाले ही पृथ्वी, प्रकृति व अन्तरिक्ष पर नियत्रण की प्रभुता रख सकते हैं। यह सब मस्तिष्क और बुद्धि का ही खेल है। शरीर तो निमित्त मात्र है, बस मस्तिष्क का बक्सा और मशीन।

आज का सच

पृथ्वी की आबादी खाद्य उत्पादन की अपेक्षा अधिक तेजी से बढ रही है और 2000 ई० मे यह करीब दुगुनी हो जाएगी।

आज ही करोड़ो लोग अधभूखे है। आज का सामान्य खाद्य उद्योग उनकी पूर्ति नही कर पा रहा है और वैज्ञानिक लोग पोषण समस्या पर इसी दृष्टि से विचार कर रहे हैं। इसलिए करीब एक दजन पौष्टिक भोजन के स्रोत, जो कि त्यागे जा चुके थे या जिनकी उपेक्षा की जा चुकी थी, फिर से विकसित किए जा रहे हैं। इनमे से सबसे महत्त्वपूर्ण हैं सस्ते नए प्रोटीन। भोजन मे चाहे कितनी ही अधिक कैलोरिया, विटामिन व खनिज क्या न हो यदि उसमे प्रोटीन नही हैं तो वह अधूरा है, पर्याप्त नहीं है। सामान्यतया दूध, पनीर, सब्जियो, मछली व मास से प्राप्त होने वाले ये प्रोटीन शिशु की बाढ के समय नए अग या ऊतक बनाने के लिए सारी जिन्दगी भर टूटे फूटे अगो की मरम्मत करने के काम आते हैं। इनके प्रसग मे तो यह भी नही हो सकता कि शरीर में लालाजी के खजाने की तरह या गुल्लक के पैसो की तरह जमा करके रख दो और जब जरूरत हो तब निकाल लो। अच्छी सेहत बनाए रखने के लिए इन्हे तो रोज ही खाना होगा और रोज ही इनसे पोषण प्राप्त करना होगा। आज लगभग 25 प्रतिशत लोग प्रोटीन की कमी के शिकार हैं।

हाल की खोजो ने बताया है कि धमनियो का मोटा होना, दन्तक्षय, मानसिक पिछडापन आदि बातें सब प्रोटीन की कमी के ही परिणाम हैं। गम देशो मे शरीर का आलस्य भी प्रोटीन की कमी का ही फल है। शरीर मे प्रोटीन की कमी होने पर वह उसी के अनुसार काम करता और उसी के अनुसार अपने को ढाल लेता है। प्रोटीन की कमी के कारण शरीर क्या करेगा कि वह काम कम और आराम अधिक करेगा। परिणाम यह होगा कि इससे मनहूसियत और कगाली ही फैलेगी और काम वाले घटो मे कमी होगी।

वैसे पृथ्वी पर हर कही प्रोटीन के सस्ते स्रोत भी हैं परन्तु दुख इस बात का है कि हमारी आहार सबधी आदतो की भिन्नता, भोजन सबधी रूढियो और तकनीकी सूचना के अभाव के कारण इन सबका उपयोग नही हो पाता।

शरीर चढ़े रोग

भोजन के प्रमुख छ अवयव होते हैं—प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन, वसा

(चर्बी), खनिज लवण व पानी। शरीर की सतुलित बाढ के लिए इनका समुचित मात्रा मे होना परम आवश्यक है। लेकिन जरा विस्तार मे कह तो शरीर के लिए 23 आवश्यक घटको की आवश्यकता होती है। ये घटक हैं—प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट (मड व शकरा) विटामिन ए०, विटामिन बी० 12, विटामिन सी०, विटामिन ई०, विटामिन बी०, विटामिन डी०, विटामिन के०, लिपिड, सोडियम क्लोराइड (साधारण नमक), राइबोफ्लेविन, पाइरिडॉक्सिन, फोलिक एसिड, आयोडीन, लोहा, कल्शियम, पोटेशियम, फॉसफोरस, कैल्शियम पैन्टोथेनेट, निकोटिनामाइड, कालीन, अल्प मात्रा वाले तत्व इत्यादि।

दो जन पेट भर जाय तो कितनी अच्छी बात है, लेकिन विडम्बना तो तब है जबकि पेट भी भर जाय पर शरीर अशक्त ही बना रहे यानी उसे पूरा पोषण न मिले। और सबका परिणाम तब सामने आता है जबकि रोग आ घेरते हैं। तभी ज्ञात होता है कि कहीं न कहीं कुछ खोट है।

अल्प पोषण की अनेक अवस्थाए हैं जो कि मामूली कमजोरी से लेकर मारक प्रकार तक की हो सकती हैं। स्वस्थ मनुष्य अपने शरीर का एक चौथाई वजन गवा बैठता है तो वह बीमार बन जाता है और जिन्दगी खतरे में पड सकती है। पहले वह दुबला होता है, त्वचा सूखी सूखी होकर लटकने लगती है, बालो की चमक उड जाती है, नाडी मन्द हो जाती है और फिर रक्तचाप घट जाता है। डायरिया और मानसिक व मनोवैज्ञानिक गडबडिया भी आए दिन चलती रहती हैं। इस प्रकार अल्प पोषण के कारण कमजोरी, उदासी, सुस्ती, चिडचिडापन आदि लक्षणो का प्रकोप बना रहता है।

पोषण यानी छिपी भूख और बीमारियो का बडा घनिष्ठ सबध है। भोजन में विभिन्न तत्वो की कमी से अरक्तता (एनीमिया), रिकेटस, स्कर्वी, बेरी-बेरी, क्वाशिओर्कोर, येलाग्रा जैसे रोग हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त अल्पपोषित व्यक्ति चेचक, डायरिया, न्यूमोनिया, यक्ष्मा आदि रोगो से जूझने मे कम सामर्थ्य दिखा पाते हैं क्योकि वे कमजोर जो बन जाते हैं।

अल्पपोषण व अधिपोषण तथा भूख व मोटापा ये सब मिले जुले रूप म एक ऐसी अवस्था को ज म देते हैं जिसे 'कुपोषण' कहते हैं। विकासमान देशो में कुपोषण का सबसे सामान्य कारण उनके दैनिक आहार मे प्रोटीन कैलोरिया की कमी, जो एक स लेकर चार वष के बच्चे पर विशेष रूप से असर करती है। कुपोषण के कारण ही इस अवस्था मे मत्यता अधिक है। इस समूह म मृत्यु का प्रमुख कारण पेट, आत तथा श्वसन अगो का सक्रमण है। कुपोषण के कारण शिशु के शरीर की अवरोधक्षमता कम हो जाती है और मृत्यु की सभावनाए अधिक हो जाती हैं।

प्रोटीन व उसकी कमी के रोग

प्रोटीन म कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन नाइट्रोजन आदि के अतिरिक्त गधक तथा फॉसफोरस के तत्व होते हैं। प्रोटीन ऊर्जा देने के साथ साथ शरीर की वद्धि तथा

रोजमर्रा की टूट-फूट की मरम्मत आदि का महत्त्वपूर्ण काय करते हैं। प्रोटीन, अमीनो अम्ल नामक 20 रचनात्मक घटको के बने होते है, जिनमे स 8 उचित पोषण के लिए बहुत आवश्यक हैं। ये विभिन्न स्रोतो से प्राप्त होते है। कोई एक ऐसा पौधा नही है जिसमे कि ये सब के सब मौजूद हो। यदि ये प्रोटीनयुक्त पौधे फाम वाले पशुओ को खिलाए जाए तो इन्हें प्रोटीनबहुल मास व डेयरी पदार्थो मे बदला जा सकता है। लेकिन केवल इसी से क्या हो सकता है। इसीलिए इतने बडे ससार के लिए पोषण जुटाने के लिए खाद्यविज्ञानी नई नई विधिया खोजने मे लगे हैं। समुद्र के पानी मे खेती करने के आधुनिक तरीको से भी पौष्टिक भोजन की कमी पूरी की जा सकती है। सयुक्त राष्ट्र अमरीका के वैज्ञानिको ने एक सुपोषी पदाथ—मछली का प्रोटीन मत—तैयार किया है। इस चूण की कुछ चम्मचें, सूप या गेहू के आटे के साथ मिलाकर खाने से काफी प्रोटीन मिलते हैं।

प्रोटीन भोजन का बहुत महत्त्वपूण घटक है। फूला हुआ पेट, सीकिया पतली टागें और भीतर गड्ढा मे धसी आखें—प्रोटीन की भूख के प्रतीक हैं। सभी महाद्वीपो के बच्चा मे प्राय यह देखा जा सकता है। 'प्रोटीन कैलोरी अल्पपोषण' की विकट बीमारी को योरोप म 'शाफ', अमरीका म 'शुगर बेबी' और अफ्रीका मे 'क्वाशिओर्कोर' या 'मबु-आकी' के नाम से पुकारा जाता है। दुनिया मे ऐसी बहुत कम जगहे है जहा 2 से 5 साल के बच्चे प्रोटीन की कमी की बीमारी से बचे रह पाते हैं। एक गीतकार ने ठीक ही कहा है कि "जिस देश का बचपन भूखा हो, उस देश की जवानी क्या होगी।" राष्ट्रीय स्वास्थ्य व विकास पर इन रोगो से कितना हानिकारक और घातक प्रभाव पडता है इसकी कल्पना की जा सकती है। बच्चा के सामान्य पेयो मे ये पदाथ मिलाकर दिए जा सकते हैं। आज के बालप्रिय पेयो की तरह अन्य चटपटे पेयो का आविष्कार किया जा सकता है। इससे ताजगी की ताजगी भी मिलेगी और पोषण का पोषण भी। विदेशो म ऐसे पेयो का प्रचलन शुरू हो गया है और स्कलो मे आधी छटटी म ऐम सपूरक आहार का वितरण किया जाता है। वैसे हमारे यहा भी ऐसे बाल आहार की योजना है।

प्रोटीन को सिद्धि मस्तिष्क को वृद्धि

पहले यह धारणा थी कि कम खुशहाल परिवारो के बच्चो मे बचपन मे कुपोषण के कारण हुए दुष्प्रभाव उनके बडे होने और नौकरी मिलने व खुशहाली होने पर दूर हो जाते हैं किन्तु आधुनिक वैज्ञानिक अनुसधान ने इन भ्रातिया को निराधार बताया है। निस्सन्देह यह सिद्ध हो चुका है कि बचपन मे कुपोषण के कारण विशेषकर सात वर्ष की आयु तक औसत से कम कोटि के नागरिक पैदा होगे। एक देश के लिए इससे हानिप्रद बात क्या हो सकती है। राजधानी मे खाद्य तथा कृषि सगठन, सगठन और यूनीसेफ विशेषज्ञो की हुई एक बैठक मे बताया गया था वष की आयु वाले करीब 15 करोड बच्चो मे से 8 करोड बच्चे मानसिक परिवधन की शक्ति खो रहे हैं।" यह भी सुनाया गया कि

कमी के कारण प्रतिवर्ष करीब 14,000 बच्चे अन्धे हो जाते हैं।

विश्वस्त विशेषज्ञों ने और भी चौंकाने वाले आकडे दिए हैं कि "भारत में प्रति वर्ष 84 8 लाख मरने वाले लोगो मे से करीब 47 लाख बच्चे होते हैं। 90 प्रतिशत मामलो मे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे कुपोषण ही मृत्यु का कारण था।" खाद्य व कृषि सघ उन स्रोतो के अनुसार जहा तक केवल प्राणी प्रोटीन का प्रश्न है कहना पडेगा कि इसमें बहुत अधिक अन्तर है क्योकि सयुक्त राष्ट्र अमरीका मे इसकी मात्रा प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 72 ग्राम है जबकि भारत मे ली जाने वाली मात्रा मात्र 6 ग्राम है।

प्रौढ मस्तिष्क का दो तिहाई भाग दो वर्ष की आयु मे ही बढ जाता है और सात वर्ष की आयु मे करीब-करीब पूरा हो जाता है। वृद्धि के समय मस्तिष्क में प्रोटीन की कमी न्यूक्लीक एसिड व विविध लिपिडो की मात्रा को कम कर देती है और मस्तिष्क मे ये ही वे सफेद व भूरे पदार्थ हैं जो कि मेधा, स्मरणशक्ति, कल्पनाशक्ति, बोध की शीघ्रता, विचार विमर्श और क्रियाकलाप के लिए जिम्मेदार हैं।

30

नमक और रक्त-चाप

जी हा, हम उसी साधारण नमक की बात कर रहे हैं जिसे रोज ही दाल-भाजी मे इस्तेमाल किया जाता है और जिसे अग्रेजी म सौल्ट, सस्कृत और परिष्कृत हिन्दी मे लवण या सधव और ठेठ विज्ञान की भाषा मे 'सोडियम क्लोराइड' कहते हैं।

पुराने समय मे नमक का इतना महत्त्व था कि सौल्ट के लैटिन पर्याय 'सैलेरियम' शब्द से ही 'सैलेरी' यानी तनख्वाह शब्द बना। रोमन सिपाहियो को नमक मिला करता था जीवन निर्वाह के लिए। तब से आज तक यह 'सौल्ट मनी' सैलेरी या तनख्वाह के लिए इस्तेमाल होता चला आ रहा है।

योरोप मे नमक के बडे-बडे पात्रो के ऊपर की ओर या नीचे की ओर लोगो को कडी तरतीब से क्रमवार बिठलाने का मतलब था उनके ओहदे की जानकारी कराना। भारत की आजादी की लडाई मे भी 'नमक आन्दोलन' का अपना महत्त्व है। सभी जानते हैं कि अपने देश मे नमकहलाली और नमकहरामी वाले जुमले अपना मतलब फटाक से समझा देते हैं और इस बारे मे कम कहना ज्यादा अक्लमदी की बात होगी। कम लिखा अधिक समझिएगा, यही नमक शरीर मे आखो को सुख पहुचाने वाले लवण यानी नमकीनी से जुडा है।

आदमी तो नमकहरामी या नमकहलाली करता ही है पर तदुरुस्ती के हिसाब स यह नमक भी नमकहलाली और नमकहरामी करता है। यह बात दुनिया के बडे-बडे साइसदा कहते हैं। धरती के इस नायाब और जायकेदार तोहफे पर, खाने-पीने की चीजो मे जिसकी एक चुटकी से चुटकी भर मे चमत्कारी स्वाद आ जाता है, नजर लग गई है। कहते हैं कि यह जरा भी ज्यादा हो गया तो गजब ढा देगा, तन्दुरुस्ती के लिए जहर घोल देगा।

कहा जा रहा है कि ज्यादा नमक से शरीर का रक्त चाप यानी ब्लड प्रेशर बढ जाता है, जो अधेड उम्र के लोगो मे तदुरुस्ती की दुरुस्ती मे गडबडी कर सकता है। वैसे देखा जाय तो तदुरुस्ती के लिहाज से समय समय पर डॉक्टर और वैज्ञानिक नए-नए नारे देकर लोगो को आगाह करते रहे हैं। 1960 वाले दशक से डॉक्टरो की चेतावनी पर अमल करने वालो ने चिकनाई वाले 'कोलेस्टरोल' के खतरो से बचने के लिए खाने

मे क्रीम, अडे, मक्खन, पनीर वगैरह मे कमी बरतनी शुरू कर दी तो 1970 वाले दशक मे रेशे (फाइबर) वाली लहर इतनी जोरो से चली कि इसकी तामील करने वालो और माथापच्ची करने वाला की खाद खुराक मे अनछने आटे की रोटिया व ब्रेड, फलिया, कच्ची सब्जिया व सलाद, अनाज, चोकर वगैरह की ज्यादा पूछ होने लगी। अब आज हम देख रहे हैं कि सारा ध्यान नमक की तरफ खिच गया है कि इसके इस्तेमाल पर कन्ट्रोल रखा जाय और मुमकिन हो तो इसके बिना भी खाना निगल लिया जाय। पर इस तरह निगला जाएगा क्या ? इसके बिना दाल, मीट, मछली भकोसने वाले चटखारे लगा पाएगे क्या ?

हमारे भोजन का सच्चा साथी

हमारे भोजन का यह अतरग साथी नमक क्या सचमुच इतना खतरनाक साबित हो सकता है ? आदम जात की आज तक की तवारीख मे जायका देने और खाने को खराब न होने देने म और उसे बरकरार बनाए रखने मे इसका कितना हाथ रहा है, यह तो बडी पुरानी बात है। अगर यह बात अब होनी थी तो यह खोज इतनी देर बाद क्यो डॉक्टरो के जेहन मे आई जबकि नमक का जायका हमारी जबान पर चढा ही नहीं बल्कि मुकम्मल तौर पर अडा हुआ है।

लेकिन डॉक्टर और वैज्ञानिक भी यू ही अल्ललटप्पू अपनी बात नही कह रहे हैं। उन्होने दुनिया भर के लोगा म, देश देश के बाशिदा मे और जगह जगह के बदा म देख परखकर ही सही बात कही है। जो लोग कम नमक इस्तेमाल करते हैं उनमे बहुत कम लोग पाए गए जिनका रक्त चाप बढा हुआ मिला, जबकि जापान जसे देश क लोगो मे, जो कि खाने मे बहुत ज्यादा नमक का इस्तेमाल करते हैं, तनाव, रक्त चाप, दिल के दौरे, दिल की बीमारिया या गडबडिया अधिक पाई गइ।

1940 और 1950 वाले दस साला अरसे के दौरान, जबकि खून के दबाव को कम करने वाली दवाए कम मुहैया हो पाती थी, ऐसे बीमारा को बिना नमक वाला खाना खाने के लिए कहा जाता था और यह इलाज कारगर साबित हुआ, भले ही पसद के लिहाज से इसे अच्छा नहीं समझा गया।

यह सब होने पर भी अभी हाल के कुछ वर्षों तक ऐसे डॉक्टरा की तादाद कम ही गई थी, जो यह मानते थे कि *रक्त चाप बढाने मे नमक का बहुत हाथ है।* इसके दो कारण थे—एक यह कि लगातार की गई खोजो से खाए गए नमक और मद या औरत के रक्त चाप मे साफ झलकने वाला रिश्ता नही पाया गया। कुछ लोग जा कि जो कुछ खाते थे उस पर खूब नमक छिडककर खाते थे उनका रक्त चाप बिल्कुल आम किस्म का था, और दूसरे लोग जो बहुत ही कम नमक खाते थे उनमे रक्त चाप ज्यादा पाया गया। दूसरे, जानवरो पर किए गए प्रयोगो से रक्त चाप की कम से कम कुछ किस्मो और नमक खाने म कोई सबध नही पाया गया।

चूहो पर किए गए प्रयोगो मे चूहो की बिल्कुल दो अलग किस्मे सामने आइ।

एक किस्म वह थी जिसको भरपूर नमक वाला खाना दिया गया और तब भी उसका रक्त चाप बिल्कुल आम किस्म का था, लेकिन दूसरी किस्म को ऐसा खाना दिए जाने पर उसमे रक्त चाप बढा हुआ पाया गया। दोना किस्मे बिल्कुल सच्ची किस्मे थी जिनसे पता चला कि ये 'जीनो' यानी खानदानी गुणो वाली इकाइयो के कारण ही नमक के प्रति अपना रुख और रवैया दिखलाती रही।

ऐसे ही नतीजे आदमी मे भी पाए गय, क्योकि ज्यादा रक्त-चाप वाले बीमारो और उनके कुछ तदुरुस्त रिश्तेदारा की खून की लाल कोशिकाओ (रेड ब्लड सेल्स) मे असामान्य रूप स नमक की या सही कह तो 'सोडियम' की अधिक मात्रा पाई गई।

आज की परिकल्पना यह है कि चूहो की ही तरह आदमी को भी दो समूहो म बाटा जा सकता है—एक तो वे, जो नमक के प्रति सवेदनशील होते हैं और दूसरे वे, जो नमक के प्रति सवेदनशील नही होते। जाहिर है कि जो लोग नमक के प्रति सवेदनशील होते हैं वे अगर ज्यादा नमक खाते हैं तो उनमे रक्त-चाप बढ जाता है और बाकी अधिकाश नमक रोधी लोगा म ज्यादा नमक खाने से कोई भी असर नही पडता।

देश के रिवाज के अनुसार जब नमक के प्रति सवेदनशील लोग ज्यादा नमक वाला खाना खाते हैं तो वे अधिक रक्त चाप वाले हो जाते है और उन जगहा पर जहा नमक कम खाया जाता है वहा ये लोग बिल्कुल तदुरुस्त रहते हैं। इसीलिए अमरीका म तो कम नमक वाला खाना डॉक्टरी नुस्खे का हिस्सा बनकर उनकी जिन्दगी का ढर्रा ही बन गया है। पहले से पके और खाने के लिए तैयार व एकदम परासे जाने वाली भोजन सामग्री मे नमक की मात्रा कम करने के तरीके भी ढूढे जा रहे हैं।

चूहा की मिसाल पर गौर फरमाए तो पता चलता है कि एक बार रक्त चाप बढ जाता है तो बढा ही रहता है, भले ही नमक की मात्रा कितनी ही कम क्या न ली जाती रह। फिर यह भी कहना पडेगा कि सामान्य बन गए अधिक रक्त चाप के इलाज मे इससे जुडी आम दवाओ के बनिस्बत कम नमक वाला खाना कम असरदार होता है।

नमक से रक्त-चाप क्यो बढता है ?

जिन इलाका म नमक का इस्तेमाल नही होता वहा के लोग अधिक रक्त चाप जानते ही नही। वैसे कहते तो है पर बहुत साफ तरह से यह नही मालूम कि नमक रक्त-चाप कैसे बढाता है ? कुछ खोजकारा के इकट्ठा किये गये सबूता के बल पर कहते है कि यह 'नेट्रीयुरेटिक हॉरमोन' नाम के हॉरमोन की कारस्तानी है। यह हॉरमोन पशाब म सोडियम के आयनो का बहाव तज कर दता है। इस तरह शरीर मे नमक की ज्यादा खपत और रक्त चाप की बढोतरी मे गहरा ताल्लुक हो सकता है।

कुछ जाने पहचाने पदाथ है जो रक्तदाब बढाने का काम करत हैं, जैसे कि 'एजियोटेन्सिन' और 'नारएपीनेफ्रिन'। लेकिन रक्त चाप के जान पहचाने खोजकार डॉ० लेविस के० डाल ने सुझाया कि इनके अलावा कोई और अलग चीज भी इसका कारण हो सकती है।

पीछे बताए गए नेट्रियूरेटिक हॉरमोन के बारे म पहले-पहल तब पता लगा जब कि बढे रक्त चाप वाले लोगो और जानवरा मे इस तरह की खोजें चल रही थी। कई खोजकारा ने पाया कि प्रयोगो के दौरान जब जानवरा के शरीर में खून का आयतन बढाया गया तो उसमे (खून मे) ऐसी चीज पायी गई जिसने गुर्दे से सोडियम आयन के बहाव मे इजाफा कर दिया। यह चीज उन लोगा के खून मे भी पायी गयी जिन्हें कि 'यूरीमिया' नामक बीमारी थी। इस बीमारी मे गुर्दे काम नही करते और शरीर स जहरीली चीजा व पानी को बाहर नही निकाल पाते। इस बात के पुख्ता सबूत हैं कि यह चीज 'नेट्रियूरेटिक हॉरमोन' ही है।

पर यह भी कहा की बुद्धिमानी है कि नमक के बगर बिना स्वाद वाला खाना खाया जाता रहे। वैसे भी यह नमक ज्यादा लोगो को नुकसान नही पहुचाता क्योकि ज्यादा खोजकारा का यही कहना है कि अपने म हॉरमोन तब तक रक्त चाप नही बढ़ाता, जब तक कि कोई आदमी अदरूनी हिसाब से यानी विरासत मे मा-बाप स पाए गए गुणो के कारण इस रोग को पनपाने के लिए जिम्मदार न हो। यह बतला दें कि ज्यादा नमक खाने का मतलब है एक दिन म तीन ग्राम से ज्यादा नमक खाना।

केवल सलाह भर

अब ऐस नाजुक दौर म गुजरते समय थोडी-बहुत सलाह दी जा सकती है, क्योकि वैस तो हर एक चीज के खाने-पीने से कुछ न कुछ बुरे असर पडते हैं। मिसाल के तौर पर तबाकू सिगरेट पीने की बात को लिए लेते हैं। भले ही सिगरेट पीने वाला म से बहुत कम को फेफडो का कैंसर होता है पर सिगरेट पीने से और बीमारिया तो होती ही हैं, जैसे कि दिल के दौरे, ब्राकाइटिस, ब्लड कैंसर वगरह।

बात नमक की चल रही है तो इसी को लेते हैं। इस पर आम टिप्पणी तो यह है कि हममे से ज्यादा लोगो को तो यह नुकसान नही पहुचाता, और अगर यह खतरनाक साबित होता भी है तो महज थोड़े से लोगा के लिए ही। पर आज के इन सबूतो स एक सबक तो ले ही लेना चाहिए। जिन नौजवान लोगो के रिश्तेदारा का रक्त चाप अधिक होता है उन्हें एहतियातन नमक का इस्तेमाल कम कर ही देना चाहिए और इस तरह रफ्ता रफ्ता उन्हें लगेगा कि ज्यादा नमक खाना इतना जरूरी नही है जितना कि लोग सोचते हैं और फिर स्वाद की जिम्मेदार तो चटोरी जीभ है। इसे जैसा रखिए धीरे धीरे वैसे ही स्वाद पर आ जाएगी। उन्हे फिर कम नमक ही लुत्फ और जायका देने लगेगा।

अगर किसी के खानदान मे रक्त चाप की प्रवृत्ति नहीं है तो नमक से परहेज ज्यादा तवज्जह वाली बात नही है और घबराहट से बचने व दिल बहलाने के लिए यह भी कह सकते हैं कि तबाकू, सिगरेट, शराब, मोटापे, भारी वजन वगरह को मद्दे नजर रखते हुए नमक वाला मुद्दा इतना संगीन नही है।

वैसे भी अगर मिर्चें कम खायी जाती हैं तो ज्यादा नमक डालने स दाल, सब्जी

व गोश्त आदि खाने का जायका खराब हो जाता है। विदेशों में 'सोल्टी कैरेक्टर' उसे कहा जाता है जो हिंसा वाली प्रवृत्ति का होता है। इसीलिए समाज में व्रत रखने या फाका करने का रिवाज भी है कि कुछ समय के लिए तो नमक से निजात मिले ताकि आदमी अधिक तनाव व भड़कते स्वभाव वाला न बने। कई जड़ी-बूटी वाली दवाइयों के सेवन में भी इसीलिए बहुत पुराने समय से नमक का कम से कम इस्तेमाल बताया गया है।

31

वेजान होकर जानवरो मे फूक डालने वाले

लोग बाग जरूर चौंकेंगे लेकिन यह सच है कि जीवो म सजीवनी शक्ति प्रवाहित करने वाले पदाथ बेजान हैं और इन आधार वस्तुओ के बिना हमारा अस्तित्व बिलकुल असम्भव है। तो सुनिये इन बेजान पदार्थों का नाम। इनका नाम है 'एजाइम'। हजारो की सख्या मे ये हमारे शरीर मे रासायनिक क्रियाओ की शृखलाआ पर नियत्रण रखते हैं और इन्ही की बदौलत हम जिन्दा रहते व सास लेते हैं।

एजाइमा की सरलतम परिभाषा इस प्रकार कर सकते है—"ये हमारे शरीर के उत्प्रेरक पदाथ हैं अर्थात् जीवो के शरीर मे उत्पन्न होने वाले प्रोटीन पदाथ हैं जो विविध रासायनिक क्रियाओ को तेज करते अथवा उन्हे नियन्त्रित रखते है।" इस सदभ मे जीवन की परिभाषा करना चाहें तो इस प्रकार कर सकते है—"एजाइमो द्वारा नियत्रित रासायनिक अभिक्रियाआ की शृखला ही जीवन है।" लेकिन आधुनिक वैज्ञानिको के अनुसार जरा-सी बदली परिभाषा यह है—"जीवन शरीर के अन्दर की रासायनिक अभिक्रियाआ का खेल है।" सभी जीवधारी पूरी तरह से

मानव शरीर मे मुख्य एजाइम उत्पन्न करने वाले अवयव

रासायनिक पदार्थों से बने हैं। जीवो के उदभव के पहले पृथ्वी पर केवल रासायनिक पदाथ ही थे और विभिन्न रासायनिक अभिक्रियाओ के फलस्वरूप ही रसायनो से जीव धारी उत्पन्न हुए। फिर शनै-शनै कालान्तर मे आदि जीवों स सरल व निम्नतम जीव और फिर इनसे उच्चतम जीव अस्तित्व मे आये। क्रियाओं अभिक्रियाआ का इस सारी श्रखला को ही विकास कहते हैं, जो अपने म एक अलग कहानी है।

हमारा खाना-पीना, रोना हसना, सोना, बीमार होना और अच्छा होना, य सब क्रियायें हमारे शरीर क अन्दर रसायनविज्ञान के ही परिणाम हैं। जब भी हम चलत,

सास लेते, सोचते या कुछ करते हैं तभी अनेक रासायनिक अभिक्रियाओ को एड लग जाती है। इनमे अधिकाश क्रियायें सचमुच इतनी जटिल हैं कि वैज्ञानिक व जीवरसायन-विज्ञानी, आदम के हाथो उलझी इन गुत्थियो को सुलझाने मे 'ताबडतोड लगे हुए हैं। और इन सब रासायनिक क्रियाओ के सेनानायक हैं ये 'एजाइम', जो हैं तो गजब के लेकिन बस बेजान पदार्थ हैं।

शरीर की प्रत्येक रासायनिक अभिक्रिया के पीछे एक एजाइम का हाथ होता है और मानव मे ही नही बल्कि अन्य प्राणियो, पौधो और यहा तक कि छोटे से छोटे जीव बैक्टीरिया (जीवाणु) का अस्तित्व भी इन एजाइमो पर निर्भर करता है। हमारे शरीर में ये मुह, आमाशय, आत और शरीर की उन सभी कोशिकाओ मे पाए जाते हैं—जिनसे ऊतक अथवा अग बनते हैं और जो विविध रासायनिक अभिक्रियाओ के लिए उत्तरदायी होते हैं। इसमे कोई अत्युक्ति न होगी यदि हम कहें कि 'मानव शरीर कुछ नहीं, बस व्यस्त व क्रियाशील एजाइमो की गठरी है, जिसे इनकी सक्रियता के प्रति ऋणी होना चाहिए।' इनका महत्त्व इसलिए है कि ये सन्तो या परोपकारियो की तरह काम करते हैं। पानी मे रहने पर भी कमल का पत्ता जैसे अछूता और बेलाग रहता है ठीक उसी तरह ये भी हैं। स्वय अपरिवर्तनशील रहकर ये क्रियाओ को बढावा देते हैं। इनके बिना किसी रासायनिक अभिक्रिया का हो पाना असम्भव है। उदाहरण के लिए, इनकी अनुपस्थिति मे हम ऑक्सीजन का उपयोग तक नही कर सकते जिसके फल-स्वरूप हमारे शरीर की कोशिकायें ऑक्सीजन प्राप्त नही कर पायेंगी और इसका परिणाम सब बखूबी जानते हैं—मृत्यु। लेकिन चमत्कार यह है कि इनके अल्पाश से ही एकदम सजीवनी शक्ति बहने लगती है।

क्लिष्ट नाम और विशिष्ट काम

खमीर और जीवाणु (बैक्टीरिया) की एजाइम सक्रियता का उपयोग मानव द्वारा हजारो वर्षों पहले भी शराब, डबलरोटी और पनीर बनाने मे किया जाता था। लेकिन उस समय इसकी वैज्ञानिक बारीकिया मालूम नही थी, जो कि उन्नीसवी शताब्दी म हमारे सामने आईं, जब कि जैव माध्यमो मे रासायनिक प्रतिक्रिया दिखाने वाले पदार्थों, जैसे माल्ट मे मण्ड (स्टार्च) का पाचन करने वाले पदार्थों, आमाशय के पाचक रसों तथा लार के पाचक पदार्थों को 'किण्व' (फर्मेन्ट) नाम दिया गया।

ऐसे पदार्थों या किण्व पदार्थों को 'एजाइम' नाम कुहने द्वारा दिया गया। एजाइम शब्द ग्रीक भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है 'खमीर में'। यह पदार्थ चूकि खमीर (यीस्ट या जाइम) म पाया गया इसीलिए एजाइम नाम पडा। 1897 मे बुकनेर ने खमीर मे सफलतापूर्वक एक पदार्थ निकाला जिसे 'जाइमेस' कहते हैं। खमीर की तरह यह पदार्थ एजाइम क्रिया द्वारा शक्कर को एलकोहल (शराब) तथा कार्बन डाइ ऑक्साइड म बदल सकता है। एजाइम प्रोटीन के बडे अणु होते हैं। इनकी सारी विशेषताए प्रोटीनो की ही तरह होती हैं, जैसे पानी मे घुलनशीलता तथा ताप और अम्ल के प्रति

सवेदनशीलता। इनका यह भी गुण है कि ये इष्टतम तापमान पर ही कार्य कर पाते हैं क्योकि अधिक तापमान पर ये नष्ट और कम तापमान पर मन्द पड जाते हैं।

एजाइमो का सबसे बडा गुण है उनकी विशिष्टता। ये केवल एक ही प्रकार की अभिक्रिया का उत्प्रेरण करते हैं, अन्य का नही। वसा या चर्बी, कार्बोहाइड्रेटो (शक्कर, मण्ड आदि) और प्रोटीनो पर क्रिया करने वाले एजाइम सब अलग-अलग होते हैं। इनका नामकरण ऐसा हुआ है कि इनमे अधिकांश के अन्त मे 'एस होता है (जसे लाइपेस), लेकिन कुछेक 'ट्रिप्सिन' और 'पेप्सिन' नाम वाले भी हैं।

एजाइमो की पाचन-अग्नि और अपाचन की मन्दाग्नि

असली काम जो एजाइमो का है, वह है भोजन का पाचन और यही इनकी गीता का सार है। जो भोजन हम खाते हैं एजाइम उसे छोटी छोटी इकाइयो मे बदल देते हैं। ऐसी छोटी इकाइया मे जो हमारे शरीर की छोटी इकाइयो यानी कोशिकाओ क लिए उपयोगी हों, क्योकि रोटी या अचार का बडा टुकडा हमारी कोशिकाओ के लिए बिलकुल बेकार है। जो भोजन हम ग्रहण करते हैं वह बिलकुल बेकार है यदि उस पर एजाइमो ने अपना जादुई डडा नही घुमाया है। सच, यदि भोजन का पाचन करने वाले ये एजाइम न होते तो भोजन हमारे लिए मिटटी के ही बराबर होता।

पुराने समय म भी लोग इन एजाइमो की प्रकृति से परिचित थे। बच्चे के जन्म के छ महीने के बाद ही अन्नप्राशन किया जाता था यानी उस अन्न दिया जाता था। वैज्ञानिक तथ्यो के आधार पर यह बिलकुल ठीक है क्योकि बच्चे मे छ महीने के बाद ही एजाइम वाले लार तथा अन्य पाचक रस उत्पन्न होते हैं। इन एजाइमो की पाचन शक्ति को ही बोलचाल मे 'अग्नि' (क्षुधाग्नि) कहा गया है और अधिकाश एजाइम वाले पाचक रस उत्पन्न करने वाले अग को विज्ञान मे भी 'अग्न्याशय' (पक्रियाज) कहा गया है।

मुख मे दातो द्वारा चबाने से यान्त्रिक पाचन और एजाइमो द्वारा रासायनिक पाचन होता है। मुख से ही भोजन का पाचन यानी एजाइमों की क्रियाशीलता शुरू होती है। लार में 'टायलिन' नामक एजाइम होता है जो मड को शक्कर मे परिवर्तित कर देता है। इसी के कारण भोजन चबाने पर मुह मे कौर का स्वाद मीठा लगने लगता है। आमाशय मे जठर ग्रंथियों से निकलने वाले 'पेप्सिन' और 'रेनिन' नामक एजाइम होते हैं। पेप्सिन प्रोटीन को घुलनशील पेप्टोनो म बदल देता है और रेनिन दूध का पाचन करता है।

अग्न्याशय स तीन एजाइम निकलते हैं—'ट्रिप्सिन, 'अमाइलोप्सिन' और 'लाइपेस'। ट्रिप्सिन पेप्टोना को अमीनो अम्लो में, अमाइलोप्सिन मड को ग्लूकोस म और लाइपेस वसा को वसीय अम्ला और ग्लिसरीन मे बदल देता है। इसके बाद बचे खुचे भोजन के अपचे अवयवो का पाचन छोटी आत के एजाइमो द्वारा होता है और ये एजाइम हैं 'इरेप्सिन' तथा 'इनवर्टेस'। इरेप्सिन बचे खुचे प्रोटीनो को सीधे ही अमीनो

अम्लो में और इनवर्टेस मड की शक्कर को ग्लूकोस मे बदल देता है। इसके बाद यह सारा पचा हुआ और पानी मे घुला हुआ भोजन अर्थात् भोजन रस छोटी आत की कोशिकाओ व धमनिया द्वारा सोखा जाकर शरीर की सम्पूर्ण कोशिकाओ मे बाट दिया जाता है। तभी हमे धींगामुस्ती व धमाचौकडी मचाने की ताकत मिलती है, और साथ ही हम नीरोग भी बने रहते हैं। लेकिन जरा सा एजाइमो मे खोट हुआ नही कि हम मरियल जसे, मुर्दनी चेहरे वाले और मदाग्नि के मरीज बन जाते हैं। और यही नही, अपच, कब्ज, रक्तहीनता आदि अनगिनत रोग शरीर मे होल्डौल खोल देते हैं।

रोग निदान और उद्योगो मे योगदान

विशिष्टता के गुण के कारण एजाइम रोगो तथा शरीर के रासायनिक असन्तुलन के निदान म भी सहायक होते हैं। रोग द्वारा किसी अग के ग्रस्त होने पर इस भाग के एजाइम रक्तधारा में छोड दिए जाते है। इस प्रकार एजाइमो के विश्लेषण से ग्रस्त भाग की पहचान की जा सकती है।

यह विश्वास किया जाता है कि ये एजाइम कोशिकाओ की पैतृक गुणा से सम्बद्ध धागेनुमा सरचनाओ— गुणसूत्रो— म सश्लेपित हाते हैं, और वो भी गुणसूत्रा के छोटे छोटे कणा या जीना मे। एक विशेष जीन विशिष्ट एजाइम के निर्माण के लिए उत्तरदायी हाता है। यदि शरीर की जव क्रियाआ से सम्बद्ध कोई एजाइम अनुपस्थित है तो समझिये रोग का प्रकोप तो कोई बात नही लेकिन मौत भी हो सकती है। कभी कभी किसी मे जनमते ही किसी एजाइम की कमी भी हो जाती है। उदाहरण के लिए, अस्थि पेशियो में 'फास्फोराइलेस' नामक एजाइम की अनुपस्थिति से एक रोगी मे पेशीय दुबलता और ऐंठन का रोग हो गया था। इसमे परेशानी यह है कि ऐसी बीमारी का कोई भी इलाज नहीं होता।

कभी-कभी एजाइम अकेले अकेले असहाय हो जाते हैं और इन्हें भी पूर्ण होने के लिए किसी साथी की जरूरत होती है। अत इनके काम काज म हाथ बटाने वाले सहयोगी पदार्थों को 'सह एजाइम' कहते है। ये सह एजाइम फॉस्फेट वाले यौगिक होते हैं। कहा जाता है कि अधिकाश विटामिन ही सह एजाइमा का काय करते हैं। कुछ को पसन्द यह है कि इन्हें धातुओ की आवश्यकता होती है और इन धातुआ म मुख्य हैं— जस्ता व मोलिबडेनम। इन धातुओ को सक्रिय कारक कहते हैं, जो सोने मे सुहागे का काय करते हैं। लेकिन इनके विपरीत सायनाइड व पारे सरीखी कुछ ऐसी सघातक धातुयें भी होती हैं जिनके अल्पाश से ही ये अवमदित हाकर रोग और यहा तक कि मत्यु भी कर देते हैं। इसी तरह रसायना द्वारा भी एजाइम अवमदित व उत्प्रेरित होते हैं।

शरीर की विविध क्रियाआ मे महत्त्व के अतिरिक्त इनका उद्योगा मे भी बडा महत्त्व है, विशेषकर भोजन विज्ञान मे। चमडे के शोधन और बीयर-उत्पादन मे मुख्यतया इनका उपयोग होता है। औद्योगिक उत्पादन के लिए एजाइम पौधा, प्राणियो व

जीवाणुओं (बैक्टीरिया) से प्राप्त किये जाते हैं। कुछ पाचक एंजाइम, जो व्यापारिक स्तर पर प्राप्त हो सकते हैं, गोश्त, शबतों और औषधीय यौगिकों में मिलाने के काम आते हैं।

अभी तक प्रयोगशाला में कृत्रिम रूप से कोई एंजाइम संश्लेषित नहीं किया जा सका है लेकिन 'राइबोन्यूक्लीयेस' नामक एक एंजाइम के बारे में बताया गया है। यह पहला एंजाइम है जिसकी संरचना और अणुओं का विन्यास पूरी तरह से ज्ञात कर लिया गया है। वैज्ञानिक अनुसंधानों में जी जान से लगे हैं कि शरीर में ऐसे पदार्थों का प्रवेश कराया जाय जिससे इच्छित या अनुपस्थित एंजाइम के अभाव की पूर्ति की जा सके।

32

स्मृतियो के सवाहक

परीक्षा भवन मे सिर खुजलाते हुए विद्यार्थी, हिस्टरी-जोगरफी बडी बेवफा, शाम को पढो सुबह को सफा, मैंने आपको पहले भी कही देखा है—हा, याद आया, आपसे लल्ली की शादी मे मुलाकात हुई थी न, अगले महीने चार तारीख को पिकी की सालगिरह है, यह मेरा बचपन का फोटो है जब मैं पाच साल का था, बीस साल पहले जब हम इस शहर मे रहते थे तो यहा सब सपाट मैदान था, कोई भी बिल्डिग न थी, आज जरा एक पार्टी मे जाना है, 'पापादी आ दये—पापादी आ दये' आदि-आदि असख्य बातें रोजमर्रा सहज रूप मे केवल एक ही चीज के बलबूते पर धडल्ले से कही जाती हैं। और यह गूढ चीज है—स्मति या स्मरण शक्ति।

सचमुच जरा सोचिये कि यह स्मृति न होती तो क्या होता ? कैसी विडम्बना-पूर्ण होती जिन्दगी ? कैसी भयकर कल्पना है ? और इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। मैं कौन हू ? क्या हू ? कहा घर है ? मेरी मा कौन है ? दफ्तर कहा है ? यह भाई है या दुश्मन ?—इन सब बातो का कुछ भी पता न होता और पागलो से भी बदतर स्मृतिहीन मानवो से पृथ्वी भरी पडी रहती। सचमुच जीवन कितना विषम होता। खैर । और हम देखते हैं कि जो स्मृति के धनी होते हैं उन्हें लोग कुशाग्र या तेज कहते हैं और जो बेचारे स्मृति के मामले मे फिसड्डी हुए उन्हें मुलक्कडो की सज्ञा दे दी जाती है।

आए दिन विज्ञान की किरणें अज्ञान के अधकार को प्रकाशित करती जा रही हैं और नई-नई विस्मय कर देने वाली बातें सामने आकर दातो तले हमारी उगलियां दबवा देती हैं। भौतिक जगत के रहस्यो का पर्दाफाश तो होता ही जा रहा है, पर विज्ञान के प्रयोग मानसिक रहस्यो की सलवटो को भी सुलझाते जा रहे हैं। लेकिन फिर भी अभी तक आधुनिक आयुर्विज्ञान मे मानस या सीधा कहें कि मस्तिष्क के परिमडल को नही बूझा गया है। जितना ज्ञान मानव को अपने दिल या जिगर के बारे मे है उससे कही कम उसे अपने दिमाग की कार्यप्रणाली—जैसे सीखने और याद रखने—के बारे मे है।

क्रियाविज्ञानियो (फिजियोलौजिस्ट) द्वारा विशिष्ट रूप से ठीक ठीक बताने म असफल हो जाने पर कि स्मृति का सग्रह कहा और कैसे होता है, जीवरसायनविज्ञान (बायोकेमिस्ट्री) की अधुनातन प्रगति ने यह राह सुझाई है कि स्मृति के स्थान की जानकारी के लिए रासाय निक स्तर पर खोज की जानी चाहिए।
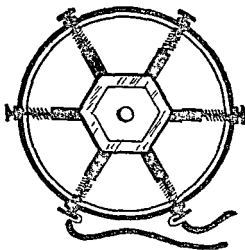
चपटा कृमि (फ्लैटवम) इस भूलभूलया क सफेद भाग में ही रहता है। काले भाग में प्रवेश करते ही उसे बिजली का झटका लगता है। इससे सिद्ध होता है कि झटके से बचने की बुद्धि उसमें है।

1904 मे रिचाड सिमोन ने पहले पहल स्मति के अकन के बारे मे बतलाया। उन्होने बताया कि मस्तिष्क मे प्रत्येक 'स्मति' के लिए एक 'अनुरेख' (ट्रेस) होता है अर्थात प्रत्येक स्मृति की मस्तिष्क पर छाप पडती है और जैसे ग्रामोफोन के रिकाड पर सुई के घूमने से भाषा मुख रित होती है उसी प्रकार मस्तिष्क मे स्मति स्थलो पर उद्दीपनो की सुई घूमने पर तदनुकूल भाष्य प्रकट हो जाता है।

1950 के लगभग होल्जर हाइडेन के प्रयोगो के आधार पर ज्ञात हुआ कि राइ बोन्यूक्लीक एसिड (आर० एन० ए०) के द्वारा स्मति का अकन होता है। हाइडेन ने अनुमानित किया कि स्मतिया आर० एन० ए० अणु मे उसी प्रकार सहिताबद्ध होती हैं जिस प्रकार माला मे विभिन्न प्रकार के गुथे हुए मनके या दाने। इन्ही के अनुसार निहित सदेश विशेष का भाष्य स्पष्ट होता है। इस सदभ मे हाइडेन का सिद्धात खरा उतरता है।

इन बातो अर्थात स्मति की गुत्थियो को सुलझाने के लिए डॉक्टर जेम्स मैकोनेल ने करीब दस ग्यारह साल पहले चपटे कृमियो या फ्लैटवर्मों स तत्सबधित जीवरासाय निक प्रयोग आरम्भ किए। यह बताना भी आवश्यक है कि इन प्रयोगो के लिए चपटे कृमि ही क्यो छाटे गये। यह इसलिए कि ये हैं तो निम्नतम प्राणी लेकिन इनमे तन्त्रिका तन्त्र अर्थात मस्तिष्क व सम्बद्ध तन्त्रिकाओ का समूह उच्चतर प्राणियो की तरह होता है। इनमे पुनरुत्पादन की अद्‌भुत शक्ति भी होती है। फिर गजब यह है कि इनकी कुछ जाति के कृमियो को यदि कई टुकडो मे काट दिया जाय तो प्रत्येक टुकडा पुनरुत्पादन की शक्ति से शेष सभी गायब भागो को फिर से उगा लेता है। दो-तीन हफ्ते की अवधि मे प्रत्येक टुकडा पूर्ण परिवर्धित प्रौढ बन जाता है।

इन्ही सब बाता से प्रेरित होकर डॉक्टर जेम्स मैकोनेल को यह सूझा कि देखें

सिखाये हुए चपटे कृमि में दो भाग करने और फिर दोनो भागो में पुनरुत्पादन करने पर 'सिर' और 'पूछ' से बने दोनो नये कृमि पहले सिखाई हुई बातो को याद रखते हैं या नही। इस काय मे अपने दो विद्यार्थियो की सहायता से उन्होने कुछ चपटे कृमियो को इस प्रकार प्रशिक्षित किया कि वे उनसे उद्दीपनो के प्रति 92 प्रतिशत अनुचेष्टा कर पाने मे सफल हो गये। तब प्रत्येक कृमि को दो भागो मे काटा गया और दोनो भागो को चार हफ्ते तक पुनरुत्पादन करने दिया गया। इस अवधि के अन्त मे प्रत्येक पुनरुत्पादित भाग पूर्व प्रणाली के अनुसार फिर से प्रशिक्षित किया गया। उनके आश्चय की सीमा न रही जब उन्होने देखा कि 'सिर' और 'पूछ' ने मौलिक प्रशिक्षण को एक ही प्रकार से आत्मसात किये रखा।

1959 मे, डॉक्टर जेम्स के परिणामो की घोषणा के बाद वाशिंगटन विश्वविद्यालय, सेंट लुई मे एनहार्ट और शेरिक ने भी भूलभुलैया वाली ट्रेनिंग देकर इन्ही पुनरुत्पादन के प्रयोगो को दोहराया और यही परिणाम प्राप्त किए। इसके बाद दुनिया के सभी कोनो पर प्रयोगकर्ताओ ने सैकडो बार इस मूलभूत तथ्य की पुनरावृत्ति कर ली है कि चपटे कृमियो मे काटने और पुनरुत्पादन के बावजूद भी स्मृति बनी रहती है।

राज की बात थी और है कि मस्तिष्कहीन पूछ कैसे कोई बात याद रख सकी। जब चपटे कृमि को दो भागो मे बाटा गया तो मस्तिष्क और तन्त्रिका-तन्त्र का अधिकाश अश सिर वाले भाग मे रहा। पूछ वाले भाग को नया सिर, एक जोडी आख, मस्तिष्क और अधिकाश तन्त्रिका कोशिकायें पुनरुत्पादित करनी पडी। इस पर भी अधिकाश 'पूछो' अर्थात पूछ वाले भागो से बने प्रौढो ने पुरानी ट्रेनिंग को पूरी तरह से आत्मसात् करके रखा। इसके बाद प्रशिक्षित या सिखलाये गये जन्तुओ को तीन या चार टुकडो मे काटे जाने पर भी यही परिणाम प्राप्त हुए।

इन परिणामो ने डॉक्टर जेम्स को यह सुझाया कि यह 'अकन' छोटे मस्तिष्क मे ही सीमित न होकर सारे शरीर से व्याप्त होना चाहिए। साथ ही यह धारणा भी मानी गई कि इस अंकन या अनुरेख को रासायनिक प्रकृति का होना चाहिए और इस बात से डॉक्टर जेम्स को हाइडेन की धारणा का भान हुआ कि राइबो-न्यूक्लीक एसिड (आर० एन० ए०) ही 'स्मृति अणु' है।

यह जानते हुए कि चपटे कृमि भूखे रहने पर स्वजातिभक्षी बन जाते हैं, इनमें से कुछ को प्रशिक्षित किया गया। फिर काटकर उनके टुकडे कर दिये गये और उन्हें भूखे स्वजातिभक्षी कृमियो को खिलाया गया। इसी तरह अन्य कुछ स्वजातिभक्षी कृमियो को अप्रशिक्षित कृमि खिलाये गये। तब दोनो प्रकार के स्वजातिभक्षी कृमियो को कोड सख्यायें देकर उनको प्रकाश व झटके वाली ट्रेनिंग दी गई। यह ट्रेनिंग एक भूलभुलैया के प्रकार के उपकरण मे दी जाती है। जब कृमि प्रकाश वाले भाग मे होते हैं तो वे अप्रभावित होते हैं किन्तु ज्यो ही वे काले या अधेरे भाग में आते हैं उन्हें एकदम बिजली का झटका लगता है। इस तरह वे काले भाग में आने से बचते हैं।

कोड सख्याओं के कारण ट्रेनिंग देने वाले आदमी को यह नहीं मालूम हो सकता

था कि कौन कृमि क्या है ? परिणाम स्पष्ट थे। जिन स्वजातिभक्षी कृमियो ने प्रशिक्षित शिकार या कृमिया को खाया था, वे सचमुच शुरू से ही अपेक्षतया उत्तम रहे। इस प्रकार हम देखते हैं कि वैज्ञानिको ने प्रयोगो द्वारा चपटे कृमिया में 'स्वजातिभक्षण विधि द्वारा प्रशिक्षण का स्थानान्तरण' करके दिखला दिया।

यह स्पष्ट कर देना भी परम आवश्यक है कि यद्यपि कई प्रयोगशालाओ मे इस आधारभूत तथ्य की पुनरावृत्ति कई बार की गई है तो भी वैज्ञानिक निश्चित रूप से यह कहने की स्थिति मे नही हैं कि वह क्या चीज है जिसका स्थानान्तरण होता है ? साथ ही कुछ और बातें भी हैं। जितनी अचरजभरी स्वजातिभक्षण सबधी अध्ययन वाली बातें हैं उतनी ही अचरजभरी यह बात भी है कि पेट के द्वारा सीधे पहुचाये गये ज्ञान का स्थानान्तरण उच्चतर जीवो मे खरा नही उतरता। चपेट कृमियो मे तो सीधा-सादा व सरलतर प्रकार का पाचन तत्र होता है। इनमे पाचक रस व अम्ल भी नही होते जबकि इसके विपरीत उच्चतर जीवा मे ये सब होते हैं। इसी उधेड़बुन में वैज्ञानिक लगे हैं, पर हो सकता है कि एक दिन आ जाय जब भौतिक रूप से भोजन ग्रहण करने से मस्तिष्क मे तदनुसार परिवतन किये जा सकें।

1902 के ग्रीष्म मे डॉक्टर जेम्स व उनके तीन विद्यार्थियो ने अप्रशिक्षित जतुओ की देह गुहा मे प्रशिक्षित जतुओ के राइबोन्यूक्लीक एसिड (आर० एन० ए०) के इजेक्शन लगाकर एक कृमि से दूसरे कृमि मे प्रशिक्षण स्थानान्तरण करने के प्रयत्न किये। उन्होंने कृमियो के पृथक् समूहो को अलग अलग प्रशिक्षण अनुभव दिये। कम से कम करीब 500 बार प्रशिक्षण मिल जाने के बाद उन्हें पीसा गया, उनसे आर० एन० ए० निकाला गया और इसके बाद अप्रशिक्षित कृमियो के शरीर मे सीधे ही उसका प्रवेश कराया गया। इन कृमियो को कोड सख्यायें दी गईं और तब सबको प्रकाश और झटके वाली ट्रेनिंग दी गई। (

यद्यपि ये प्रयोग अपरिष्कृत आरभिक अध्ययन के रूप मे थे और आर० एन० ए० भी शुद्ध न था तो भी डॉक्टर जेम्स व उनके सहकर्मियो ने यथेष्ट परिणाम प्राप्त किये। वे कृमि जिनको 'प्रशिक्षित' आर० एन० ए० का इजेक्शन दिया गया था वे अन्य प्रकार के इजेक्शन पाने वाले और सभी कृमियो की अपेक्षा कही अधिक उत्तम थे। यह भी ध्यान देने योग्य बात है, उन्होने यह सिद्ध नही किया कि आर० एन० ए० के इजेक्शनो द्वारा यादो का स्थानान्तरण होता है, यद्यपि प्रमाण इस परिकल्पना के ही पक्ष मे होते हैं। सोचिए कि यदि स्वजातिभक्षण करने और अगो के कूटने, पीसने और खिलाने वाली बात मानवो मे भी खरी उतर गई तो मानवता का ईश्वर ही मालिक है। कही शोषण की भावना से लोग अनर्थ न करने लगें।

इसी सदर्भ म कैमरन और उनके सहकर्मियो ने मक्गिल विश्वविद्यालय मे पिछले आठ वर्षों के अथक अध्ययन से कुछ निष्कर्ष निकाले हैं। उन्होने बताया कि सीधे मुह द्वारा या अन्त शिरा से (इन्ट्रावेनसली) खमीर या यीस्ट का आर०एन०ए० लेने पर मानव रोगी प्रभावित होते हैं। यह ढलती उम्र वाले लोगो मे पाई जाने वाली स्मृति क्षीणता

को कम कर सकता है और यहां तक कि स्मृति को प्रबल भी बना सकता है। तब सठिया जाने वाली कहावत झूठी पड सकती है और विज्ञान इसका निराकरण करने मे कम-रत है।

इन सब बातों के आधार पर कम से कम यह निष्कर्ष निकालना गलत न होगा कि आर० एन० ए० निश्चित रूप से स्मृति संचय से सम्बद्ध है। परन्तु हाइडेन तथा अन्य वैज्ञानिकों के अनुसार क्या आर० एन० ए० अनुरेख है? स्वय ही स्मृति अणु है? —इस बारे में अभी कोई कुछ नही जानता।

यदि आर० एन० ए० अंकन प्रणाली का एक छोटा अंश भी है तो यह बाहरी दुनिया से आने वाले आंकडों को संहिताबद्ध करने वाला तथा कोडीकृत ज्ञान को मस्तिष्क के एक भाग से दूसरे भाग को भेजने वाला विशेष साधन भी हो सकता है। यह शायद केवल संचय संयत्र का ही काय नही करता बल्कि अंतराकोशिकीय स्थानान्तरणकारी का काय भी करता है और यदि यह सच है और हम किसी दिन उस भाषा को समझने मे सफल हो जाए, जिसके द्वारा आर० एन० ए० स्मृतियों को संहिताबद्ध करता है, तो हम तंत्रिका-तंत्र मे आर० एन० ए० के इंजेक्शन द्वारा तंत्रिका कोशिकाओं को संदेश भेज सकते हैं और इस विधि से मस्तिष्क मे कई प्रकार का ज्ञान कृत्रिम रूप से रोप सकने मे भी सफल हो सकते है।

33

रोगाणुओ की सेन्सर—थाइमस ग्रन्थि

प्राणियो का शरीर ग्रंथियो के ही अनुसार बनता या बिगडता है और यदि हम कहें कि प्राणी जैसा भी होता है वह केवल ग्रंथियो के कारण ही तो यह झूठ नही। ग्रंथियो की परिभाषा करते हुए हम कह सकते है कि—ये शरीर के वे महत्त्वपूर्ण अग हैं जो शरीर की सुरक्षा, वृद्धि, परिवधन व विभिन्न आवश्यक जविक क्रियाओ के उचित सचालन के लिए विशिष्ट रस प्रवाहित करते हैं। शरीर मे ये निश्चित स्थाना पर स्थित होती हैं। साधारणतया आकार मे ये सूक्ष्म होती हैं परन्तु इसका मतलब यह नही कि ये बडी
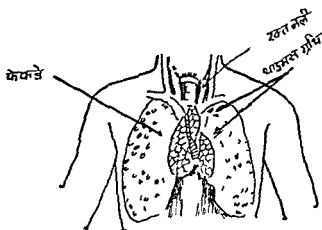
मानव शरीर में थाइमस ग्लैण्ड की स्थिति

होती ही न हो। कुछ बडी भी होती हैं, मनुष्य के हाथ के बराबर। पर आकार म ये चाहे छोटी ही होती हैं लेकिन काय मे बडी खोटी होती हैं। रचना के आधार पर इनको दो वर्गों मे बाटा जा सकता है। एक तो वे जिनमे कि वाहिनिया या नलिया होती हैं—वाहिनी ग्रथि (डक्ट ग्लडस) या बहि स्रावी (एक्सोक्राइन) ग्रथि कहलाती हैं क्योकि इनका रस या स्राव वाहिनियो द्वारा बाहर निकलकर निश्चित स्थान पर प्रवाहित होता है। इसके विपरीत दूसरे प्रकार की वाहिनीविहीन या नलिकाहीन (डक्टलेस ग्लडस)या अन्त स्रावी (एडोक्राइन) ग्रथि कहलाती हैं क्योकि इनमे वाहिनिया नही होता और

इनका रस या स्राव बनने पर वहीं से सीधे रक्त की धारा में प्रवाहित हो जाता है। इन वाहिनीविहीन ग्रंथियों के स्राव को 'हॉरमोन' कहते हैं। वाहिनी ग्रंथियों के उदाहरण हैं—लार ग्रंथियां, स्वेद ग्रंथियां, तेल ग्रंथियां, अश्रु ग्रंथियां, पाचन ग्रंथियां, यकृत आदि और वाहिनीविहीन ग्रंथियों के उदाहरण हैं—थायरोयड, पैराथायरोयड, पीनियल, पिट्यूटरी, अग्याशय, ऐड्रीनल, जननग्रंथियां आदि।

इस प्रकार थाइमस ग्रंथि एक वाहिनीविहीन ग्रंथि है जो शरीर के लिए बहुत ही अधिक महत्त्व की है। इसका नाम 'थाइमस' इसलिए पड़ा है कि देखने या आकृति में यह 'थाइम' या अजवाइन के पौधे की पत्तियों से बहुत मिलती-जुलती है और द्विभाजित होती है। ग्रीक भाषा में इस शब्द का अर्थ है 'साहस'। पुराने यूनानियों का विश्वास था कि यह ग्रन्थि ही 'साहस का स्थान' है, क्योंकि यह साहस से सम्बद्ध अंग हृदय के तनिक ऊपर ही स्थित होता है। मनुष्य में यह गर्दन के निचले भाग और वक्ष के ऊपरी भाग में स्थित होती है। गोश्त खाने वाले जबर्दस्त शौकीन की भाषा में तो इसे 'स्वीट ब्रेड' के नाम से पुकारा जाता है। जन्म के समय यह बच्चे की मुट्ठी के बराबर और 12 वर्ष की अवस्था तक पहुंचते पहुंचते मुर्गी के अण्डे के बराबर हो जाती है। फिर 15 वर्ष के बाद यह आकार में घटने लगती है और वृद्धावस्था में तो इसका अस्तित्व ही मिट जाता है।

साधारणतया यह होता है कि शरीर में जब कोई सूक्ष्म जीव, रोगाणु या जर्म प्रवेश करता है या दूसरे मनुष्य के ही अंग का प्रतिरोपण (ग्रैफ्टिंग) किया जाता है तो शरीर विचलित हो जाता है। वह उसे स्वीकार नहीं करता और उस पर शत्रु की तरह टूट पड़ता है। उसका नाश करने के लिए वह प्रतिविषों (ऐंटीबाडी) का निर्माण करता है और अपनी सुरक्षा के लिए उसे नष्ट कर देता है। सचमुच में सोचिये कि शरीर में अगर बाहरी वस्तुओं के प्रति इस प्रकार सतर्कता बरतने का प्रबंध न रहे तो शरीर का क्या ठिकाना, जिन्दगी दांव पर न लग जायेगी क्योंकि शरीर के नष्ट होने में इस तरह देर ही कितनी लगेगी। शरीर बाहरी वस्तुओं के प्रति प्रतिविषों का निर्माण कर उन्हें नष्ट कर डालता है—यह कहना तो बहुत आसान है पर इस सम्पूर्ण प्रक्रिया विशेष के पीछे क्या तारतम्य है, क्या असलियत है, यह अभी पूरी तरह से स्पष्ट नहीं है। संकटमुक्त और रोगमुक्त रहने के लिए शरीर को 'अपने' और 'पराये' का सूक्ष्म ज्ञान रखना बहुत ही आवश्यक है क्योंकि तभी तो वह हानि न पहुंचाने वाले अपने को अपना सकता है और हानि पहुंचाने वाले पराये को अस्वीकार कर एकदम नष्ट करने के लिए तैयार हो सकता है।

आजकल चूंकि एक मनुष्य की आंख, त्वचा, हड्डी, वृक्क (गुर्दे), हृदय का दूसरे मनुष्य पर प्रतिरोपण होने लगा है तो इस सन्दर्भ में अगर हम गुर्दे का उदाहरण दें तो बात अच्छी तरह से स्पष्ट हो जायेगी। यदि हम कई मनुष्यों के गुर्दों को देखें यहां तक कि सूक्ष्मदर्शी से भी तो उनमें हमें कुछ भी अन्तर नहीं नजर आयेगा। वे सब बिलकुल एक-से ही नजर आयेंगे। परन्तु जाने क्या बात है कि जब एक मनुष्य का गुर्दा दूसरे मनुष्य

पर प्रतिरोपित किया जाता है तो वह उतना ही उत्तेजित हो जाता है जितना कि एक देश दूसरे देश द्वारा एकदम आक्रमण कर दिये जाने पर होता है। यद्यपि इस प्रकार बाहरी चीजो को अपनी या पराई समझकर उन्हें अपनाने या नष्ट करने की क्रिया का सचालन अथवा नियत्रण किस प्रकार होता है यह स्पष्ट नही है, तो भी अत्यन्त आधुनिक खोजा के आधार पर यह तो कहा ही जा सकता है कि इस कार्य विशेष मे इस महत्त्वपूर्ण ग्रथि का बहुत बडा हाथ है। इसीलिए इसे प्रधान ग्रथि या 'मास्टर ग्लड' कहा जाता है। सर मैकफर्लेन बर्नेट के कथनानुसार इसका काय उन कोशिकाओ का नियत्रण करना है जो कि शरीर को बाहरी आक्रमणकारियो से बचाने के लिए जिम्मेदार हैं। भले ही ये बाहरी आक्रमणकारी चाहे सूक्ष्म जीव, रोगाणु हों अथवा दूसरे प्राणी के अग हो। सक्षेप में हम कह सकते हैं कि यह थाइमस ग्रथि की ही बिसात है जो कि शरीर के अपनो और परायो की पहचान का महत्त्वपूण काय कर पाती है। या यो भी कह सकते हैं कि यह एक स्वामिभक्त कुत्ते की तरह है जिसका एकमात्र उद्देश्य होता है अपने मालिक की रक्षा करना। जैसे कि कुत्ता अपने परायो की पहचान रखता है, अपनो को घर के भीतर दुम हिलाकर व प्यार जताकर प्रवेश करने देता है लेकिन परायो को अथवा हानि पहुचाने वालो पर भूककर उन्हे खदेडने व काटने के लिए दौड पडता है, ठीक इसी तरह यह भी रोगाणुओ के प्रति एकदम वैसा ही व्यवहार करती है।

कई सदियो से इस ग्रथि के बारे मे कुछ ज्ञात न था और यह कहकर पीछा छुडा लिया जाता था कि इसका काय अभी अज्ञात है परन्तु मनुष्य की स्वय की सुरक्षा का सवाल तो मुख्य है न, इसलिए इस पर आये दिन अधिक सूक्ष्मता और तन्मयता से अध्ययन हो रहा है और इसी अथक परिश्रम का सुफल है कि इसके बारे मे बहुत कुछ मालूम हो सका है। इस सन्दभ मे कि थाइमस ग्रथि शरीर म क्या भूमिका अदा करती है, सयुक्त राष्ट्र अमेरिका के प्रसिद्ध वज्ञानिक डाक्टर रोबट ए० गुड की खोज को सबके सम्मुख रखना उपयुक्त होगा। उन्होने एक नही, दो नही, तीन नही बल्कि 125 ऐसे बच्चो का अध्ययन किया जो कि 'अगामाग्लोब्यूलिनेमिया' नामक रोग स पीडित थे। यह जन्मजात रोग उस विशेष अवस्था मे होता है जब रक्त प्लाज्मा का 'गामा ग्लोब्यूलिन' नामक घटक उसमे अनुपस्थित होता है। वह यही पदाथ है जो कि विभिन्न सक्रमणो से लडने और उन्हें नष्ट करने के लिए शरीर मे विशिष्ट प्रतिविषो का निर्माण करने के काम आता है।

डॉक्टर गुड ने मालूम किया कि इन बच्चो मे अप्रत्याशित रूप से थाइमस की एक व्याधि 'थाइमोमा' भी थी। साथ ही उनमें गठिया और रक्तश्वेताणुमयता (ल्यूकेमिया) का भी प्रकोप था। और यही नही बल्कि रक्त की भी कुछ अपसामान्यता थी। थाइमस की अपसामान्यता तथा उससे सम्बद्ध इन रोगो और साथ ही रक्त क महत्त्वपूण घटक गामा ग्लोब्यूलिन की अनुपस्थिति ने डॉक्टर गुड को यह अनुमान लगाने के लिए विवश कर दिया कि अवश्य वह यही मुख्य ग्रथि है जो कि सारे शरीर म रोगों से लडने वाली विशिष्ट कोशिकाओ का निर्माण करने और ट्रेनिंग देने की सर्वेसर्वा है।

इस बात की पुष्टि के लिए उन्होंने चूहों और खरगोशों पर भी प्रयोग किये। पैदा होने के कुछ दिन बाद चूहों और खरगोशों से थाइमस निकाल देने पर उन्होंने देखा कि वे बाद में सूक्ष्म जीवों या रोगों के कीटाणुओं से अपनी रक्षा करने के लिए प्रतिविष बनाने में असमर्थ रहे।

डॉक्टर गुड ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है—अब आगे की निरन्तर खोजों में थाइमस ऊतकों को भी 'थाइमस बैंकों' में सुरक्षित रखा जा सकता है। ठीक उसी तरह जिस तरह कि आजकल हड्डी, त्वचा, खून, आंखों आदि को उपयोग के लिए बैंकों में सुरक्षित रखा जाता है। इस तरह तब संक्रमणशील होने वाले मनुष्यों में थाइमस के प्रतिरोपण से उचित संक्रमण प्रतिरोध स्थापित किया जा सकता है और रोगों से बचा जा सकता है।

34

रोगाणु और शरीर के अणु

दो दलो मे कुश्ती, रस्साकशी या लडाई होने पर साफ है कि गुत्यमगुत्था के बाद एक दल जीतेगा। एक जोर लगाता है तो दूसरा उससे और अधिक जोर लगाता है। इसी तरह हमारे शरीर और बाहरी वातावरण की भी रस्साकशी चलती है। अपने बचाव के लिए हमारे शरीर मे कई उपाय हैं और उनके बूते पर वह वातावरण की चालो को विफल करता रहता है। शरीर मे यदि ये उपाय न हो तो वह दाव पर लग जाय और अनमोल कचन काया बस देखते देखते ही लुट जाय।

हमारे चारो ओर का वातावरण भानुमती का पिटारा है। इसमे अनगिनत चीजें भरी है। वातावरण की वायु एक ओर तो सजीवनी गैस है लेकिन दूसरी ओर कई

कई लाख गुना बडा किया हुआ शरीर का प्रतिरक्षी अणु। बीच में डमरू जैसा योजक गधक परमाणु और दोनों ओर खाच-सी है, जहा प्रतिजन या रोगाणु को घेर कर नष्ट किया जाता है।

रोगाणुओ का पोषण माध्यम भी। तभी तो कहा गया है कि वातावरण के जहरीले माध्यम मे हर समय ही कीटाणु जीवाणु, विषाणु रोगो के जर्म आदि मडराते रहते हैं, पर यह हमारे शरीर की ही बिसात है कि वह सामान्यतया बेलाग निकल जाता है। कभी-कभार की बात हम नही करते। वातावरण के रोगाणु यदि उन्नीस की चाल करते हैं तो शरीर के अणु बीस की, लेकिन जब शरीर की दाल नही गलती तो बेचारे को डॉक्टर की शरण मे जाना पडता है। फिर वह रोगाणु की इक्कीस की चाल को पुन अर्जित बाईस की चाल से रद्द कर देता है।

बुखार, सरदर्द, चेचक, माता, खसरा, कुकुरखांसी, खांसी, जुकाम, हैजा, न्यूमोनिया, डिफ्थीरिया, मलेरिया, टायफायड, फ्लू, इनफ्लूएंजा, पेचिश आदि अनेक बीमारियां इसीलिए होती हैं कि बाहरी रोगाणुओं का आक्रमण होता है। जितने भी रोगाणु होते हैं वे आक्रमण करने पर हमारे शरीर में विष या टॉक्सिन उत्पन्न कर शरीर को विषाक्त कर देते हैं, परन्तु इनके आक्रमण होते ही शरीर भी चुप नहीं बैठता। तुरन्त ही कार्यवाही शुरू कर देता है। उसके अणुओं की फौज रोगाणुओं की फौज पर टूट पड़ती है और उनके नाश के लिए प्रतिविष या ऐंटीटॉक्सिन उत्पन्न कर देती है। इस प्रकार घमासान लड़ाई में जो 'लाशें' होती हैं या मल होता है वह 'पस' के रूप में बाहर निकाल दिया जाता है। सामान्यतया तो शरीर के अणुओं की फौज स्वामिभक्त होती है और थोड़े से खून-खराबे के बाद अमन चैन हो जाता है, शरीर में शांति हो जाती है। पर फौज ही तो है, कभी-कभी जब 'आर्मी रूल' होने लगता है या बगावत होने लगती है तो गड़बड़ी भी हो जाती है। तब अनेक असाध्य रोग—जैसे कि एलर्जी, जोड़ों का दर्द, र्‍यूमेटिक ज्वर आदि—शरीर पर सवार हो जाते हैं।

शरीर के अणुओं की इस फौज के नियम सामान्य फौजों के नियमों से भी कड़े होते हैं। इसके गार्ड या सन्तरी बड़ी सख्ती से आठों पहर पहरा देते हैं। मजाल क्या कि कोई बाहरी इनके 'मिलिट्री एरिया' में घुस जाय। यह 'फौज' इतनी सख्त होती है कि शरीर के भले के लिए भी किसी टूटे या कटे अंग के बदले यदि किसी दूसरे का अंग लगाया जाय तो वह एकदम उसे अस्वीकारते हुए आक्रमण कर नष्ट कर देगी। बड़ी मुश्किल से जांच परख के बाद किसी एक से रक्त-वर्ग वाले इक्के दुक्के मनुष्य के अंग को स्वीकारते हैं अन्यथा नहीं।

ऐंटीजेन बनाम ऐंटीबॉडी उर्फ विष और प्रतिविष की गुत्थमगुत्था

बाहरी रोगाणु द्वारा उत्पन्न विषय या टाक्सिन को विज्ञान की तकनीकी भाषा में 'प्रतिजन' (एंटीजेन) और शरीर द्वारा उसके निराकरण के लिए उत्पन्न किए गए प्रतिविष या एंटीटॉक्सिन को 'प्रतिरक्षी' (एंटीबॉडी) कहते हैं। प्रतिजन या एंटीजेन प्रायः प्रोटीन या कार्बोहाइड्रेट पदार्थ होते हैं और इनका नाम भी इसीलिए पड़ा है कि ये जीव में विशिष्ट प्रतिरक्षियों को प्रेरित करते हैं। प्रतिरक्षी भी प्रोटीन पदार्थ होते हैं जो संक्रमण के दौरान हमारे शरीर में प्रतिजन के अनधिकार प्रवेश के कारण उत्पन्न होते हैं और उसको प्रभावहीन बना देते हैं। प्रतिरक्षियों और प्रतिजनों की रासायनिक क्रिया बड़ी विशिष्ट होती है अर्थात कुछ विशेष प्रकार के प्रतिरक्षी केवल कुछेक प्रतिजनों से ही रासायनिक क्रिया करते हैं, औरों से नहीं। कशेरुकी या हड्डी वाले जानवरों और कुछ अकशेरुकियों या बिना रीढ़ की हड्डी वाले जानवरों (जैसे कीट) में प्रतिरक्षी उत्पादन परजीवियों, विशेषकर जीवाणु (बैक्टीरिया) और विषाणु (वाइरस) के विरुद्ध बचाव प्रक्रिया है।

कभी-कभी कई रोगजनों या रोगकारियों का एक ही प्रतिजन होता है और एक

के प्रति रोगसहता होने से दूसरे के प्रति भी रोगसहता हो जाती है, जैसे कि वैक्सीनिया और चेचक। प्रतिरक्षी द्वारा प्रतिजन के मिलने से परजीवी निष्क्रिय हो जाता है, मर जाता है या रुधिर के भक्षकाणु के लिए तैयार कर दिया जाता है, उसके विष को प्रभाव हीन कर दिया जाता है। प्रतिरक्षी का निर्माण रुधिर के प्लाज्मा द्वारा होता है। एक दफा उत्पन्न हो जाने पर ये मुख्यतया रक्त में ही रहते हैं और प्रतिजन के नष्ट हो जाने या अदृश्य हो जाने के बाद भी काफी समय तक बने रहते हैं। इस तरह ये उसी प्रकार के परजीवी के नये संक्रमण से शरीर को रोगसह बनाये रखते हैं। टीका लगाने पर शरीर में जो रोगसहता हो जाती है वह कृत्रिम रूप से प्रतिरक्षी के उत्पन्न हो जाने के कारण ही होती है। लेकिन कभी-कभी इंजेक्शन लगाने पर परजीवी या रोगाणु से असम्बद्ध पदार्थ भी प्रतिजन बन जाते हैं, जैसे कि कोई बाहरी प्रोटीन।

शरीर एक . प्रोटीन अनेक

बिलकुल समान यमजों (जुड़वा) को छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति के प्रोटीन दूसरे से कुछ भिन्न होते हैं। एक निकट संबंधी से त्वचा लेकर शरीर में रोपने पर वह भी पराई मानी जाती है और बाहरी पदार्थ होने के कारण तुरन्त ही प्रतिरक्षियों द्वारा उस पर आक्रमण कर दिया जाता है। कभी एक प्रकार के प्रतिरक्षी एक से अधिक प्रकार के आक्रामकों के प्रति अपना कार्य करते हैं। करीब डेढ़ सौ वर्ष पहले इस बात का पता लगाया गया था कि गो चेचक (काउपॉक्स) का विषाणु (वाइरस)—पशु रोगकारी जो मानव के लिए प्राय हानिरहित होता है—मानव शरीर में ऐसे प्रतिरक्षियों को उत्प्रेरित करता है जो कि भयानक चेचक (स्मॉल पॉक्स) के प्रति भी उतना ही प्रभावपूर्ण होता है। इसी आधार पर चेचक का टीका बनाया गया है और इसकी खोज का श्रेय है अंग्रेज, डॉक्टर एडवर्ड जेनर को।

पोलिओ के विषाणु के टीके के निर्माण में डाक्टर साक ने पोलिओ विषाणु के अणुओं पर फौरमैल्डीहाइड नामक रसायन की अभिक्रिया कराई। इससे विषाणु को मारकर उसके अमीनो अम्लों की उस संरचना में परिवर्तन कर दिया गया जिससे संक्रमण होता था। इसमें गजब की और हमारे फायदे की बात यह होती है कि प्रतिरक्षी बनने में प्रेरणा देने वाले अमीनो अम्ल अप्रभावित रहते हैं। बाद में डॉक्टर साबिन अन्य उन्नत उपायों के बाद सजीव पोलिओ विषाणु में ऐसे परिवर्तन करने में सफल हो गये कि इधर तो विषाणु संक्रमणहीन हो गया और उधर रोग के प्रति प्रतिरक्षी-उत्पादन भी जोरों से हो सकता था।

ये प्रतिरक्षी रुधिर-प्लाज्मा के 'गामा ग्लोबुलिन' नामक सूक्ष्म अंश में रहते हैं। सिद्ध होने के कारण रासायनिक विश्लेषण में ये धता बता जाते हैं क्योंकि इनके अणु इतने सूक्ष्म व विविध प्रकार के होते हैं कि हाथ ही नहीं धरने देते।

ये प्रतिरक्षी जटिल अणुओं के बने होते हैं और केवल कुछेक विशेष बाहरी प्रोटीनों के विरुद्ध ही प्रतिक्रिया दिखाते हैं। प्रोटीनों में अमीनो अम्लों की लम्बी अनु-

श्रृखलायें होती हैं। यो तो प्रोटीनो मे 20 प्रकार के अमीनो अम्ल होते हैं पर उनके सयोग और क्रमचय से अनेक प्रकार बन जाते हैं। कहा जाता है कि प्रतिरक्षी अणु मे अमीनो अम्लो की चार अनुश्रृखला होती हैं और प्रत्येक अनुश्रृखला मुडे तुडे रूप मे इस प्रकार रहती है कि उनके घटक रासायनिक दृष्टि से परस्पर मिल जाते हैं। प्रतिरक्षी
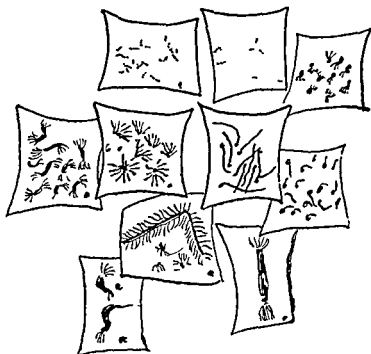
विभिन्न प्रकार के जीवाणु

अणु की ये चारो अनुश्रृखलायें बीच मे गधक परमाणु द्वारा बधी होती हैं और दोनो ओर दो हाथ जैसी रचनायें भी होती हैं कि एक दो बाहरी रोगाणुआ को गिरफ्त म लेकर पटकनी दी जा सके।

खून की फौज भक्षकाणु व लसीकाणु

हमारे शरीर के रुधिर मे कई कणिकायें होती हैं, जैसे लाल रुधिर कणिका, श्वेत रुधिर कणिका, पटिटकायें, भक्षकाणु लसीकाणु आदि। इनमे प्रत्येक के जिम्मे अलग अलग काम होते हैं। भक्षकाणु और लसीकाणु के जिम्मे बाहरी पदार्थों का भक्षण और नाश करना है। एक सामान्य उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायेगी। एक साधारण फोडा हो जाने का अथ है बाहरी पदार्थों का आक्रमण। आक्रमण वाले स्थान पर तुरन्त ही भक्षकाणुओ का अपने सकेतो द्वारा जमाव हो जाता है। सारे भक्षकाणु आक्रमण कारी पर घेरा डाल देते हैं। यह आक्रमणकारी सामान्यतया 'स्टैफाइलोकोक्स' होता है जो त्वचा से अन्दर घुसने के बाद खून मे गहरे पैठना चाहता है। लेकिन इसक यह करने

के पहले ही भक्षकाणु इसका कचूमर निकाल देते हैं और इन सबके मिलने से विषैला तरल या 'पस' जमा हो जाता है। इसे बाहर निकाल दिया जाता है अन्यथा यह सारे शरीर के रक्त को दूषित कर रुधिर सक्रमण या सैप्टीसीमिया कर सकता है। ऐसे हैं हमारे ये रक्षकाणु भक्षकाणु जो मरते दम तक लडते रहते हैं और शरीर की रक्षा में शहीद हो जाते हैं, बगैर परवाह किये कि परमवीर चक्र मिलेगा या नही।

रक्त के साथ ही एक और तरल होता है जिसे लसीका या 'लिम्फ' कहते हैं। नवजात शिशु मे लसीका तन्त्र अल्पविकसित होता है और रक्षा करने वाले प्रोटीन या गामा ग्लोबुलिन उसमे नही होता। छ महीने के बाद जाकर कही उसम सामान्य गामा ग्लोबुलिन स्तर बन पाता है। इस बीच उसकी रक्षा प्रसव काल मे माता द्वारा पाये गये गामा ग्लोबुलिन से होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन प्रतिरक्षियो द्वारा ही हमारा शरीर सुरक्षित रहता है। सुरक्षा की यह अवधि अलग अलग रोगो म अलग-अलग तरह से होती है। कुछ सक्रमणो, जैसे खसरा (मीज़ल) आदि मे यह जिन्दगी भर चल सकती है किन्तु औरो मे जैसे कि न्यूमोनिया मे यह अल्पकालीन होती है। वैक्सीन या टीके इसीलिए लगाये जाते हैं कि शरीर मे रोगाणु विशेष के प्रति रोगसहता उत्पन्न की जा सके।

'अलाओ-बलाओ का बल और विज्ञान का छल

जरा उस समय की कल्पना कीजिये जबकि टीको का आविष्कार नही हुआ था और लोग चेचक, माता आदि रोगो से मर जाया करते थे और यदि बच भी गय तो कुरूप और विकृत चेहरे वाले हो जाते थे। इसे लोग दैवी कोप या बला का प्रकोप समझते थे और ओझा आदि झाड फूक मे लगे रहत थे। और तो और, ये रोग राजा रानियो को भी नही बख्शते थे और वद्य हकीम उनका उपचार करने मे भी असमथ होते थे। मिश्र के बादशाह (फेरोआ) रैमीसी 5 के ममीकृत (ममीफाइड) चेहरे पर अभी तक ये भयानक रोग शहादत के रूप म मौजूद हैं। आयुर्विज्ञानी इतिहासकारो का कथन है कि ये चेचक के ही दाग हैं। इस प्रकोप से बचन का मानव के पास कोइ उपाय था ही नहीं, बस यही कि चुप होकर भाग्य को कोसते रहो। आज हमारा ऐसा रोगो के प्रति निर्भय बनना विज्ञान की कृपा से है।

35

चेचक

चेचक के नाम से एकदम चेचक वाला चेहरा सामने आ जाता है, जिससे सभी परिचित हैं। यह एक भयानक, ससगज तथा ज्वरमय रोग है जो विपाणु या वाइरस से उत्पन्न होता है। ज्वर आना, त्वचा के फूटन स फुंसियो का उत्पन्न होना और फिर सूखकर पपडी बन जाना इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। शरीर व चेहरे पर दाग पड जाना तथा चेहरे का कुरूप बन जाना इसी के दुष्परिणाम होते हैं।

विपाणु, जीव व अजीव के बीच के ऐसे सूक्ष्म जीव हैं जो प्रोटीन-अणुओ के रूप मे होते हैं। ये प्राणी तथा पौधो दोना म विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं। कुछ विशेष विपाणुओ के विष के कारण ही मानव मे चेचक रोग होता है।

यह विश्वव्यापी रोग है, किसी भी देश क लिए नया नही। चीन के चियू वश में चेचक 'ताइ तू' के नाम से जाना जाता है। चीन के साहित्य मे भी इस महामारी का वणन गम्भीरतापूवक किया गया है। रोम मे चेचक का प्रकोप 312 ई० मे हुआ था और इसके कारण वहा बहुत मौतें हुई। रोमन राज्य के उत्थान पतन मे भी इसका बडा हाथ रहा है। वहा के सामाजिक और राजनतिक जीवन मे इसने काफी व्यवधान उत्पन्न किया। मक्का म चेचक का प्रकोप 569 ई० म हुआ था लेकिन वहा क लिए यह रोग उस समय वरदान सिद्ध हुआ। कारण कि उस समय मक्का राज्य आक्रमण कारियो से बच गया क्योकि आक्रमणकारी इस भयकर बीमारी के डर से भाग खडे हुए।

अरब के गैर ईसाई लोग इस रोग को स्पेन लाए और फिर बाद मे यह फ्रास मे फला। 570 ई० म बिशप मौरियस ने फ्रास और इटली मे फैलती हुई महामारी का वणन किया है। उनके अनुसार चेचक का तत्कालीन ज्ञात नाम 'वेरिओला' था जो कि लटिन शब्द 'वेरियस' से बना है। इसका अथ है 'विभिन्न' यानी शरीर पर विभिन्न प्रकार के चकत्ते व दाग पड जाना।

अरब के महान् चिकित्सक 'अबू बकर एल रजी राजा' ने सबसे पहले चेचक के लक्षणो का सही विवरण दिया। उसने ये मुख्य लक्षण बताए—पीठ मे दद, नाक म उत्तेजना, बुरे सपने, बुखार, गाला म जलन, आखें लाल होना, खराश और बेचैनी।

इसके अलावा रोगी की जीभ कडवी होना, सिर मे दद और शरीर मे एक साथ जुडे हुए छोटे छोटे दाने उत्पन्न होना, इसके अन्य लक्षण हैं। उसने कहा कि बच्चो को यह बीमारी प्राय हो जाया करती है क्योकि उनका खून नई शराब की तरह सक्रिय होता है।

समय के साथ साथ मानव ने इस रोग से अपने को बचाने का उपाय सोचा, जो कि स्वाभाविक था। चीन तथा भारत मे यह देखा गया कि एक बार इस रोग का शिकार होने का अर्थ है कि दूसरी बार यह वार नही कर सकता। अत स्वस्थ व्यक्ति को इस रोग की भयानकता से बचाने के लिए हलका सा सक्रमण कराया जाने लगा। रोगी व्यक्ति की फुसी से 'पस' लेकर स्वस्थ व्यक्ति की कोहनी मे प्रवश कराया जाता था कि वह रोग से सुरक्षित हो जाय। 18वी शताब्दी के पूव मे टर्की म चेचक के इस प्रकार के टीके का प्रचलन दो वृद्ध स्त्रिया किया करती थी। वहा पर तत्कालीन ब्रिटिश राजपूत की पत्नी लेडी मेरी मोन्टेगू उनके इस तरीके से इतनी उत्साहित हुई कि उन्होंने भी उनसे यह काम सीखा। 1718 ई० म जब वे इगलड आइ तो उन्हाने चेचक के टीके को बढावा दिया। 1721 ई० मे उनकी पुत्री को सावजनिक रूप से दरबार के चिकित्सको के सामने टीका लगाया गया और इस बात की सफलता ने सारे देश मे सन सनी फैला दी।

भारत मे 19वी शताब्दी के उत्तराद्ध मे चेचक क कारण मरने वालो की सख्या बढती जा रही थी। सन 1873 74 मे करीब 5 लाख व्यक्ति रोगी हुए। इसी दौरान इगलड मे चेचक से 44,000 लोगो की मत्यु हुई। फ्रास मे यह महामारी फ्रास और फारस की लडाई के दौरान फैली। 2,00,000 सनिक इससे पीडित हुए और 25,000 लोगो ने प्राण गवाये। पेरिस मे भी करीब इतने ही लोग रोगी हुए और जिसमें से 18,000 व्यक्तियो की मृत्यु हुई। 1885 ई० मे मौन्ट्रियल के एक रेलव कमचारी को यह रोग हुआ पर उसका ठीक निदान न होने से यह 20,000 और लोगो मे फैल गया जिसमे 3,000 लोगो को जान से हाथ धोना पडा। इसी बीच मिश्र मे भी 3,000 लोग काल के गाल मे जा पहुचे।

मिश्र के बादशाह (फेरोआ) रैमेसी पचम के ममीकृत शरीर के अध्ययन से चेहरे पर जो दाग दिखाई देते हैं उनसे अनुमान लगाया गया है कि वह अवश्य कोई भयकर रोग रहा होगा। आयुर्विज्ञानी इतिहासकारो के अनुसार यह रोग चेचक ही था। देर सबेर बचपन या बुढापे मे कभी न कभी यह अवश्य आक्रमण करता है। इसके लिए मौसम, ऋतु उम्र, लिंग, स्वभाव आदि किसी भी प्रकार का प्रतिबध नही है। कौन छोटा है, कौन बडा, कौन अमीर है, कौन गरीब, यह सब कुछ चेचक नहीं देखता। इसके सामने हमारी सारी शक्ति क्षाण हो जाती है और हार माननी ही पडती है।

अनेक राजा रानी भी इसके शिकार हुए हैं। इगलड की महारानी मेरी द्वितीय की मृत्यु का कारण यही रोग था। 50 वर्षों के अ दर ऑस्ट्रिया के राजघराने के ग्यारह व्यक्ति इसी से मरे और 17वी शताब्दी म योरोप के लगभग छ करोड व्यक्ति इसके

शिकार हुए। सम्राट जोजेफ प्रथम, फ्रांस का राजा लुई पन्द्रहवां, जार पीटर द्वितीय, फ्लैन्डर्स का काउन्ट बाल्डविन आदि को इसका शिकार होना पडा। इगलैंड की रानी एन और फ्रास का राजा लुई चौदहवा इस रोग से बाल-बाल बचे।

यह रोग जगल की आग की तरह चारो ओर फैल जाता है। इससे दुनिया मे प्रतिवर्ष एक लाख मानव रोगी बनते हैं और 25,000 की मत्यु होती है। पुराने जमाने के चिह्नों से ज्ञात होता है कि इसके कारण लोगो की क्या दुदशा होती थी। उस समय टीके का आविष्कार जो नही हुआ था। लगभग 160 वष पहले चेचक के नियन्त्रण मे एक टीका सफल हुआ और तभी से चेचक के टीके का प्रचलन हो गया। इस रोग के टीके क आविष्कार का श्रेय एक अग्रेज डॉक्टर एडवड जेनर को है। जेनर ऐसे ग्रामीण क्षेत्र के थे जहा यह अन्धविश्वास प्रचलित था कि जिसे गो चेचक (काउपॉक्स) होता है वह चेचक से रक्षित हो जाता है। यही अन्धविश्वास जेनर के वैज्ञानिक अनुसधान की शुरुआत थी और अन्तत उन्होने यह सिद्ध करके दिखा दिया कि यह अन्धविश्वास वास्तव मे वैज्ञानिक सत्य था।

जेनर के महान् कम से प्रसन्न होकर रूस की सम्राज्ञी और एलेक्जेन्डर प्रथम की पत्नी, एलिजाबेथ एलेक्जीयेवना ने खुश होकर जेनर को हीरो से जडी एक अगूठी भेंट की। इससे सामूहिक टीका अभियान को बहुत बल मिला और जनता मे टीके का प्रचार जोर शोर से शुरू हो गया। राज्य मे जिस बच्चे को सबसे पहले चेचक का टीका लगा उसे सेन्ट पीटसबग मे धूमधाम से रथ मे घुमाया गया था।

36

हीमोफीलिया मनुष्य का विलक्षण रोग

हीमोफीलिया शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक भाषा के दो शब्दो 'हीमो' और 'फीलोस' से हुई है, जिसका अथ हुआ रक्तप्रिय रोग अर्थात् वह रोग जिसमें तनिक सी चोट खरोच लगने, कटने या चोटो के बाद रक्तस्राव होने यानी खून बहने पर खून बहुत धीरे धीरे जमता है या बिलकुल जमता ही नही। खून का थक्का बनता ही नही, जिसके कारण खून लगा तार बहता ही चला जाता है और तनिक देर मे ही मनुष्य की मत्यु हो जाती है। वसे तो यह रक्तपिपासु रोग बहुत कम होता है किन्तु फिर भी हजारो की सख्या मे हीमो फीलिया के विविध प्रकार के रोगी पाये ही जाते हैं। इसी के हल्के फुल्के प्रकार मनुष्य को इस तरह रोगी बनाये हुए हैं कि उन्हें स्वय रोग का पता ही नही चलता। कुछ रोगी रोगसह होते हैं जिन पर रोग का कोई कुप्रभाव ही नही पडता।

यह रोग वशानुगत तथा लिंग सहलग्न होता है। इसकी विशेषता यह है कि इसकी वाहक स्त्रिया होती है जो स्वय तो रोगसह होती हैं लेकिन क्यामत बरपा देती हैं पुरुष जाति पर। इस विचित्र रोग मे रोगी (वाहक) किन्तु रोगसह माता ही अपने पुत्र को मातृक गुणो के साथ रोगदान भी कर देती है। पुरुष रोगी के जितने भी बच्चे होगे वे सब तो सामान्य होगे और यहा तक कि उनके लडके और नाती भी किन्तु उसकी लडकियो मे से प्रत्येक इस निगोडे रोग के 'जीन' की वाहक होगी। इन लडकियो की शादी और बच्चे होने पर लडकियो मे से आधी रोग की वाहक और लडको म से आधे हीमोफीलिया के रोगी होंगे। इस प्रकार आनुवशिकता के द्वारा रोगी पिता के पोते रोग ग्रस्त हो जाते हैं और रोग कई पीढिया को लाघकर कही आगे जाकर प्रकट होता है, जबकि परिवार वालो को उसकी याद तक नही रहती।

कुछ इतिहासप्रसिद्ध उदाहरण

रूस के अतिम जार के पुत्र के साथ भी यही घटना घटी थी। उपचार के लिए अनेको प्रतिभासम्पन्न चिकित्सक बुलाये गये किन्तु जार के एकमात्र उत्तराधिकारी को बचाने मे उनके सब प्रयत्न निष्फल रहे। ठीक इसी प्रकार की घटना स्पेन के राजपरि वार मे भी घटी क्योकि स्पेन का राजकुमार भी इसी रोग का मरीज था। इस प्रकार हम

देखते हैं कि इतिहासप्रसिद्ध दो बड़े राजवंशों का लोप केवल इसी कारण हो गया कि उनके होने वाले उत्तराधिकारी अधिरक्तस्रावी (ब्लीडर) थे।

रक्तस्राव और थक्का बनना

सामान्यतया यह होता है कि खरोंच लगने या कटने पर जब खून बहने लगता है तो रक्त में फाइब्रिन नामक प्रोटीन पदार्थ के सूक्ष्म तथा बारीक धागे एकदम चारों ओर प्रवाहित होने लगते हैं। मकड़ी के घने जाल की तरह ये धागे, रक्त कणिकाओं को मक्खी की तरह घेर लेते हैं, जिसके फलस्वरूप रक्तकणिकाओं का बहाव मन्द होते-होते बिलकुल ही बन्द हो जाता है, परन्तु हीमोफीलिया के रोगियों में ऐसा नहीं होता और इसीलिये खून का बहना बन्द नहीं होने पाता।

फाइब्रिन के ये धागे बहुत बारीक तथा लचकदार होते हैं और खून का थक्का बनाने का कार्य करते हैं। प्रत्येक मनुष्य के शरीर में प्रकृति प्रदत्त 'फर्स्ट एड बॉक्स' (प्राथमिक सहायता उपकरण) होता है जो फौरन थक्का बनाकर कटे स्थान पर रुधिर-प्रवाह रोकने के लिए डाट का-सा काम करता है। जिन लोगों में विटामिन 'के' की कमी या बिलकुल अभाव होता है उन्हीं में यह रोग होता है क्योंकि रक्तस्राव रोकने तथा थक्का बनाने के लिए जो तत्त्व आवश्यक हैं, विटामिन 'के' की गड़बड़ी से रक्त में उनका निर्माण ही नहीं हो पाता। इसी की क्रिया से कटने पर पहले 'प्रोथ्रॉम्बिन' नामक पदार्थ बनता है, फिर कैल्शियम लवणों की उपस्थिति में प्रोथ्रॉम्बिन 'थ्रोम्बिन' में और तब थ्रोम्बिन 'फाइब्रिनोजन' को फाइब्रिन में बदल देता है और यदि इसका निर्माण नहीं होगा तो रुधिरस्राव बन्द होने का सवाल ही नहीं उठता।

वसा में घुलनशील यह विटामिन के, प्रकृति में सभी हरे पौधे-पत्तियों में विशेषकर पालक, पातगोभी, रिजका तथा जानवरों में मुख्यतया सुअर की कलेजी आदि में पाया जाता है। यह भी कहा जाता है कि शायद आन्त्र में पचे हुए भोजन के अवशोषण के समय कुछ आन्त्र जीवाणुओं की क्रियाशीलता द्वारा भी यह विटामिन उत्पन्न होता है।

रोग का भय

रोग के दबे या अप्रभावी लिंग सहलग्न जीन के अध्ययन द्वारा ही इसका निर्धारण किया जा सकता है। रोग के भय के कारण अधिकांश रोगियों और उनके परिवारों की देखरेख आवश्यक हो जाती है। अन्य सामान्य बच्चों की तरह इनके बच्चे भारी भरकम तथा कड़ा काम नहीं कर सकते क्योंकि जरा सी खरोंच लगी नहीं कि खून बुरी तरह से बहने लगा। यहां तक कि साधारण से दांत को निकलवाते समय भी बहुत ही एहतियात और सावधानी की आवश्यकता होती है अन्यथा मृत्यु अवश्यम्भावी है और सावधानी बरतने पर भी एकाएक रोगी के शरीर में कहीं भी किसी स्थान पर—आमाशय, वृक्क, वक्ष, त्वचा पेशियों या अन्य कहीं भी रक्तस्राव हो सकता है। कभी कभी घुटने, गुल्फ या कुहनी की कोशिकायें संधियों के अवकाशों (रिक्त स्थानों) में रक्त प्रवाहित करने

लगती हैं। ज्यो ही रक्त तन्त्रिकाओ मे दबाव बढता है त्यो ही दद भी बढता जाता है और रोगी बेचैनी से छटपटाते हुए हाथ पाव झटकने लगता है। यदि ठीक से उपचार न हो तो स्थायी अपगता तो साधारण सी बात है।

आधुनिक उपचार

आजकल रक्तस्राव का मुख्य और प्रचलित उपचार है ताजे रक्त और प्रतिरक्त स्रावकर्ता (ऐ टीहीमोफीलिक एजेन्ट) वाले प्लाज्मा का तुरत सचारण, जिससे खून का बहाव एकदम ब द हो सके, किन्तु रक्त तथा प्लाज्मा का सचारण होते हुए भी घडी भर मे ही रोगी का काम-तमाम हो सकता है। अन्य रोगो मे कम से कम कुछ उपचार करने धरने का समय तो मिलता है किन्तु इस विचित्र तथा भयानक रोग मे तो यह भी नसीब नही। चोट खरोच लगी नही कि एकदम खून बहा और फौरन मृत्यु। इसीलिए ब्लड बको की उपयोगिता है कि वक्त बेवक्त वहा से रोगी के ब्लड-ग्रुप का रक्त लेकर तत्काल ही उसके शरीर मे सचारित किया जा सके।

औषधि जगत मे थक्काकारक के विकल्प या एवज मे प्रमुक्त होने वाले पदार्थ की खोज के लिए वैज्ञानिक असख्य पदार्थों की परीक्षा मे लगे हुए हैं। ऐसे पदार्थों में प्रमुख हैं---मटर के सघटक, हिस्टामाइन, स्त्रैण लिंग हॉरमोन, विटामिन के०, ऐस्कोर्बिक अम्ल, नीबू का सत, सर्पविष आदि। आशा है कि कमरत वैज्ञानिको की निरतर साधना के फलस्वरूप अवश्य ही भविष्य मे इस विलक्षण रोग पर पूरी तरह से विजय प्राप्त कर ली जाएगी।

37

विकासवाद का हमारे क्रियाकलापो पर प्रभाव

किसी भी चीज की उत्पत्ति मे शनै शनै होने वाला परिवतन ही विकास है और पौधो और प्राणियो यानी जीवो का विकास ही जैव विकास (ऑर्गेनिक ईवोल्यूशन) है। जितने भी जीवधारी हैं उनके अध्ययन से लगता है कि उनमे आपसी सबध है और उनका उद्भव प्राचीन सरल व साधारण जीवो से हुआ है।

प्राणियो के सदर्भ मे अमीबा से लेकर मानव या होमो सेपिएस (बुद्धिमान मानव) तक प्राणियो का दीघ इतिहास विकास यात्रा कथा ही है। चाल्स रौबट डारविन के अनुसार परस्पर सबधित जीव जातिया (स्पीशीज) एक दूसरे से इसलिए मिलती जुलती हैं कि उनके पूवज एक थे, और साथ ही वे भिन्न भी होते हैं तथा उनमे आनुवशिक (जीनेटिक) अतर पाए जाते हैं। उनके आनुवशिक अतर या विभिन्नताए शनै-शनै मिल-जुलकर नयी जातिया उत्पन्न करती हैं। इस तरह नयी जातिया विकसित हो जाती हैं।

विकास की परिभाषा इस तरह दे सकते हैं—"पौधो अथवा प्राणियो की पुरानी या पहले की जातियो से नयी जातियो या उच्चतर जीव-जातियो का उत्पन्न होना ही विकास है।"

ये आनुवशिक विभिन्नताए इतनी सूक्ष्म होती हैं कि विकास की मद प्रक्रिया के दौरान नयी जीव-जाति की उत्पत्ति मे बहुत लम्बा समय लगता है। अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि पौधा और प्राणिया के पूवज बहुत साधारण रहे होंगे और इनमे धीरे-धीरे जटिलता आती गयी। अत यह सवमान्य सत्य है कि पौधो व प्राणियो मे विकास हुआ है और हमारे पास इसके प्रमाण हैं।

विकासवाद अनेक रूप, अनेक मत

विकास वह जैविक प्रक्रिया है, जिसमे जीवो की सततिया अपने पूवजो से अतर रखने वाली हो जाती हैं। इसलिए इनका कई प्रकार से भिन्न होना स्वाभाविक है। विज्ञान का कोई भी तथ्य अथवा सत्य हो, उस तक पहुचने की राह बडी कठिन होती है। उस तक पहुचने के लिए रूढियो, विश्वासो, अधविश्वासो, कीमियागरी, जादूगरी आदि

की राह से होकर भटकना पडता है और आखिर मे जाकर कही सच्चाई तक पहुचा जाता है। राहो के अन्वेषी या रहगुजर भी कई होते हैं जो पूरी बातो व ब्योरो का लेखा जोखा, प्रेक्षण और सत्यापन करते हुए सार्वभौम सत्य का प्रस्तुतीकरण करते हैं। फिर विकास तो कई पीढियो, युगो और काल के दीर्घ अतराल से सम्बद्ध मद है जिससे सबधित दूर की कौडी लाना सचमुच कठिन बात रही है।

विकासवाद के परिप्रेक्ष्य मे अनेक मत प्रचलित हैं। चाहे डारविन का डारविन वाद यानी प्राकृतिक वरण का सिद्धात (थियोरी ऑफ नेचुरल सेलेक्शन) हो, उसके
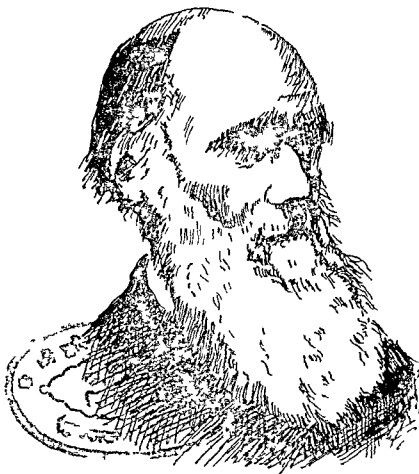
चार्ल्स डारविन

अनुयायियो का नवडारविनवाद (नीओडारविनिज्म) हो, लैमार्क का लमाकवाद यानी उपार्जित लक्षणों की वशागति (इनहेरिटेंस ऑफ अक्वायर्ड करेक्टर्स) हो, चाहे उसके अनुयायियो का नवलैमाकवाद (नीओलमार्किज्म) हो, चाहे ह्यूगो डी व्रीज का वाद

यानी उत्परिवतन सिद्धात (म्यूटेशन थियोरी) हो और चाहे वे पैकड, कोप, ओसवोन, हरबट, स्पेसर, ईमर, मैक्डूगल, कैमरर, जेनिंग्स, मैक्ब्राइड, मोगन, जूलियन हक्सले, मुलर, वेस्टोल, सिम्पसन आदि के सिद्धात हो या अन्य किसी वैज्ञानिक के, पर यह कहना ही पडेगा कि इन सबके सामूहिक और अथक प्रयासो से ही विकासवाद को खुला वातायन मिला और उसे विवेक के आधार पर कसौटी पर कसा जा सका। ये सभी विकास के महासत्य को उद्घाटित करने वाले और उसका सही निरूपण कर सुस्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत करने वाले मत हैं। इन्ही के बलबूते पर विकासवाद का ताना बाना बुना गया है लेकिन इस लेख मे हम पुन अपने इगित विषय पर लौट आते हैं कि विकासवाद के इसी पहलू पर सीमित रहा जाय। सम्पूर्ण विकासवाद तो एक विशद विषय है।

विज्ञान और सस्कृति यानी धर्म, राजनीति और दैनिक व्यवहार

विज्ञान और सस्कृति का घनिष्ठ सबध है और सस्कृति के अतगत हमारे दैनिक आचार विचार, धम, राजनीति आदि सभी बातें आ जाती हैं। विज्ञान के दो काय है—नियत्रण और ज्ञान। यह ज्ञान हमारे खुद अपने बारे मे, अपनी इस दुनिया के बारे मे और हमारे व जगत के बीच के आपसी सबधो के बारे मे हो सकता है। विज्ञान की एक विशेष शाखा के रूप मे विकासवादी विज्ञान ने ज्ञान के परिप्रेक्ष्य मे प्रमुख योग दिया है। पहले हमे अपने चारो ओर के परिवेश का और फिर अपने स्वभाव का ज्ञान हुआ है। नियत्रण काय मे विकासवादी विज्ञान की महत्त्वपूण और परिवतनकारी भूमिका रही है। मानवीय जीवन के दष्टिकोण से हमारे व्यावहारिक पहलुओ पर भी इसका प्रभाव पडा है जो आज हमारे रोज के जीवन मे झलक रहा है।

विज्ञान और धम के सदभ मे एक मिसाल देना समीचीन होगा कि विज्ञान व वज्ञानिक किस तरह धम के रास्ते मे आकर प्रभाव डालते हैं और लोगो का दृष्टिकोण बदलते हैं। हमारा नैतिक आचरण ही धम है और इस तरह जो सस्कार पनपते हैं ये शीघ्र ही ग्राह्य होते हैं।

जब माइकेल फैरेडे को, जो कि लदन के एक पुस्तक विक्रेता के यहा अप्रेंटिस था, ग्रेट ब्रिटेन की रॉयल सस्था मे सर हफ्री डेवी का भाषण सुनने के लिए ले जाया गया तो प्रतिभा के धनी फैरेडे ने इन भाषणो को ग्रहण कर इतनी सहजता से अभिव्यक्त किया कि डेवी ने उसे अपना सहायक नियुक्त कर लिया।

बाद मे जब सन 1825 मे फैरेडे को रॉयल सस्था की प्रयोगशाला का निदेशक बनाया गया तो यह स्वाभाविक ही था कि वह अपने नियता के प्रति अपनी श्रद्धा को प्रदर्शित करता। अत निदेशक बनने पर उसने डेवी भाषणो का आयोजन किया। उसने क्रिसमस के अवसर पर बच्चो के सम्मुख रोचक और लोकप्रिय शैली मे भाषण दिए। उसका उद्देश्य यही था कि— बच्चो को विज्ञान के सिद्धातो के बारे मे रोचक ढग से जानकारी दी जाए।' इस बात का पूरा ध्यान रखा गया और इन भाषणो को कक्षा की पाठ्यपुस्तकीय नीरस और उबाऊ सामग्री से बिलकुल भिन्न रखा गया। जब फैरेडे

के भाषण बहुत सराहे गए तो 1829 मे उसने फिर बिजली और बिजली के प्रयोगों के बारे मे भाषण दिए। इस तरह फैरेडे ने 1861 तक यानी अवकाश ग्रहण करने तक उन्नीस क्रिसमस भाषण दिए। तब से अभी तक यह प्रथा चली आ रही है।

डारविन का विकासवाद

डारविन को 'चच ऑफ इग्लैंड' का पादरी तो बना दिया गया लेकिन पादरी होने की शत थी स्नातक होना। इसके लिए उसने 1828 मे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय मे प्रवेश लिया। सन् 1831 मे वह कैम्ब्रिज का स्नातक बना। यहा उसकी दोस्ती एक बडे वनस्पतिविज्ञानी प्रोफेसर हेसलो से हुई। इसी दौरान ब्रिटिश नौसेना मे एच० एम० एस० बीगेली नामक जहाज द्वारा एक समुद्री खोज यात्रा का आयोजन किया। इस काय के लिए डारविन को उपयुक्त पाया गया। यह यात्रा 27 दिसम्बर, 1831 को शुरू हुई। इस जहाज ने अटलाटिक महासागर के कुछ द्वीपो की, दक्षिणी अमरीका क समुद्री तट तथा प्रशात महासागर के कुछ द्वीपो की यात्रा की, जिनमे गैलेपेगोस द्वीप की यात्रा डारविन और सबके लिए महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही। इस यात्रा के दौरान डारविन ने ढेर सारे नमूने एकत्रित किए और वनस्पतिविज्ञान प्राणीविज्ञान तथा भूविज्ञान सबधी टिप्पणिया लिखी।

यह समुद्री खोज यात्रा 2 अक्टूबर, 1838 को समाप्त हुई। इसी बीच डारविन को माल्थस का जनसख्या सबधी निबध पढने को मिला। प्रकृतिविज्ञानी डारविन ने अपने विचारो और माल्थस के निबध वाले विचारो का समन्वय किया और इसी आधार पर जैव विकास सबधी अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया, जो कुछ परिवतनो के साथ आज भी मा य है।

इस सदर्भ में डारविन ने अपना विचार प्रकट किया कि प्राणियो और पौधो मे जीवन-सघष (स्ट्रगल फॉर एक्जिस्टेन्स) चलता है यानी अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए आपसी सघष चलता है और उधर प्रकृति भी इस प्रक्रिया मे अपनी भूमिका निभाती है। प्रकृति की ओर से एक ऐसा वरण होता है जिसमे वे पौधे अथवा प्राणी ही चुने जाते हैं जिनमे वातावरण के माफिक कुछ खास भिन्नताए होती हैं।

सन् 1842 मे डारविन ने 35 पृष्ठीय रूपरेखा तैयार की जिसे 1844 में 230 पृष्ठ तक बढा दिया गया। अधिक मनन चिंतन और अनुभव के आधार पर सन 1856 मे उसने अपने विचारो को और अधिक विस्तार दिया। इसी बीच डारविन के पास एक युवा अग्रेज प्रकृतिविज्ञानी 'एल्फ्रेड रसेल वैलेस' ने मूल प्रकारो से बाद की किस्मा के भिन्न होने वाली प्रवृत्ति नाम से एक लेख भेजा। डारविन इस लेख से बहुत प्रभावित हुआ क्याकि यह उसके विचारो का अनुमोदन जो था। सन् 1859 मे ये दोनो लेख 'प्रोसीडिंग्स ऑफ लिनियन सोसाइटी' म छपे। और इसी वष डारविन की बहुचर्चित पुस्तक 'ओरिजिन ऑफ स्पीशीज' (जातिया की उत्पत्ति) भी प्रकाशित हुई।

डारविन के सिद्धान्त की बातें सार रूप मे अग्रलिखित प्रकार से हैं

(1) खाने रहने की सीमित व्यवस्था के बावजूद जीव जातियों का अधिक सख्या में जनन करना। आज के युग में मानव सरीखे उच्चतम प्राणी पर भी यह बात लागू हो रही है, जबकि निम्नतर प्राणियों में तो यह बात आम है।

(2) जीवन सघर्ष (स्ट्रगल फॉर एक्जिस्टेन्स)—प्रकृति में जीवों के बारीक अध्ययन से ज्ञात होता है कि क्षेत्र विशेष में प्राणियों व पौधों की जातियों की सख्या सामान्यतया लगभग एक सी बनी रहती है। और अधिक जनन के बावजूद भी उनकी सख्या में बढोतरी नही होती। क्षेत्र विशेष की जितनी क्षमता होती है, वह उतने ही जीवों को पनपाने में मदद करता है, उससे ज्यादा नही। इसका नतीजा यह होता है कि अधिक सख्या में पैदा हुए जीवों में आपस में जबदस्त सघर्ष होता है यानी जिन्दा रहने के लिए कडा मुकाबला होता है। यही जीवन सघर्ष है।

(3) योग्यतम की उत्तरजीविता (सरवाइवल ऑफ द फिटेस्ट)—जीवन-सघर्ष यानी अच्छी तरह जिन्दा रहने के लिए जीवों के आपसी कडे मुकाबले के बाद वे ही प्राणी अथवा पौधे अस्तित्व में बने रहते हैं यानी बचे रहते हैं, जो अपने वातावरण के उपयुक्त होते हैं और बाकी हारकर नष्ट हो जाते हैं। यही प्रक्रिया योग्यतम की उत्तर-जीविता यानी सुयोग्य का मजे में बने रहना है। स्पेन्सर द्वारा भी इस बात का अनुमोदन किया गया।

प्रकृति में इसी बिन्दु पर प्राकृतिक वरण होता है यानी प्रकृति द्वारा हर प्रकार के सुयोग्य जीवों का ही चुनाव किया जाता है। सभी जीवों में छोटी-छोटी भिन्नताए पायी जाती हैं, पर वातावरण के अनुकूल भिन्नताओ और ओज वाले जीव प्रकृति के प्रिय होकर रक्षित रहते हैं और उनका नाश नही होता, जबकि प्रकृति के प्रतिकूल भिन्नताओ वाले जीवों पर प्रकृति की कृपा नही रहती और फलत वे नष्ट हो जाते हैं। फिर ये भिन्नताए आनुवशिकता के माध्यम से अगली पीढी में भी पहुच जाती हैं और अनेक पीढियों तक चलकर कालातर में नयी जाति उत्पन्न करती हैं।

पश्चिम का भौतिकवाद

डारविन के जीवन सघर्ष और योग्यतम की उत्तरजीविता वाले विचार-सूत्र आधुनिक जीवन के तकियाकलाम ही बन गए। विकासवाद के इन सूत्रों से भौतिकवाद (मैटीरियलिज्म) को बढावा मिला और धर्म, राजनीति तथा जीवन के अन्य पहलुओं पर भारी प्रभाव पडा। इनसे जीवन परम्परा को एक नया मोड, एक नई लीक मिली जिस पर आज के मानव की जिन्दगी घिसटती अथवा सरपट दौडती चली जा रही है।

विकासवाद के इन सूत्रों से मौकापरस्त मानव में परमुखी वृत्ति का ह्रास और स्वमुखी वृत्ति का विकास हुआ। भारत की या कहिए पूर्व की विचार परम्परा तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' की रही है या यू भी कह सकते हैं कि पौर्वात्य परम्परा कभी भी स्वमुखी या आत्मकेंद्री नही रही बल्कि परमुखी या परकेंद्री रही है जबकि स्वमुखी व आत्मकेन्द्री परम्परा विकासवाद से प्रेरित पाश्चात्य

भौतिकवादी विचारधारा का परिणाम है।

इस तरह विकासवाद के ये वैज्ञानिक मुद्दे व्यावहारिक व सास्कृतिक मुद्दे भी हैं। अपने हित साधन मे यानी अपना उल्लू सीधा करने मे आधुनिक मानव ने इनका खूब उपयोग किया है। आज के सभ्य व गर्वीले मानव के प्रति यह बात भले ही तीखी लगे पर है यह सच्चाई। अपने लाभ के लिए अपना और केवल अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए 'बेग, बौरो और स्टील' (मागो, उधार लो या चुराओ) और बाइ हुक और बाइ क्रूक (येन केन प्रकारेण) की भावना को इससे खूब पोषण मिला और अब यह आज के जीवन का परम उद्देश्य ही बन गया है। आज के युग मे चाहे वे व्यक्ति हो, समुदाय हो, राष्ट्र या देश हो, होड व जोड-तोड का यह दर्शन और व्यवहार धर्म, राजनीति व दैनिक कार्यों मे हर जगह व्यापक रूप से देखा जा सकता है। इसका सकेत मात्र ही काफी है। आज का बच्चा भी इस बात को बखूबी समझता है। आज का सारा जीवन राजनीति के सहारे जो चलता है।

विकासवाद और आनुवंशिकी (जेनेटिक्स) का धर्म पर एक प्रभाव यह भी रहा है कि दुनिया के अधिकाश धर्मों के लोग सामान्यतया नजदीकी रिश्तेदारी, एक गोत्र अथवा एक ही जाति मे विवाह नही करते क्योकि दूर की रिश्तेदारी मे विवाह करने की अपेक्षा नजदीकी रिश्तेदारी से उत्पन्न सतानें कम रोधक्षमता वाली, कमजोर, रोगी, कम प्रभावी व कम आयु वाली होती हैं और इस तरह योग्यतम नही होती। इसीलिए बिल्कुल नजदीकी विवाह वर्जना की कोटि मे आ गए। जीनो, लक्षणो और भिन्नताओ वाला विचार लोगो के दिमागो मे आ गया और लोगो ने इस पर पक्की तरह से अमल कर इसे भी धर्म के अतर्गत मान लिया। यू तो कई धर्मों मे यह प्रथा पहले से ही प्रचलित थी पर विकासवाद और आनुवंशिकी के परिणामो ने भी इसकी पुष्टि कर दी। वैसे यह परम्परा अनुभवो के बाद ही देखभालकर प्रचलित हुई होगी।

आज भोजन की कमी और अधिक आबादी वाले युग मे, अब यह जरूर हो रहा है कि परिवार नियोजन द्वारा अधिक सतान उत्पादन पर नियत्रण किया जा रहा है ताकि प्रकृति के काम मे मानव खुद हस्तक्षेप कर अपने को ढाल सके और हर तरह से व्यस्त परिस्थितियो से भली भाति जूझकर अपना सुविधामय अस्तित्व बनाए रख सके।

'स्ट्रगल फार एक्जिस्टेंस' और 'सरवाइवल ऑफ द फिटेस्ट' के नारे तो इतने बुलन्द हो गए हैं आज के जीवन मे कि पाश्चात्य देशो से लेकर पौर्वात्य देश भारत तक मे इनका दोहन किया जा रहा है। आज अपने अस्तित्व, खुशहाली, वैभव, प्रभुसत्ता और प्रसार के लिए आये दिन यह दर्शन और व्यवहार छोटी बडी मदो में खूब अमल मे लाया जा रहा है। 'मैनिपुलेशन एण्ड करप्शन' यानी हेराफेरी और भ्रष्टाचार को भी खूब बढावा मिला है और ये आज के आम आदमी के क्रियाकलापो के अग बन गए हैं। जो यह नही करता वह 'प्रिमिटिव' या पिछडा कहलाया जाकर समाज की मुख्य धारा से छूटता टूटता चला जाता है। यह आज की आध्यात्महीन व सवेदनशीलताहीन भौतिकवादी जिंदगी का व्याप्त दर्शन चिंतन है। आज का मानव इसी हकीकत का खेल

खेल रहा है और इसे भुनाने मे लगा हुआ है। अफसोस की बात है कि उच्च रूप से विकसित बुद्धिमान मानव मे इसका उदात्तीकरण नहीं हो पा रहा है।

महान् विज्ञानी डारविन तथ्यो को पीसने की मशीन

महान वैज्ञानिक और प्रकृतिविज्ञानी डारविन मानवीय मूल्यो की कसौटी पर कसने से कुछ भिन्न प्रवृत्ति का उतरता है। सामान्य से यह विचलन उसके खुद के अपने बारे म कहे गए उदाहरणो से स्पष्ट रूप से झलकता है। काश कि वह उच्च मानवीय मूल्यो से सप्रेरित कुछ उदात्तविचार भी देता तो बात कुछ और होती।

रीने डुबोस की 'द अनसीन वल्ड' नामक पुस्तक के छठे अध्याय 'साइ स ऐज ए वे ऑफ लाइफ' मे उद्धत डारविन की आत्मकथा के अशा को पढने से ऊपर कही गयी बात की पुष्टि हो जाएगी कि उसकी विचारधारा और व्यक्तित्व मे कमिया भी थी, जिनका अनुभव उसने अपने बाद के वर्षों मे किया। वैसे उसकी यह अपनी कमी उसे भी सालती रही।

डारविन ने अपनी आत्मकथा मे लिखा है—'कई वर्षों तक मैं कविता की एक कडी भी न गुनगुना सका। बाद के वर्षों में मैंने शेक्सपियर को पढने की कोशिश भी की लेकिन वह मुझे इतना नीरस लगा कि उससे मेरा जी मिचलाने लगता था। तस्वीरा और सगीत के प्रति भी मेरी रुचि समाप्त प्राय हो चुकी है । लगता है मेरा दिमाग ठस्स होकर बस ढेर सारे एकत्रित तथ्यो पर आधारित सामान्य नियमो को पीसने मथने वाली एक मशीन बन गया है। पर मैं यह नही समझ पाता कि इससे मेरे दिमाग के उस विशेष भाग का अपक्षय क्योकर हुआ, जिस पर कि उच्चकोटि की अभिरुचि निभर करती हैं। सोचता हू कि मुझसे अधिक सगठित अथवा सुव्यवस्थित दिमाग वाला व्यक्ति कभी भी इतना व्यथित न होता। लेकिन यदि मुझे फिर स नई जिन्दगी जीने को मिले तो मैं सामान्य नियम बना लूगा कि हफ्ते मे कम से कम एक बार अवश्य ही कुछ कविताए पढू और कुछ सगीत भी सुनू। इससे क्या होगा कि मेरे दिमाग के जिन हिस्सा का अपक्षय हो चुका है, उपयोग द्वारा उन्ह पुन सक्रिय किया जा सकेगा। सचमुच इन रुचियों के नष्ट हो जाने का मतलब है सारी खुशियो का लोप हो जाना, जो कि हमारे स्वभाव के भावनात्मक पक्ष को मद करते हुए बुद्धि और साथ ही चारित्रिक नैतिकता के लिए भी अनिष्टकर है।'

हिन्दी-अंग्रेजी शब्दावली

अड (अडा)	egg
अडजोत्पत्ति	hatching
अडनिक्षेपक	ovipositor
अडनिक्षेपण	oviposition
अडप्रजक	oviparous
अडाशय	ovary
अकशेरुकी	invertebrate
अणु	molecule
अनुकूलन	adaptation
अनुक्रिया	response
अभिक्रिया	reaction
अभिलक्षण	characteristics
अभक	nymph
अलगिक	asexual
अवशोषण	absorption
अवस्था	stage
अस्थि/हड्डी	bone
आत्र/आत	intestine
आनुवशिकी	genetics
आमाशय (जठर)	stomach
आहार नाल	alimentary canal
इल्ली	caterpillar
उत्परिवतन	mutation
उत्प्रेरक	catalyst
उत्सजन	excretion
उत्स्वेदन	transpiration
उदर	abdomen

क्षुप	shrub
खंड	segment
गण	order
गुणसूत्र	chromosome
गुदा	anus
गृहमक्खी	house fly
ग्रंथि	gland
ग्रसनी	pharynx
ग्रसिका	oesophagus
घरेलू मक्खी	house fly
घुन	weevil
घ्राण	smell (olfactory)
चयापचय	metabolism
छिड़काव	spraying
जगत	kingdom
जनन	reproduction
जननेंद्रिय	genitalia
जल संवर्धन	hydroponics
जलीय	aquatic
जाति	species
जीवद्रव्य	protoplasm
जीवन चक्र	life cycle
जीवाणु (बैक्टीरिया)	bacteria
जीवाश्म/फौसिल	fossil
जूं (यूका)	louse
जीवविज्ञान	biology
जैविक	biological
ज्ञानेंद्रिया	sense organs
झींगुर (चीरी)	cricket
टांग	leg
टिड्डा	grasshopper
टिड्डी	locust
डंक	sting
डिम्भक	larva
तंत्र	system

तन्त्रिका	nerve
तिलचट्टा	cockroach
तितली	butterfly
त्वचा	skin
दंश	sting
दंशक (डांस)	gnat
दिवाचर	diurnal
दीमक	termite (white ant)
द्विबीजपत्री	dicotyledonous
धमनी	artery
धूमन (धूम देना)	fumigation
धूलि (धूल)	dust
नलिका	tubule
नियन्त्रण	control
निरूप	instar
निर्मोचन	moulting
निषेचन	fertilization
पर्णहरित	chlorophyll
पतंगा (शलभ)	moth
परजीवी	parasite
परपोषी	host
परभक्षी	predaceous/predator
परमाणु	atom
परागण	pollination
परिवर्धन	development
परिसंचरण	circulation
पर्यावरण	environment
पाचन	digestion
पार्श्व, पार्श्विक	lateral
पीडक	pest
पीडकनाशी	pesticide
पुंमधुप	drone
पेषणी	gizzard
पेशी	muscle
पोषक	nutrient

प्रकाश-सश्लेषण	photosynthesis
प्रकीणन	dusting
प्रतिक्रिया	reaction
प्रतिवर्ती क्रिया	reflex action
प्रवास	migration
प्राणिविज्ञान (जतुविज्ञान)	zoology
प्रावस्था	phase
प्रौढ (वयस्क)	adult
फुहार	spraying
बध्य	sterile
बर	wasp
बहुरूपता	polymorphism
बृहदान्त्र/बडी आत	colon/large intestine
भृंग	beetle
भौतिक	physical
भ्रूण	embryo
मक्खी	fly
मच्छर	mosquito
मत्कुण	bug
मधुमक्खी (मधुमक्षिका)	honeybee
मलाशय	rectum
मस्तिष्क	brain
महाधमनी	aorta
माध्यम	medium
मुख गुहा	mouth cavity
मुखाग	mouth parts
मैथुन	copulation
युग्मक	gamete
योग्यतम की उत्तरजीविता	survival of the fittest
रक्त	blood
रक्षण	protection
रात्रिचर	nocturnal
रानी	queen
रासायनिक	chemical
रुधिर	blood

रीढ़	backbone
रेशम	silk
रोग	disease
रोगजन	pathogen
रोगाणुनाशी	germicide, disinfectant
रोधक्षमता/प्रतिरक्षा	immunity
लक्षण	character
लसीका	lymph
लाख (लाक्षा)	lac
लार ग्रंथि	salivary gland
लाल रुधिर कणिका	red blood corpuscle
लेहन	lapping
लैंगिक	sexual
वंश	genus
वक्ष	thorax
वनस्पतिविज्ञान	botany
वर्ग	class
वर्गीकरण	classification
वर्धी	vegetative
वसा	fat
वायुकोश	air sac
वाष्पन	evaporation
वाहिका	vessel
वाहिनी	duct
विकास	evolution
विकिरण	radiation
विभाजन	division
वियोज परत	absciss layer
विलयन	solution
विषाणु	virus
वृद्धि	growth
वृंत	pedicel
वृक्ष	tree
वृषण	testis
वेधक	borer

सैनिक	soldier
स्तनी/स्तनधारी	mammal
स्थलीय	terrestrial
स्पजी	spongy
स्पदन-अग	pulsatory organ
स्फुटन	hat ching
स्राव	secretion
स्वजातिभक्षण	cannabalism
स्वागीकरण	assimilation

□□